TITLE :

Atharavi Shati Ke Hindi Patra
(Hindi Letters of the Eighteenth Century)

AUTHER :

Dr, Kashinath Shankar Kelkar
1629, Sadashiv Peth, Poona—411030

प्रकाशक :—
कुँज बिहारी लाल पचौरी
जवाहर पुस्तकालय, सदर, मथुरा—281002

द्विविन्दु वर्गाङ्क V 235 : 8 M : 9 (P 152)
दशांश वर्गाङ्क 954 - 029

वितरक :—
कावेरी प्रकाशन
भरत कुंज, मामलेदारवाड़ी रोड-४
मालाड, बम्बई—६४

●

प्रथम आवृत्ति १९७०

●

मुखपृष्ठ : भय्या साहेब ओंकार

●

मुद्रक —पचौरी प्रेस, मथुरा ।

[मूल्य तीस रुपये

अर्पण

स्वर्गीय

पूज्यवर पिताजी

तथा

पूजनीय माताजी

को

सादर समर्पित

—काशिनाथ

मनोगत

मराठा इतिहास के ग्रन्थ पढ़ते समय कुछ थोड़े "हिन्दी पत्र" भी देखने को मिले। हिन्दी भाषा में उस काल में लिखे राजनैतिक व्यवहार सम्बन्धी इन पत्रों को देखकर हिन्दी भाषा के प्रारम्भिक रूप को तथा उसके विकास को जाँचने की जिज्ञासा हुई। १८ वीं शताब्दी में मराठों का सम्बन्ध उत्तरी भारत के नरेशों, अधिकारियों, व्यापारियों आदि से स्थापित हुआ था। अतः उस काल में परस्पर व्यवहार के लिए पत्रों को हिन्दी में लिखे जाने की संभावना जान पड़ी। इससे मेरी शोध की दिशाएँ स्पष्ट हुईं। पूना विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष आदरणीय डा० भगीरथ मिश्र जी ने मुझे इसी विषय में शोध करने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया।

इस कार्य के लिए मैं अनेक संस्थाओं में संग्रहीत पुराने कागजों तथा राजवंशों से सम्बन्धित व्यक्तियों, तीर्थों के पुरोहितों आदि के पास सुरक्षित सामग्री को ढूँढ़ता, पढ़ता और आवश्यक पत्रों की नकलें उतारता रहा। इन पत्रों को ढूँढ़ना, पढ़ना तथा उनकी नकलें प्राप्त करना अत्यत कठिन कार्य था। उसके लिए पर्याप्त व्यय और परिश्रम करने पड़े।

पता नहीं था कब, कहां और कितनी सामग्री मिलेगी, यह अध्ययन पूर्ण होगा अथवा नहीं। इसी उधेड़बुन में सतत सामग्री को ढूँढ़ता और जुटाता रहा और साथ-साथ प्राप्त सामग्री का अध्ययन भी करता रहा। पर्याप्त संख्या में पत्रों को खोज निकालने पर उनका अध्ययन करता रहा। जब शोध-प्रबन्ध पूर्ण किया तब बड़ा संतोष हुआ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के लिए अनेक संस्थाओं और सज्जनों से मुझे सहायता प्राप्त हुई है उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना नितांत आवश्यक है।

नेशनल आर्काइव्ज् नई दिल्ली, राजस्थान स्टेट आर्काईव्ज् बीकानेर, पेशवा दफ्तर पूना, भारत संशोधक मंडल धुलिया, सार्वजनिक वाचनालय नासिक, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा पूना, आदि के अधिकारियों का मैं हृदय से आभारी हूँ। जिन्होंने अपने संग्रहालय एवम् पुस्तकालय का का उपयोग करने के लिए कृपा पूर्वक स्वीकृति दी।

आरणीय डॉ० भगीरथ मिश्र जी की प्रेरणा और मार्ग-दर्शन के बिना यह कार्य असंभव था। उनके ऋण का उल्लेख मात्र करता हूँ क्योंकि मेरी इच्छा है मैं सदैव उनका ऋणी बना रहूँ। महामहोपाध्याय द० वा० पोतदार जी, स्व० काकासाहेब न० वि० गाडगील जी भूतपूर्व कुलपति पूना विश्वविद्यालय, डा० ताराचन्दजी आदि गुरुजनों का मैं कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अपने बहुमूल्य विवेचन और सुझावों से मुझे प्रोत्साहित किया।

डा. व. म. घाटगे, डॉ. रघुवीरसिंह, प्रा. ग. ह. खरे, सेतु माधवराव पगडी, श्री नाथूराम खड्गावत, डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, श्री हरिहर-निवास द्विवेदी आदि विद्वानों ने शोध प्रबंध की सामग्री जुटाने और विषयगत विवेचन में मेरी सहायता की है उनका मैं आभार मानता हूँ। इस कार्य में मुझे सहायता प्रदान करने वाले—श्री आबासाहेब मजूमदार, अ० अ० तिरमिझी, डा० राजनारायण मौर्य, श्री हरिनारायण व्यास, स्व० श्री आवलसकर, श्री भय्यासाहेब ओंकर आदि सज्जनों का आभार मानता हूँ। डा० श्रीमती शरयू ताल प्राचार्य श्री० ना० ठाकरसी कालेज पूना, तथा श्री कृ० दे० पुराणिक डायरेक्टर आफ लायब्ररीज महाराष्ट्र राज्य—जिन्होंने मुझे समय-समय पर प्रोत्साहित करके सहायता प्रदान की, उनका आभार मानता हूँ।

जिनके कारण यह शोध प्रबंध प्रकाशन में आ रहा है उन व्यक्तियों में श्री केदारनाथ पचौरी और श्री कुंजविहारी पचौरी जी तथा मित्रवर्ग श्री चन्द्रशेखर शास्त्री का आभार मानता हूँ।

ग्रन्थ की भूमिका के लिये आदरणीय डा० भागीरथ मिश्र और अनमोल सम्मति के लिये डा० रघुवीरसिंह जी के ऋण का निर्देश आवश्यक है।

शोध-प्रबंध को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान करने के कारण पूना विश्वविद्यालय के अधिकारियों का आभार मानता हूँ।

भूमिका

हिन्दी-शोध अनेक दिशाओं में विकसित हुआ है। इन विविध दिशाओं का निर्माण जहां शोध के विषय-वस्तु, तत्व और भाषा शैली के आधार पर हुआ है, वहीं हिन्दी-भाषा और साहित्य से सम्बन्धित सामग्री की उपलब्धि भी नवीन दिशा-निर्माण का एक बहुत बड़ा कारण है। मुझे स्मरण है कि आधुनिक छन्दों से लेकर वैयक्तिक कवियों की भाषा के अध्ययन तक का विस्तार मेरे निर्देशन में लिखे गये शोध प्रवन्धों में हुआ। परन्तु जब मैं पूना में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष के रूप में काम करने गया तो मुझे वहाँ के संग्रहालयों में प्राप्त सामग्री के आधार पर शोध की एक नयी दिशा दृष्टिगोचर हुई। यह दिशा प्राचीन पत्रों के अध्ययन की दिशा थी। पूना के "पेशवे दफ्तर" में अनेक मराठी पत्रों के बीच कतिपय हिन्दी पत्रों को अवलोकन कर मुझे ऐसा लगा कि प्राचीन पत्रों का भाषा, साहित्य और इतिहास की दृष्टि से अध्ययन महत्वपूर्ण हो सकता है। परन्तु इस प्रकार के अध्ययन की कठिनाई तीन आयामों में हमारे समक्ष खड़ी हुई —पहला तो यह कि इस प्रकार की सामग्री देश के विभिन्न स्थानों और विशेष रूपों से राज्य संग्रहालयों में उपलब्ध हो सकती है और इन स्थानों में जाना और राज पुस्तकालयों में से सामग्री प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति के बूते की बात नहीं है। यह कार्य श्रम-साध्य भी था साथ ही बुद्धि और व्यय-साध्य भी। अतः ऐसा व्यक्ति सरलता से नहीं मिल सकता था। दूसरा आयाम कठिनाई का यह था कि शोधकर्ता को भाषा और साहित्य के ज्ञान में पारंगत होना चाहिए तथा तीसरा यह कि उसको मध्यकालीन इतिहास की सूक्ष्म और परिपूर्ण जानकारी अत्यावश्यक है। कठिनाई के इन तीनों आयामों से जूझने वाले व्यक्ति के अभाव में इस दिशा की शोध का श्रीगणेश काफी समय तक नहीं हो पाया।

कुछ समय बाद श्री का० शं० केलकर मेरे सम्पर्क में आये और उन्होंने शोध के लिए इच्छा और तत्परता प्रदर्शित की। मैंने उन्हें सबसे पहले 'पेशवे दफ्तर" से पत्रों की प्रतिलिपि कर लाने का कार्य सौंपा। मुझे यह कहते हुए बड़ा सन्तोष और हर्ष है कि केलकर जी ने थोड़े समय के ही उपरान्त एक बड़ी संख्या पत्रों को खोज निकाली। ये हिन्दी पत्र

महाराष्ट्र के पेशवा-शासकों तथा अन्य व्यक्तियों के साथ जयपुर-नरेश, महाराजा छत्रसाल तथा उनके वंशजों, काशी नरेश चेतसिंह आदि व्यक्तियों के कार्य-व्यवहार से सम्बन्धित थे। इस अमूल्य सामग्री के आधार पर मैंने केलकर जी को वह विषय दिया जिस पर आज उनका शोध-प्रबन्ध प्रकाशित हो रहा है। मुझे वह समय भी याद है जब अनेक व्यक्तियों ने केलकर जी को यह कहकर हतोत्साहित किया कि यह विषय बड़ा कठिन है और इस पर क्या शोध हो सकता है ? परन्तु वे हतोत्साहित नहीं हुए। जब भी वे अपनी कठिनाइयाँ मेरे समक्ष रखते थे तब कोई न कोई समाधान मेरे सामने निकल आता था और वे तत्परता से अपना कार्य करते रहे और अन्त में इसे पूरा करके उन्होंने पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

मैं यह स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूँ कि यह शोध-प्रबन्ध विशिष्ट प्रकार का है और ऐसे शोध-प्रबन्धों की पूर्णता केवल उपाधि मिलने से ही नहीं हो जाती। इसके अन्तर्गत भाषा और इतिहास की ऐसी बहुमूल्य और दुर्लभ सामग्री है कि इसका प्रकाशित होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके आधार पर न केवल हमें भारतीय इतिहास के मध्ययुग की अनेक घटनाओं की यथार्थता का ज्ञान हो सकता है, वरन् उस समय की हिन्दी भाषा का एक प्रचलित और प्रामाणिक स्वरूप भी देखने को मिलता है और हिन्दी गद्य के विकास की दृष्टि से जो सामग्री इसमें प्राप्त होती है वह तो सुदुर्लभ प्रकार की है। इसलिए उपाधि के साथ-साथ इस ग्रन्थ का प्रकाशित होना भी अत्यावश्यक था। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उनका यह शोध-प्रबन्ध प्रकाशित होने जा रहा है। यहाँ मुझे प्रसन्नता के साथ-साथ खेद का अनुभव हो रहा है। वह इसलिये कि हिन्दी क्षेत्र के अन्तर्गत ऐसे प्रकाशकों का संतापकारी अभाव है कि जो उच्चस्तरीय शोध-ग्रन्थों और सामग्री को प्रकाशित कर सकें। इसमें दोष केवल प्रकाशकों का ही नहीं वल्कि हिन्दी पाठक व जन-समुदाय का भी है कि जो शोधमूलक ज्ञानवर्धक साहित्य के पठन में विशेष रुचि नही लेते और इस प्रकार के प्रकाशन को प्रोत्साहित नहीं करते।

मुझे सबसे अधिक हर्ष इस वात का है इस प्रकार की दुर्लभ सामग्री को खोज निकालने और उसका अध्यवसायपूर्ण अनुशीलन करने का कार्य एक मराठी-भाषी व्यक्ति के द्वारा सम्पन्न हुआ है। हिन्दी राष्ट्रभाषा के असली सेवक इसी कोटि के व्यक्ति हैं। डा० केलकर की शोध कृति से मैं

भली प्रकार परिचित हूँ और मुझे पूरा विश्वास है कि वे अपना हिन्दी-सम्बन्धी शोध कार्य निश्चित रूप से आगे बढ़ायेंगे और राष्ट्र-भारती हिन्दी का साहित्य महत्वपूर्ण अध्ययनों से सम्पन्न करेंगे।

—डा. भगीरथ मिश्र

आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
सागर विश्वविद्यालय, सागर

सागर
दीपावली १९७०

सम्मति

यह बहुत ही हर्ष और पूर्ण संतोष का विषय है कि अब अहिन्दी भाषा-भाषी विद्वान् और भाषाविद् भी मध्यकालीन हिन्दी गद्य के प्राप्य विभिन्न उदाहरणों आदि का गहराई से भाषाशास्त्रीय अध्ययन करने को प्रेरित ही नहीं हुए हैं, वे इस कार्य में सयत्न अग्रसर भी रहे हैं। डा० का० शं० केलकर का "मराठा शासकों से सम्बन्धित १८ वी शती के हिन्दी पत्रों का भाषाशास्त्रीय एवं ऐतिहासिक अध्ययन" शीर्षक सफल शोध-ग्रन्थ ऐसे ही एक प्रोत्साहनीय आयोजन का प्रसंशनीय परिणाम है।

यह बात तो अब सर्वथा सुमान्य हो चुकी है कि ईसा की १७ वीं शताब्दी के प्रारंभ तक शसक्त अभिव्यंजक हिन्दी गद्य का प्रादुर्भाव ही नहीं हो चुका था, परन्तु हिन्दी और उससे सम्बन्धित भाषाओं, बोलियों आदि के सब ही प्रदेशों में उसे मुक्तरूपेण काम में लिया जाता था। हजारों मील लम्बे-चौड़े इस विस्तृत हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र में बोली और विशेष प्रयोगों के प्रभावों के फलस्वरूप विभिन्न प्रदेशों के हिन्दी गद्य में शैली के अनेक प्रादेशिक भेद-प्रभेद अवश्य मिलते हैं, परन्तु उससे हिन्दी गद्य की सार्वभौमिक व्यापकता और अन्तर्प्रादेशिक महत्ता पर कोई दुष्प्रभाव कदापि नहीं पड़ा। ऐसे सब ही हिन्दी आदि भाषा-भाषी प्रदेशों में स्थित राजपूत अथवा अन्य हिन्दू राज्यों का तो सारा ही पत्रव्यवहार, कामकाज, आदि पूर्णतया हिन्दी में ही होता था। वहाँ के शासकों द्वारा दिये गये सहस्त्रों दान-पत्र, यत्र-तत्र अङ्कित तत्कालीन सैकड़ों शिलालेख और अब तक सुरक्षित उस समय के पत्र, परवाने या हिसाब-किताब आदि ही बहियाँ तथा विविध विषयक ग्रन्थ आदि इतनी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं कि इस सम्बन्ध में कहीं भी किसी प्रकार के शंका-समाधान की संभावना ही नहीं रह जाती है। मराठा राजा शिवाजी की औरंगजेब के दरबार में आगरा की यात्रा सम्बन्धी जो राजस्थानी पत्र-संग्रह प्रकाशित हुआ है, उन पत्रों में विभिन्न वर्णन इतने परिपूर्ण और सजीव हैं, उनकी शैली सरल होते हुए भी इतनी हृदयग्राही है, तथा उनमें यत्र-तत्र पाई जाने वाली टिप्पणियां और आंतरिक राजनीति सम्बन्धी संकेत इतने मार्मिक सही और सूझ-बूझ

से पूर्ण हैं कि उन पत्रों का गद्य संसार की सर्वोन्नत श्रेष्ठतम भाषा को भी गौरवान्वित कर सकता है।

यही कारण था कि ईसा की १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुगल साम्राज्य के पतन के साथ जव मराठा उत्तरी भारत में जा पहुँचे, मालवा पर आधिपत्य स्थापित किया, वुन्देलखण्ड की हिस्सेदारी में अपना भाग हथिया लिया, राजस्थान पर आधिपत्य जमाने के लिये प्रयत्नशील हुए और उत्तरी भारत के हरिद्वार, प्रयाग, काशी, गया आदि सव ही सुदूरस्थ हिन्दू तीर्थों पर अपपा अधिकार अथवा सर्वव्यापी प्रभाव स्थापित करने लगे तव उन्होंने वहाँ के राजपूत नरेशों या अन्य हिन्दू अधिकारियों, व्यापारियों अथवा प्रमुख व्यक्तियों के साथ सम्पर्क साधने और पत्र व्यवहार के लिये हिन्दी अथवा 'हिन्दवी' भाषा को अपना माध्यम वनाया उत्तरी भारत के नरेश, कर्मचारी आदि तो पेशवा, मराठा सरदारों, मराठा शासन के अधिकारियों आदि को हिन्दी में पत्र लिखते ही थे, परन्तु उधर पेशवा, मराठा सरदारों और सेनानायकों को, मराठा राज्य के अधिकारियों आदि की ओर से जो भी कागज-पत्र इन हिन्दी भाषी राजपूत नरेशों, उनके राजघरानों, कर्मचारियों आदि को लिखे जाते थे वे भी हिन्दी में ही होते थे। यही नहीं, उन प्रदेशों के राजकीय कार्य सम्वन्धी अनेकानेक प्रमाण-पत्र, निर्देश, राजनैतिक या आर्थिक समझौते, संधिपत्र आदि भी अनिवार्य रूपेण हिन्दी में ही लिखे जाते रहे। हिन्दी भाषी प्रदेशों के शासकों, अधिकारियों, व्यापारियों या किसानों आदि से वसूल की गई रकमों या सौदों के चुकारे की रसीदें आदि भी हिन्दी में ही लिखी जाती थीं। यह तरीका प्रथम वाजीराव पेशवा के समय से व्यवहार में आ गया था। उक्त प्रमाण-पत्र, व्यक्तिगत या राजकीय पत्र, आमंत्रण-पत्र या चुकारे आदि की रसीदें चाहे पूना में पेशवा के राजकीय कार्यालय में लिखी गई हों, या सैनिक अभियान पर जा रहे या वहाँ से लौट रहे मराठा सेनानायकों के लश्करों से कहीं भी लिखी गई हों, उससे उनकी भाषा हिन्दी के स्थान पर मराठी होने की संभावना कदापि नहीं हो सकती थी। मराठा सेनानायकों द्वारा हिन्दी में लिखे गये ऐसे कई पत्र, समझौते, चुकारे की रसीदें, 'वीर–विनोद' में भी पहिले प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु डा० केलकर ने अपने इस शोध-ग्रन्थ के हेतु जिन सैकड़ों हिन्दी पत्रों, आदि का अध्ययन किया और जिनमें से कई एक की प्रतिलिपियां उन्होंने इस

सम्मति

यह बहुत ही हर्ष और पूर्ण संतोष का विषय है कि अब अहिन्दी भाषा-भाषी विद्वान् और भाषाविद् भी मध्यकालीन हिन्दी गद्य के प्राप्य विभिन्न उदाहरणों आदि का गहराई से भाषाशास्त्रीय अध्ययन करने को प्रेरित ही नहीं हुए हैं, वे इस कार्य में सयत्न अग्रसर भी रहे हैं। डा० का० शं० केलकर का "मराठा शासकों से सम्बन्धित १८ वीं शती के हिन्दी पत्रों का भाषाशास्त्रीय एवं ऐतिहासिक अध्ययन" शीर्षक सफल शोध-ग्रन्थ ऐसे ही एक प्रोत्साहनीय आयोजन का प्रसंशनीय परिणाम है।

यह बात तो अब सर्वथा सुमान्य हो चुकी है कि ईसा की १७ वीं शताब्दी के प्रारंभ तक शसक्त अभिव्यंजक हिन्दी गद्य का प्रादुर्भाव ही नहीं हो चुका था, परन्तु हिन्दी और उससे सम्बन्धित भाषाओं, बोलियों आदि के सब ही प्रदेशों में उसे मुक्तरूपेण काम में लिया जाता था। हजारों मील लम्बे-चौड़े इस विस्तृत हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र में बोली और विशेष प्रयोगों के प्रभावों के फलस्वरूप विभिन्न प्रदेशों के हिन्दी गद्य में शैली के अनेक प्रादेशिक भेद-प्रभेद अवश्य मिलते हैं, परन्तु उससे हिन्दी गद्य की सार्वभौमिक व्यापकता और अन्तर्प्रादेशिक महत्ता पर कोई दुष्प्रभाव कदापि नहीं पड़ा। ऐसे सब ही हिन्दी आदि भाषा-भाषी प्रदेशों में स्थित राजपूत अथवा अन्य हिन्दू राज्यों का तो सारा ही पत्रव्यवहार, कामकाज, आदि पूर्णतया हिन्दी में ही होता था। वहाँ के शासकों द्वारा दिये गये सहस्त्रों दान-पत्र, यत्र-तत्र अङ्कित तत्कालीन सैकड़ों शिलालेख और अब तक सुर-क्षित उस समय के पत्र, परवाने या हिसाब-किताब आदि ही बहियाँ तथा विविध विषयक ग्रन्थ आदि इतनी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं कि इस सम्बन्ध में कहीं भी किसी प्रकार के शंका-समाधान की संभावना ही नहीं रह जाती है। मराठा राजा शिवाजी की औरंगजेब के दरबार में आगरा की यात्रा सम्बन्धी जो राजस्थानी पत्र-संग्रह प्रकाशित हुआ है, उन पत्रों में विभिन्न वर्णन इतने परिपूर्ण और सजीव हैं, उनकी शैली सरल होते हुए भी इतनी हृदयग्राही है, तथा उनमें यत्र-तत्र पाई जाने वाली टिप्पणियाँ और आंतरिक राजनीति सम्बन्धी संकेत इतने मार्मिक सही और सूझ-बूझ

से पूर्ण हैं कि उन पत्रों का गद्य संसार की सर्वोन्नत श्रेष्ठतम भाषा को भी गौरवान्वित कर सकता है।

यही कारण था कि ईसा की १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुगल साम्राज्य के पतन के साथ जब मराठा उत्तरी भारत में जा पहुँचे, मालवा पर आधिपत्य स्थापित किया, बुन्देलखण्ड की हिस्सेदारी में अपना भाग हथिया लिया, राजस्थान पर आधिपत्य जमाने के लिये प्रयत्नशील हुए और उत्तरी भारत के हरिद्वार, प्रयाग, काशी, गया आदि सब ही सुदूरस्थ हिन्दू तीर्थों पर अपपा अधिकार अथवा सर्वव्यापी प्रभाव स्थापित करने लगे तब उन्होंने वहाँ के राजपूत नरेशों या अन्य हिन्दू अधिकारियों, व्यापारियों अथवा प्रमुख व्यक्तियों के साथ सम्पर्क साधने और पत्र व्यवहार के लिये हिन्दी अथवा 'हिन्दवी' भाषा को अपना माध्यम बनाया उत्तरी भारत के नरेश, कर्मचारी आदि तो पेशवा, मराठा सरदारों, मराठा शासन के अधिकारियों आदि को हिन्दी में पत्र लिखते ही थे, परन्तु उधर पेशवा, मराठा सरदारों और सेनानायकों को, मराठा राज्य के अधिकारियों आदि की ओर से जो भी कागज-पत्र इन हिन्दी भाषी राजपूत नरेशों, उनके राजघरानों, कर्मचारियों आदि को लिखे जाते थे वे भी हिन्दी में ही होते थे। यही नहीं, उन प्रदेशों के राजकीय कार्य सम्बन्धी अनेकानेक प्रमाण-पत्र, निर्देश, राजनैतिक या आर्थिक समझौते, संधिपत्र आदि भी अनिवार्य रूपेण हिन्दी में ही लिखे जाते रहे। हिन्दी भाषी प्रदेशों के शासकों, अधिकारियों, व्यापारियों या किसानों आदि से वसूल की गई रकमों या सौदों के चुकारे की रसीदें आदि भी हिन्दी में ही लिखी जाती थीं। यह तरीका प्रथम बाजीराव पेशवा के समय से व्यवहार में आ गया था। उक्त प्रमाण-पत्र, व्यक्तिगत या राजकीय पत्र, आमंत्रण-पत्र या चुकारे आदि की रसीदें चाहे पूना में पेशवा के राजकीय कार्यालय में लिखी गई हों, या सैनिक अभियान पर जा रहे या वहाँ से लौट रहे मराठा सेनानायकों के लश्करों से कहीं भी लिखी गई हों, उससे उनकी भाषा हिन्दी के स्थान पर मराठी होने की संभावना कदापि नहीं हो सकती थी। मराठा सेनानायकों द्वारा हिन्दी में लिखे गये ऐसे कई पत्र, समझौते, चुकारे की रसीदें, 'वीर-विनोद' में भी पहिले प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु डा० केलकर ने अपने इस शोध-ग्रन्थ के हेतु जिन सैकड़ों हिन्दी पत्रों, आदि का अध्ययन किया और जिनमें से कई एक की प्रतिलिपियां उन्होंने इस

शोध-ग्रन्थ के परिशिष्ट में दी है, उनका अध्ययन कर लेने के बाद इस विषय में किसी प्रकार की कोई शंका रह ही नहीं जाती है। इस महत्वपूर्ण कठोर ऐतिहासिक तथ्य को यों प्रामाणिक ढंग से स्पष्टतया प्रस्तुत कर डा० केलकर ने भारतीय राष्ट्र तथा राष्ट्रभाषा की उल्लेखनीय सेवा की है।

यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि इन मराठी भाषी शासकों, कर्मचारियों, सेनानायकों अथवा उनके अधिकारियों द्वारा लिखे गये सब ही विभिन्न हिन्दी पत्रों आदि की शब्दावली, मुहावरों, वाक्यगठन आदि में प्रायः अत्यधिक विभिन्नता पाई जाती है, तथा उन पर मराठी भाषा के साथ ही स्थानीय बोलियों आदि का भी सुस्पष्ट प्रभाव यत्र-तत्र देख पड़ता है। जहाँ पूना स्थित कर्मचारियों द्वारा लिखे गये कागज पत्रों की हिन्दी मराठी से अत्यधिक प्रभावित होते हुये भी काफी स्पष्ट सही और सुव्यवस्थित होती थी। इसके विपरीत मराठा सेनानायकों के अधिकतर अधिकारियों की भाषा बहुत ही उखड़ी-पुखड़ी, अस्पष्ट तथा अशुद्धियों से भरपूर होती थी। संभवतः सेना के साथ चलने वाले योद्धा लेखकों की सीमित शिक्षा-दीक्षा का ही यह परिणाम रहा होगा। डा० केलकर ने १८ वीं शताब्दी के हिन्दी पत्रों का जो भाषाशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है, उसमें मराठा राज्यशासन से संबद्ध कर्मचारियों या मराठा सेनानायक सरदारों के अधिकारियों द्वारा लिखे गये हिन्दी पत्रों आदि का विशेष रूपेण अलग से भाषाशास्त्रीय अध्ययन नहीं किया गया है, जो अत्यावश्यक था। इन मराठा सेनानायकों या उनके अधिकारियों आदि द्वारा व्यवहृत मराठी से प्रभावित और मराठी शब्दावली से युक्त अशुद्ध हिन्दी भाषा का प्रभाव मराठों के ही आधीन हिन्दी भाषी क्षेत्रों की मालवी, नीमाड़ी, आदि स्थानीय बोलियों पर बहुत पड़ा था, जो कालांतर में मालवा, खानदेश, महाकौशल और विदर्भ के हिन्दी साहित्यकारों की भाषा, शैली और शब्दावली में भी अनिवार्य रूपेण यत्र-तत्र प्रतिबिम्बित होता रहा है। यदि डा० केलकर प्रारम्भ में ही पत्र-लेखकों तथा उनकी स्थानीय बोली विशेष के आधार पर इन पत्रों का वर्गीकरण कर बुन्देली, ढुंढाड़ी, ब्रज, आदि से विशेष प्रभावित विभिन्न पत्र-समूहों का अलग-अलग भाषाशास्त्रीय अध्ययन करते तो मराठा शासकों के मराठी भाषी कर्मचारियों द्वारा लिखे गये इन पत्रों का विशेष रूपेण अत्यावश्यक पृथक गहन अध्ययन स्वतः हो जाता। इस वर्गीकरण के अभाव के कारण ही डा० केलकर का भाषा-

शास्त्रीय अध्ययन जैसा अपेक्षित था वैसा गहन और सुव्यवस्थित नहीं हो पाया है। हिन्दी के विद्वान् होने के साथ स्वयं मराठी भाषी भी होने के कारण डा० केलकर इस 'मराठा हिन्दी' के क्रमिक विकास आदि के साथ उसका सुव्यवस्थित गहन भाषाशास्त्रीय अध्ययन साधिकार प्रस्तुत कर सकते हैं। अतः उनसे यह विशेष आग्रह होगा कि इस विषय विशेष का गहराई तक अध्ययन कर उसके सम्बन्ध में सुव्यवस्थित प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत करें। तृतीय परिशिष्ट में प्रकाशित की जा रही पत्रों की प्रतिलिपियों को यदि कालानुक्रम से अथवा किसी सुनिर्धारित वर्गीकरण के आधार पर छापा जाता तो इतिहास और भाषाशास्त्र के संशोधकों को विशेष सुविधा होती।

अन्त में डा. का. शं. केलकर विशेष धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने इस सर्वथा अछूते तथा पूर्णतया उपेक्षित विषय की ओर ध्यान ही नहीं दिया, अपने अथक परिश्रम द्वारा विचारोत्पादक यह शोध-ग्रन्थ प्रस्तुत कर इस महत्व-पूर्ण विषय पर सर्वथा नया प्रकाश डाला तथा भावी संशोधकों को अध्ययनार्थ नई दिशा दिखाई है। यह शोध-ग्रन्थ पठनीय और संग्रहणीय है।

महाराज कुमार
डा० रघुबीरसिंह

"रघुबीर निवास" सीतामऊ (मालवा) जनवरी ३१, १९७० ई०

शोध-ग्रन्थ के परिशिष्ट में दी है, उनका अध्ययन कर लेने के बाद इस विषय में किसी प्रकार की कोई शंका रह ही नहीं जाती है। इस महत्वपूर्ण कठोर ऐतिहासिक तथ्य को यों प्रामाणिक ढंग से स्पष्टतया प्रस्तुत कर डा० केलकर ने भारतीय राष्ट्र तथा राष्ट्रभाषा की उल्लेखनीय सेवा की है।

यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि इन मराठी भाषी शासकों, कर्मचारियों, सेनानायकों अथवा उनके अधिकारियों द्वारा लिखे गये सब ही विभिन्न हिन्दी पत्रों आदि की शब्दावली, मुहावरों, वाक्यगठन आदि में प्रायः अत्यधिक विभिन्नता पाई जाती है, तथा उन पर मराठी भाषा के साथ ही स्थानीय बोलियों आदि का भी सुस्पष्ट प्रभाव यत्र-तत्र देख पड़ता है। जहाँ पूना स्थित कर्मचारियों द्वारा लिखे गये कागज पत्रों की हिन्दी मराठी से अत्यधिक प्रभावित होते हुये भी काफी स्पष्ट सही और सुव्यवस्थित होती थी। इसके विपरीत मराठा सेनानायकों के अधिकतर अधिकारियों की भाषा बहुत ही उखड़ी-पुखड़ी, अस्पष्ट तथा अशुद्धियों से भरपूर होती थी। संभवतः सेना के साथ चलने वाले योद्धा लेखकों की सीमित शिक्षा-दीक्षा का ही यह परिणाम रहा होगा। डा० केलकर ने १८ वीं शताब्दी के हिन्दी पत्रों का जो भाषाशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है, उसमें मराठा राज्यशासन से संबद्ध कर्मचारियों या मराठा सेनानायक सरदारों के अधिकारियों द्वारा लिखे गये हिन्दी पत्रों आदि का विशेष रूपेण अलग से भाषाशास्त्रीय अध्ययन नहीं किया गया है, जो अत्यावश्यक था। इन मराठा सेनानायकों या उनके अधिकारियों आदि द्वारा व्यवहृत मराठी से प्रभावित और मराठी शब्दावली से युक्त अशुद्ध हिन्दी भाषा का प्रभाव मराठों के ही आधीन हिन्दी भाषी क्षेत्रों की मालवी, नीमाड़ी, आदि स्थानीय बोलियों पर बहुत पड़ा था, जो कालांतर में मालवा, खानदेश, महाकौशल और विदर्भ के हिन्दी साहित्यकारों की भाषा, शैली और शब्दावली में भी अनिवार्य रूपेण यत्र-तत्र प्रतिबिम्बित होता रहा है। यदि डा० केलकर प्रारम्भ में ही पत्र-लेखकों तथा उनकी स्थानीय बोली विशेष के आधार पर इन पत्रों का वर्गीकरण कर बुन्देली, ढुंढाड़ी, ब्रज, आदि से विशेष प्रभावित विभिन्न पत्र-समूहों का अलग-अलग भाषाशास्त्रीय अध्ययन करते तो मराठा शासकों के मराठी भाषी कर्मचारियों द्वारा लिखे गये इन पत्रों का विशेष रूपेण अत्यावश्यक पृथक गहन अध्ययन स्वतः हो जाता। इस वर्गीकरण के अभाव के कारण ही डा० केलकर का भाषा-

शास्त्रीय अध्ययन जैसा अपेक्षित था वैसा गहन और सुव्यवस्थित नहीं हो पाया है। हिन्दी के विद्वान् होने के साथ स्वयं मराठी भाषी भी होने के कारण डा० केलकर इस 'मराठा हिन्दी' के क्रमिक विकास आदि के साथ उसका सुव्यवस्थित गहन भाषाशास्त्रीय अध्ययन साधिकार प्रस्तुत कर सकते हैं। अतः उनसे यह विशेष आग्रह होगा कि इस विषय विशेष का गहराई तक अध्ययन कर उसके सम्बन्ध में सुव्यवस्थित प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत करें। तृतीय परिशिष्ट में प्रकाशित की जा रही पत्रों की प्रतिलिपियों को यदि कालानुक्रम से अथवा किसी सुनिर्धारित वर्गीकरण के आधार पर छापा जाता तो इतिहास और भाषाशास्त्र के संशोधकों को विशेष सुविधा होती।

अन्त में डा. का. शं. केलकर विशेष धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने इस सर्वथा अछूते तथा पूर्णतया उपेक्षित विषय की ओर ध्यान ही नहीं दिया, अपने अथक परिश्रम द्वारा विचारोत्पादक यह शोध-ग्रन्थ प्रस्तुत कर इस महत्व-पूर्ण विषय पर सर्वथा नया प्रकाश डाला तथा भावी संशोधकों को अध्ययनार्थ नई दिशा दिखाई है। यह शोध-ग्रन्थ पठनीय और संग्रहणीय है।

महाराज कुमार
डा० रघुबीरसिंह

"रघुबीर निवास" सीतामऊ (मालवा) जनवरी ३१, १९७० ई०

प्रस्तावना

"संसार की भाषाओं में अनुपात की दृष्टि से हिन्दी भाषा का तीसरा क्रमांक है।" (क) हिन्दी साहित्य की दीर्घकालीन गाथा को सूत्रबद्ध रूप में प्रस्तुत करने का प्रथम प्रयास करने वाले फ्रांसीसी लेखक "गार्सा द तासी" के शब्दों में "हिन्दुस्तानी को समस्त एशिया में कोमलता और विशुद्धता की दृष्टि से जो ख्याति प्राप्त है वह अन्य किसी को नहीं। वह भाषा वास्तव में भारत की सबसे अधिक अभिव्यंजना शक्ति सम्पन्न और सबसे अधिक शिष्ट प्रचलित भाषा है।" (ख) इस श्रेष्ठ भाषा के गद्यकाल का प्रारम्भ और प्रारंभिक स्वरूप के सम्बन्ध में अभी तक कम सामग्री उपलब्ध है। प्राप्त सामग्री के आधार पर कहा जाता है कि सं० १८०३ ई० में श्री लल्लूलालजी ने एक नई भाषा गढ़ी और उसी का नाम खड़ी बोली पड़ा। परन्तु यह कथन सन्देहात्मक है क्योंकि इसका पूर्ववर्ती रूप सोलहवीं, सत्रहवीं शताब्दी के ग्रन्थ-वार्तासाहित्य, टीका साहित्य और अनुवाद ग्रन्थों में पहले से ही प्राप्त होता है।

मराठा इतिहास के ग्रन्थ पढ़ते समय १८ वीं शताब्दी में लिखे कुछ थोड़े "हिन्दी पत्र" देखने को मिले। अतः उस शती के पत्र खोज निकालकर, उनका अध्ययन कर तत्कालीन भाषा का रूप—हिन्दी गद्य का प्रारम्भिक रूप—जाँचने की उत्कण्ठा एवम् जिज्ञासा निर्माण हुई। इसकी चर्चा आदरणीय डॉ० मिश्र जी से करने के उपरान्त उनके प्रोत्साहन से "१७ वीं शती के हिन्दी पत्र" इस विषय पर उनके निर्देशन में पी. एच्. डी. उपाधि के लिये कार्य करता रहा।

इस प्रबन्ध के लिये भिन्न-भिन्न स्थानों से और संस्थाओं से सामग्री ढूंढ़नी तथा

(क) "सन्डे स्टन्डर्ड" मई २१, इ. स. १९६१ पृ. १३ डिरेक्टर, इन्टर नेशनल आर्काइव्ज वाशिंगटन की सूचना के अनुसार।

(ख) हिन्दुई साहित्य का इतिहास पृ. ५९
[मु० लेखक—गार्सादतासी, अनु० डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय]

जुटानी पड़ी है। "पेशवा दफ्तर" (Alienation office) पूना में ऐतिहासिक तथा शासन से सम्बन्धित पुराने कागज-पत्रों का महत्त्वपूर्ण एवं विस्तृत संग्रह है। इस दफ्तर में संगृहीत बस्तों (रुमालों) की संख्या कुल ३४,९७२ है। इन बस्तों में कहीं-कहीं एकाद हिन्दी के पत्र भी मिलते हैं। खोज करने वाले विद्यार्थी को इनमें कुछ सामग्री मिल सकती है। इस दफ्तर के कई बस्तों में से ढूंढ़ कर मैंने कुछ पत्र प्राप्त किये हैं। भारत इतिहास संशोधन मंडल पूना के द्वारा, इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों के वंशजों की ओर से मराठी, संस्कृत, फारसी, हिन्दी और कन्नड़ भाषा में लिखे गये सोलह लाख से अधिक कागज-पत्र इकट्ठे किये गये हैं। इन कागजों में से प्राप्त लगभग २० पत्र प्रबन्ध की सामग्री के अन्तर्गत रखे हैं। धुलिया में स्थित "राजवाड़े संशोधन मंडल" में भी अन्य सामग्री के साथ-साथ दस हजार ऐतिहासिक कागज-पत्र हैं। इस मंडल में कुछ बस्तों को ढूंढ़ने पर आठ हिन्दी पत्र मिले जिन्हें सामग्री में सम्मलित किया गया है। "राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज बीकानेर" में राजस्थान के विभिन्न राज्यों में होने वाला पत्र-व्यवहार संग्रहीत है। इसके साथ ही मुगलकालीन अन्य सामग्री भी संग्रहीत है। यह सामग्री प्रधान रूप से राजस्थानी और फारसी में लिखी हुई है। इस सामग्री के अन्तर्गत "खरीता" भाग में राजस्थान के शासक तथा अन्य राजा लोगों या शासकों में जो पत्र व्यवहार हुआ वह मूल रूप में सुरक्षित है। इन खरीतों में प्राप्त पत्रों के लगभग ९० पत्र प्रबन्ध की सामग्री के अन्तर्गत स्वीकृत हैं।

शोध-प्रबन्ध के तृतीय परिशिष्ट में दिये हुए पत्र प्राप्त स्थानों के अनुसार इस प्रकार हैं। पत्र क्र. १ से ९० पत्र पेशवा दफ्तर पूना; पत्र क्र. ९१ से ९७ तथा पत्र क्र. ९०० और १०० भारत इतिहास संशोधन मंडल, पूना; पत्र क्र. ९७ नासिक सार्वजनिक वाचनालय, नासिक; पत्र क्र. १०१ से पत्र क्र. १०७ राजवाड़े संशोधन मंडल, धुलिया; पत्र क्र. १०९ से पत्र क्र. २०७, राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज बीकानेर से प्राप्त हैं।

इन प्राप्त पत्रों को पढ़ना भी एक समस्या थी क्योंकि उनकी लिपि तथा लिखने की शैली हस्तलिखित ग्रन्थों की ही तरह नहीं थी। ये पत्र विभिन्न व्यक्तियों द्वारा तथा विभिन्न स्थानों से लिखे गये हैं। पर्याप्त परिश्रम के बाद मैं इन्हें अच्छी तरह पढ़ने में समर्थ हुआ।

किसी भी भाषा के पत्रों का साहित्यिक दृष्टि से महत्त्व उतना नहीं होता

जितना कि ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि। भाषा के स्वरूप की दृष्टि से विशेष रूप से आधुनिक युग के पहले भारत में पत्रों का संग्रह साहित्यिक दृष्टि से नहीं किया गया। यदि उनका संग्रह मिलता है तो उनके अन्तर्गत निहित ऐतिहासिक या राजनीतिक तथ्यों के कारण। इसी दृष्टि से हमारे सामने कुछ ऐसे पत्र आते हैं जो हिन्दी में लिखे हुए हैं किन्तु वे मराठी क्षेत्र से सम्बन्धित हैं। इनकी सुरक्षा इसलिये की गयी कि प्रायः ये समकालीन राजाओं या अन्य महापुरुषों से सम्बन्धित हैं।

यद्यपि ये पत्र मराठी क्षेत्र से सम्बन्धित हैं लेकिन इनका सम्बन्ध उस समय की देशव्यापी परिस्थिति से है क्योंकि न केवल इनके अन्तर्गत उसके स्पष्ट एवं सांकेतिक तथ्य मिलते हैं वरन् वे देश के ऐसे अनेक क्षेत्रों से लिखे गये हैं जो महाराष्ट्र के बाहर हैं। निश्चय ही उनका सम्बन्ध देशव्यापी राजनीतिक व सामाजिक स्थिति से था। अतएव इनके अन्तर्गत समाविष्ट तथ्यों और घटनाओं के स्पष्टीकरण के लिये यह आवश्यक है कि हम समवर्ती भारतीय और विशेष रूप से भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थिति का अवलोकन करें।

वैसे ये पत्र ऐतिहासिक और राजनीतिक उद्देश्य से सुरक्षित किये गये हैं और इनका सम्बन्ध तत्कालीन घटनाओं से तथा महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से है किन्तु ये सभी पत्र हिन्दी भाषा में हैं जो इस बात के द्योतक हैं कि अन्तर्राज्यीय व्यवहार के लिये उस समय हिन्दी भाषा का प्रयोग किया जाता था और न केवल महाराष्ट्र क्षेत्र से उत्तर भारत के अन्य क्षेत्रों को पत्र लिखे जाते थे वरन् इन क्षेत्र में वहाँ के स्थानों से भी पत्र आते थे।

इस प्रबन्ध में जिन पत्रों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है वे ई. स. १७०१ से १८०० ई० तक के हैं। इन्हें देखकर आश्चर्य सा होता है कि १८. वीं शताब्दी में हिन्दी भाषा का इतना ज्यादा प्रचार था और जिस भाषा को आज हम राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर रहे हैं उसका उस समय का रूप बहुत भिन्न नहीं थी। ढाँचा लगभग इसी प्रकार का था। यद्यपि यह समय ब्रजभाषा काव्य रचना का था फिर भी धार्मिक और साहित्यिक क्षेत्रों के अतिरिक्त राजनीतिक, सामाजिक और व्यावहारिक कार्यों के लिये जिस भाषा का प्रयोग किया जाता था उसका ढाँचा मूलतः खड़ी बोली या आज की नागरी हिन्दी का ही था। अतएव यह सोचना एक भ्रम की बात है कि "हिन्दी का राष्ट्रीय रूप अब हमें बनाना है।" वास्तव में उसका

राष्ट्रीय रूप शताब्दियों पूर्व ही बना हुआ है। जो परिवर्तन हमारी दृष्टि के सामने है वह किसी भी सजीव और विकासशील तथा प्रचलित भाषा के लिये समय और युग सापेक्ष परिवर्तन है, इससे अधिक नहीं। अतएव इन पत्रों का भाषा की साहित्यिक शैली से अधिक महत्त्व नहीं लेकिन हिन्दी भाषा के व्यवहारोपयोगी रूप की दृष्टि से काफी महत्त्व है। क्योंकि हम इसमें देखते हैं कि मूल ढाँचा एकसा होते हुए भी आवश्यकतानुसार उपयोगी शब्द विभिन्न भाषाओं के ग्रहण करने में किसी भी प्रकार के प्रतिबन्ध से काम नहीं लिया गया। अतएव इन पत्रों का भाषा के विकास-क्रम की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्त्व है। प्रबन्ध के लिये प्राप्त पत्रों का अध्ययन दो दृष्टियों से किया गया है। प्रथम भाषा की दृष्टि से और द्वितीय ऐतिहासिक तथ्यों की दृष्टि से। इन्हीं दोनों दृष्टियों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को दो खण्डों में विभाजित किया गया है। प्रथम खण्ड में १८ वीं शताब्दी के प्राप्त पत्रों का भाषाशास्त्रीय और द्वितीय खण्ड में ऐतिहासिक अध्ययन किया गया है।

प्रबन्ध की भूमिका में १८ वीं शताब्दी की राजनैतिक पृष्ठभूमि का विवरण दिया गया है। यह वह काल था जब मुगल साम्राज्य की अवनति हो रही थी और मराठों का उत्कर्ष राजनीति के क्षेत्र में चरमसीमा पर था। अंग्रेजों का आगमन भारत में हो चुका था और वे अपना पैर जमाने के प्रयत्न में थे।

प्रथम अध्याय में इन पत्रों की लेखन-प्रणाली की परीक्षा की गयी है। पत्रों की भाषा में प्रयुक्त लिपि ठीक-ठीक उच्चरित भाषा का प्रतिनिधित्व नहीं करती इसलिये दोनों के साम्य एवं वैषम्य की जाँच की गयी है और प्रयुक्त लिपि का ध्वन्यात्मक रूप निर्धारित किया गया है।

द्वितीय अध्याय में प्राप्त पत्रों की भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों का विश्लेषण किया गया है। कौन-कौन सी स्वर और व्यंजन ध्वनियाँ प्राप्त होती हैं, ध्वनियों का संयोग किन-किन के साथ है, शब्दों में ध्वनियों की क्या व्यवस्था है आदि का ववेचन है।

तीसरे और चौथे अध्याय में शब्द रूपों का अध्याय प्रस्तुत किया गया है। तीसरे अध्याय में संज्ञा, सर्वनाम, कारक और विशेषण के विभिन्न रूपों तथा उनके लिंग वचन पुरुष आदि के सन्दर्भ में परिवर्तित रूपों का भी अध्ययन किया है। चौथे अध्याय में क्रिया, क्रिया-विशेषण तथा अन्य अव्ययों (सम्बन्ध सूचक समुच्चय

बोधक) का अध्ययन है। पत्रों में प्राप्त इनके विभिन्न रूपों का निर्देश तो किया ही गया है साथ ही इनके अन्तर्गत प्राप्त अन्य भाषाओं के रूपों का विवेचन भी किया गया है ।

पांचवे अध्याय में शब्द समूह का अध्ययन प्रस्तुत है। इन पत्रों में विभिन्न भाषाओं के शब्द प्राप्त होते हैं। एक तरफ संस्कृत, प्राकृत आदि के शब्द हैं, दूसरी तरफ विदेशी भाषाओं—अरबी, फारसी, तुर्की और अंग्रेजी के भी शब्द हैं। इतना ही नहीं ब्रज, राजस्थानी, बुन्देली, मराठी, गुजराती भाषा के शब्द भी इनमें मिलते हैं। अलग-अलग भाषाओं के निर्देश के पश्चात् इस अध्याय में पारिभाषिक शब्दों की एक सूची भी दी गयी है जो उस काल में (युद्ध-संधि, अस्त्र-शस्त्र, राजकीय सम्मान, शासन-व्यवस्था, भूमि, कर, अधिकार आदि से सम्बन्धित) होती थी।

छठे अध्याय में पत्रों की भाषा की वाक्य रचना एवं शैली पर विचार किया गया है। शैली के अन्तर्गत वर्णनात्मक, भावात्मक, अलंकारिक आदि का निर्देश किया गया है। इसके अतिरिक्त प्राप्त मुहावरों की सूची भी दी गयी है।

शोध-प्रबन्ध के द्वितीय खंड में पत्रों का ऐतिहासिक अध्ययन है जो सातवें अध्याय से प्रारम्भ होता है। इसमें उस समय की डाक-व्यवस्था और पत्र-लेखन पद्धतियों का उल्लेख किया गया है। पत्रों के लिखने की विभिन्न पद्धतियों का अध्याय इसलिये महत्त्वपूर्ण है कि उससे तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक शिष्टाचार की रीति का संकेत मिलता है।

आठवें अध्याय में पत्रों में प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख है। ये तथ्य इतिहास के किसी कथन या प्रख्यात बातों को पुष्ट करने वाले हैं। कतिपय घटनाएँ अवश्य ऐसी हैं जो नयी सूचनाएँ देती हैं परन्तु ये पत्र इतिहास का एक नया स्रोत उद्घाटित करते हैं इस दृष्टि से इनका अलग विशिष्ट महत्त्व है।

नौवें अध्याय में पत्रों में प्रतिबिम्बित तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्थितियों का चित्रण है। यद्यपि इन पत्रों में शृङ्खलाबद्ध एवं व्यवस्थित रूप से जानबूझकर स्थितियों का वर्णन नहीं किया गया है किन्तु उनकी झांकी संकेत रूप में प्राप्त होती है जिससे इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अन्त में तीन परिशिष्ट दिये गये हैं। जिनके अन्तर्गत प्रथम में पत्रों में उल्लखित कतिपय महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों का परिचय तथा अन्य

व्यक्तियों का नामोल्लेख है। द्वितीय में पत्रों में आये हुए स्थानों की सूची और तृतीय में सभी प्राप्त पत्र जिनके आधार पर यह अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्राप्त पत्रों की प्रतिलिपि अविकल रूप में यहाँ इसलिये दी गयी है कि ये पत्र अबतक अप्रकाशित हैं।)

उपर्युक्त सभी अध्याओं की सामग्री मौलिक है। वह अभी तक कहीं भी प्रकाशित नहीं हुई है और न एक स्थान पर संगृहीत है अतः इनको एकत्र करने के रूप में लेखक का यथ्यानुसंधान सम्बन्धी यह मौलिक प्रयास है। इसके साथ ही उपर्युक्त आठ अध्यायों में जो विवेचन प्रस्तुत किया गया है उसमें कहीं-कहीं इतिहास या व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थों से सहायता ली गयी है परन्तु इसमें प्रस्तुत किया गया विश्लेषण और विवेचन लेखक का अपना निजी कार्य है।

मार्च, १९६५ — का० शं० केलकर

भारत की राजनैतिक स्थिति (१८ वीं शती)

(क) मुगल साम्राज्य

भारतीय इतिहास की दृष्टि से १८ वीं शताब्दी महत्त्वपूर्ण एवं अध्ययनीय है। इस शताब्दी में भारतीय भूमि के रंगमंच पर हम तीन प्रबल साम्राज्य सत्ताओं का खेल देखते हैं। मुगल साम्राज्य का स्वर्णकाल गुजर गया था। इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हम महान मुगल साम्राज्य का ह्रास और पतन देखते हैं। इसी काल में विशेषतया द्वितीय खड में हम मराठों की सत्ता का उत्तरी भारत के राज्य शासन में प्रवेश और प्रभुत्व देखते हैं। इस शताब्दी के तृतीय खंड में मराठी साम्राज्य सत्ता का चरम विकास दिखाई पड़ता है और चतुर्थ खंड में हम मराठी सत्ता का धीरे-धीरे ह्रास और अंग्रेजी साम्राज्य सत्ता का भारतीय भूमि पर उदय और विकास देखते हैं। इनमें से मुगल तथा मराठी सत्ता के कार्य कलापों से हमारा अधिकतर सम्बन्ध है अतः इन सत्ताओं के उदयास्त का अध्ययन ही यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

१८ वीं शती का प्रारम्भ काल मुगल तथा मराठा दोनों के लिये अन्धकारमय एवं निराशा से भरा हुआ था। दक्षिण के मुसलमानी राज्य जीतने के अनन्तर दक्षिण का शेष स्वतन्त्र राज्य—मराठों का राज्य नष्ट करके भारत को "दार-उल्-इस्लाम' बनाने का अपना स्वप्न यथार्थ करने की महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर मुगल सम्राट् औरंगजेब ने मुगल साम्राज्य की पूरी ताकत से अपना दवाव बढ़ाया। थोड़े ही समय में अपनी आकांक्षा को असफल होती हुई देखकर वह निराश हो गया। उसके प्रताप का तेज उसके जीवन के अन्तिम वर्षों में फीका पड़ गया था। दक्षिण के युद्धों में सेना तथा प्रतिष्ठा नष्ट हुई, उत्तर भारत में अराजकता छा गयी और भावी विनाश के लक्षण स्पष्ट रूप से प्रकट होने लगे। "लेनपूल" के कथनानुसार "बीमारी इतनी बढ़ चुकी थी कि अत्यधिक साहसपूर्ण शल्यक्रिया भी उसे अच्छा नहीं कर सकती थी।" हठी कठोर, असहिष्णु किन्तु पराक्रम, अनुभव, धैर्य और कूटनीति में बेजोड़ सम्राट औरंगजेब की आँखों के सामने अपनी महत्वाकांक्षा का महान वृक्ष खोखला होकर दक्षिण की भूमि पर धड़ाम से गिरकर नष्ट होने का चित्र नाचने

लगा। जीवन के अन्तिम वर्षों में बुढ़ापा, सख्त बीमारी और दक्षिण विजय की असफलता की वेदना से वह इतना दुर्बल बन गया कि अन्तिम दिनों में दिल्ली जाने के लम्बे सफर के कष्ट सहने की ताकत उसमें न रही। जिन्दगी के ९१ वर्ष बीत जाने पर २० फरवरी १७०७ ई० को मौत ने सम्राट औरंगजेब को अपनी गोद में ले लिया। (ख)

औरंगजेब ने अपने दिनों में सत्ता संघर्ष टालने के लिये अपना साम्राज्य तीनों पुत्रों में बाँट दिया था। परन्तु बूढ़े सम्राट की मृत्यु के पश्चात् सम्राट पद के लिये संघर्ष हुआ जिसमें औरंगजेब के दो पुत्र तथा तीन पौत्र मारे गये। (ग) अन्त में औरंगजेब का तिरसठ वर्षीय पुत्र, "बहादुर शाह" के नाम से गद्दीपर बैठा। "बहादुर शाह" का शासन पाँच वर्षों का (स. १७०७ से १७१२ ई० तक) रहा। "मुगल साम्राज्य की परंपरागत प्रतिष्ठा के बल पर शासन कार्य किसी रीति से चलता रहा।" (घ) और "शाह बे खबर" बहादुरशाह का शासन बहुत कुछ सफल रहा।

२७ फरवरी, १७१२ ई० के दिन बहादुरशाह की मृत्यु हुई। उसके पश्चात् उसके चारों पुत्रों में उत्तराधिकार के लिये संघर्ष हुआ। सत्ता संघर्ष में सफल बनकर २९ मार्च, १७१२ ई. को जहांदरशाह गद्दी पर बैठा। उसने जुल्फकारखाँ को अपना प्रधानमंत्री बनाया। "जहांदरशाह अत्यन्त विलासी था। वह सदा भोग-विलास में मस्त रहता था। लाल कुमारी नाम की वेश्या का अत्यादर होने से उसके रिश्तेदारों के हाथों में शासन सत्ता चली गयी और सारा राजकाज अस्तव्यस्त हो गया।" (ङ)

इतिहास वेत्ताओं की राय से इसी समय मुगल साम्राज्य के राज्य शासन में एक भीषण एवम् विकृत समस्या का प्रारम्भ हुआ। इस समय तक राज्य सत्ता के लिये संघर्ष शाहजादों में चलता रहा किन्तु इस काल से साहजादे पार्श्वभूमि में चले

(ख) कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, जिल्द ४ पृ. ३१७।
(ग) ,, ,, पृ. ३१९।
(घ) ,, ,, पृ. ३२४।
(ङ) ,, ,, पृ. ३२६।

गये और शक्तिशाली सरदारों में सत्ता के लिये संघर्ष होने लगा। महत्वाकांक्षी सरदारों ने बादशाह और शाहजादों को अपने हाथों का खिलौना बनाया और उनके नाम, आदर और उनकी सत्ता का उपयोग अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये करने लगे। इन सरदारों ने "राजनिर्माताओं" का पार्ट अदा किया। बाबर, अकबर, शाहजहाँ आदि महान् सम्राटों से विभूषित मुगल सम्राट के पद का वैभव, इज्जत और महानता नष्ट हुई और दुर्व्यसनों, बुराइयों में फँसे हुए ये नाम मात्र के सम्राट प्रबल सरदारों के हाथ की कठपुतलियाँ बन गये।

फर्रुखसियर ने जहाँदरशाह के विरुद्ध गद्दी का दावा किया। उसने सैयद भाइयों से सहायता ली। दोनों में लड़ाई हुई और जहाँदरशाह, बुरी तरह पराजित हुआ। फर्रुखसियर बादशाह बना। ११ फरवरी १७१३ ई० को जहांदरशाह मार डाला गया और विरोधी दल के प्रमुख लोग भी मरवा दिये गये। (च)

फर्रुखसियर सुन्दर किन्तु अत्यन्त कायर, अविवेकी और चरित्रहीन था। वह अपने मन्त्रियों पर विश्वास नहीं करता था। वह अपने मंत्रियों के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगा। अपने सहायक सैयद भाइयों के विरुद्ध भी वह षड्यन्त्र रचने लगा। षड्यन्त्र का नाश करके बादशाह को कैद करने के लिये सैयद अब्दुल्लाखाँ ने दक्षिण में स्थित अपने भाई-हुसेनअल्लीखाँ को दिल्ली बुलाया। हुसेन अल्लीखाँ ने मराठा राजा शाहू से संधि करके मराठों की सहायता प्राप्त की। इस संधि के अनुसार पेशवा बालाजी विश्वनाथ और सेनापति खंडेराव दाभाड़े के नेतृत्व में ११,००० मराठी सेना दिल्ली आ गयी। सैयद भाइयों ने शहर, किला और राजमहल को घेर कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। १८ फरवरी, १७१६ ई० को "रफी-उद-दरजात" को मयूर सिंहासन पर बिठाकर सम्राट घोषित कर दिया गया। फर्रुख-सियर को अन्धा बनाकर बन्दीखाने में डाला गया। अनन्त यातनाओं के कारण अप्रैल, १७१६ ई० को उसकी मृत्यु हुई।

"रफी-उद-दरजात" और शाहजहाँ द्वितीय इन दोनों अल्पकालीन शासकों के पश्चात् २८ सितम्बर, १७१६ ई० को रोशन अख्तर को "मुहम्मद शाह" के नाम से सिंहासन पर बिठाया गया।

"मुहम्मद शाह" स० १७१६ से १७४८ ई० तक राज्य शासन करता रहा। इसके शासन काल में कई महत्वपूर्ण घटनाएँ हुई। इस सम्राट के शासन काल में

(च) केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इन्डिया, जिल्द ४ पृ. ३३०।

"शासक निर्माता" सैयद भाइयों का नाश हुआ। इसी काल में मराठों ने दिल्ली तक धावा मारा और राजधानी तक अपना आतंक फैलाया, इसी काल में नादिरशाह का भयंकर आक्रमण हुआ तथा मुगल साम्राज्य के आधार एक-एक कर नष्ट हुए और वह साम्राज्य खोखला हो गया।

सैयद भाइयों ने मुहम्मदशाह को गद्दी पर बिठाया किन्तु शासन पूर्णतया अपने हाथों में रखा। "निजाम-उल्-मुल्क" मालवा का सूबेदार नियुक्त हुआ। निजाम को दबाने के लिये निकला हुसेन अल्लीखाँ रास्ते में षड्यन्त्रकारियों के द्वारा मारा गया [ज] बिलोचपुर के पास सैयद अब्दुला खाँ युद्ध में हार गया। [झ] इस प्रकार शासक निर्माता सैयद भाइयों की जंजीर से बादशाह मुक्त हुआ। उसके पश्चात् निजाम-उल-मुल्क को मंत्रीपद से हटा दिया गया। दिल्ली दरबार में वह कठिन अनुशासन रखना चाहता था; किन्तु दरबारी उसे पसन्द नहीं करते थे। अतः किसी बहाने दिल्ली छोड़कर वह दक्षिण में आ गया और दक्षिण के छः सूबों का वास्तविक एवं स्वतन्त्र शासक बना। निजाम-उल-मुल्क ने हैदराबाद को अपनी राजधानी बनाया।

सम्राट ने पेशवा बाजीराव प्रथम को प्रसन्न करने के लिये उसे मालवा का सूबेदार स्वीकार लिया, किन्तु पेशवा इससे सन्तुष्ट नहीं था। उसने सम्पूर्ण मालवा, चम्बल के समस्त दक्षिणी प्रदेश तथा प्रयाग, काशी, मथुरा और गया जैसे हिन्दू तीर्थ-स्थानों पर सम्पूर्ण अधिकार की माँग की। इन मांगों को ठुकराकर बादशाह ने बाजीराव का दमन करने के लिये शाही सेना भेजी। बाजीराव इस शाही सेना को चकमा देकर दिल्ली के निकट जा धमके। उन्होंने दिल्ली के आसपास की भूमि को जलाया। तब सम्राट ने दबाने का आदेश निजाम-उल-मुल्क को दिया। अपने नेतृत्व में शाही सेना लेकर वह राजधानी से निकला। भोपाल के पास मराठों से मुठभेड़ हुई। मराठों ने पहले ही भयंकर आघात में उसका गर्व-मर्दन कर लिया। निजाम-उल-मुल्क भोपाल के किले के आसरे गया। आखिरकार सिरोंज के पास उसे १७ जनवरी १७३७ ई० को मराठों से सुलह करनी पड़ी। [ट] मराठों की इस विजय ने सिद्ध किया कि मुगल साम्राज्य के शासकों की शाही ताकत अब खोखली बनी है। इस

(ज) केंब्रिज हिस्ट्री जि. पृ. ३४४।
(झ) ,, ,, पृ, ३४५.।
(ट) ,, जि. ४ पृ. ३४४।

सन्धि के पश्चात् दूसरे वर्ष नादिरशाह का भयंकर आक्रमण हुआ। इतिहास वेत्ता "इरविन" के कथनानुसार "यह आक्रमण मुगल साम्राज्य के नाश का कारण नहीं था वरन् पतन के रोग का चिह्न मात्र था।" (ठ) फारस के विजेता नादिरशाह ने मुगल साम्राज्य की वास्तविक स्थिति को दुनिया के सामने रख दिया। "नादिरशाह ने उस भड़कीली सुन्दर पोशाक को दूर हटाया जिसके आवरण के नीचे लोग एक लाश को शक्तिशाली पुरुष मानकर बैठे थे।"(ठ)

ईरान का बादशाह नादिरशाह अफगानिस्तान, काबुल के रास्ते लाहौर आ गया। शाही फौज बादशाह करनाल पहुँचा। २४ फरवरी, १७३९ ई. को करनाल की लड़ाई नादिरशाह जीत गया। दो करोड़ रुपयों की क्षतिपूर्ति स्वीकार कर वह फारस को लौटने वाला था किन्तु कुछ सरदारों ने नादिरशाह की धन लालसा को उकसाया। अतः वह दिल्ली आ गया। नादिरशाह के कुछ सैनिकों की रास्ते पर हत्या की गयी अतः आग बबूला होकर २३ मार्च, १७३९ ई० को नादिरशाह ने "कत्ले आमे" आज्ञा दे दी। यह "कत्ले आम" आठ घन्टों के अनन्तर मुहम्मदशाह की प्रार्थना पर रोक दी गयी। १६ मई, १७३९ ई० को उसने दिल्ली से प्रस्थान किया। जाते समय शाही खजाने के हीरे, मोती, जवाहरात, प्रसिद्ध मयूर सिंहासन और दूसरे कीमती सामान १५ करोड़ नकद रुपया तथा हजारों हाथी, घोड़े, ऊँट और सैकड़ों कारीगर अपने साथ लेकर मुहम्मद शाह को गद्दी पर बिठाकर वह फारस लौट गया।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् सिर्फ ३१ वर्षों में महान मुगल साम्राज्य ऐसे तहस नहस हुआ जैसे वायु के झोंके से ताश का महल। इस विनाश की एक लम्बी कारण परम्परा बतायी जाती है जिसका परिणाम साम्राज्य की केन्द्रीय शक्ति का नाश और मराठों की शक्ति का विकास था। इस विनाश के अनेक कारण बताये गये हैं। उत्तराधिकार के लिए शाहजादों तथा प्रबल सरदारों के परस्पर युद्ध। मुगल साम्राज्य के आधारभूत सरदारों में घातक सत्ता, स्पर्धा और संघर्ष। सिक्ख, जाट, बुन्देला, मराठा आदि लोगों के साथ होने वाली लड़ाइयों में शक्तिशाली सरदारों का विनाश ये प्रमुख कारण थे। इसके साथ-साथ मुसलमानों के भिन्न दल और उनके भयंकर संघर्ष के कारण कर्तृत्वशाली मुसलमान सरदार और अधिकारियों की हानि और उनके स्थान पर कर्तृत्वहीन दिखावे के बातूनी अधिकारियों की नियुक्ति।

(ठ) लेटर मुगल्स - इरविन पृ. ३०७।

शासन में गिरा हुआ नैतिक स्तर और बुद्धिमत्ता का अभाव ये भी कारण थे। ऐसे राज्य-व्यवस्था के कारण स्थान-स्थान पर हिन्दू जमींदार, छोटे राजा भी अत्याचार और जुल्म के शिकार बन गये। उनके मन में विद्रोह की भावना भड़क उठी। मराठों के उदय से "उदयोन्मुख सूर्य के उपासक" बनने के हेतु वे मराठों की आधीनता स्वीकार करना पसन्द करके उनकी सहायता करने लगे।

नादिरशाह के आक्रमण से मुहम्मदशाह और उसके राज्य पर संकटों का पहाड़ टूट पड़ा। देश तबाह हो गया। फिर भी न बादशाह की न उसके सरदार अधिकारियों की आँखें खुलीं। शासन-व्यवस्था प्रतिदिन बदसे बदतर हो गयी। फिर भी "राजधानी दिल्ली" और "मुगल सम्राट" के नाम का जादू अब भी लोगों के मन पर अपना प्रभाव जमाता रहा।

नादिरशाह के पश्चात् अफगान जाति का अहमदशाह अब्दाली अफगानिस्थान का बादशाह बन बैठा। स. १७४८ ई० में उसने पंजाब पर आक्रमण किया। शाही सेना ने उसका मुकाबला कर उसे लौटने पर विवश किया।

२६ अप्रैल, १७४८ ई० को बादशाह मुहम्मदशाह की मृत्यु हुई। उसके बाद शाहजादा अहमद २८ अप्रैल, १७४८ ई० को "अहमदशाह" के नाम से गद्दी पर बैठा। वह नीच, दुराचारी और व्यभिचारी भी थां तथा उसमें शासकों के गुणों का अभाव था। अहमदशाह के शासन काल में अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर अनेक आक्रमण किये।

सं १७५१ ई० में अहमदशाह अब्दाली के भारत आक्रमण की खबर फैल गयी। इस आगामी आक्रमण से डरकर सम्राट अहमदशाह ने मराठों से सहायता की याचना करके उनके साथ संधि करली। इस संधि के अनुसार मराठा शासक मुगल साम्राज्य की भीतरी तथा बाहरी शत्रुओं से रक्षा करने के लिये वचन-बद्ध हो गये। इस समय से मराठा शासक साम्राज्य के रक्षक बन गये और अपने इस कर्त्तव्य पूर्ति के लिए उन्हें दिल्ली के राज्य शासन में हस्तक्षेप करना पड़ा।

इस काल के लगभग दिल्ली दरबार के वजीर और शासन के अन्य अधिकारियों में शासन-सत्ता के लिये संघर्ष प्रारम्भ हुआ। इन संघर्षों से बादशाह की कठिनाइयाँ बढ़ती थीं अतः उनसे मुक्त होने के लिये वह मराठा शासकों को पत्र लिखकर व्यवस्था करने की प्रार्थना बार-बार करता था। (पत्र क्र. १६३) इस संघर्ष में सहायता के लिये मराठों के साथ जाटों को भी बुलाया गया। इमाद-उल-

मुल्क और इतिजामुद्दोला में होने वाले संघर्ष की परिणति लड़ाई में हुई। विजयी इमाद-उल-मुल्क ने बादशाह को सिंहासन से उतार दिया। एक सप्ताह के पश्चात् बादशाह अहमदशाह तथा इसकी माता को अन्धा बना दिया गया।

अहमदशाह को सिंहासन से हटाने पर जहाँदरशाह के पुत्र "अजीजुद्दीन" को आलमगीर द्वितीय के नाम से २ जून १७५४ ई० को राजगद्दी पर बिठा दिया गया। उसका शासन काल छः वर्षों का रहा। यह दूसरा आलमगीर अत्यन्त दुर्बल, अस्थिर चरित्र का तथा नेता के गुणों से बचित था। (ख) अतः वह वजीर के हाथ का खिलौना ही बना रहा। यह नया वजीर इमाद-उल-मुल्क सिद्धान्तहीन और स्वार्थी था। उसने राजकोष का उपयोग अपने स्वार्थ के लिए किया और राज परिवार के लोगों को भूखों मारा। उसने सम्राट के बड़े लड़के आली गौहर (भविष्यत् के शाह आलम द्वितीय) को दिल्ली से भगा दिया। (द) इमाद-उल-मुल्क को अपने शासन के लिये मराठों की शक्ति पर आश्वस्त रहना पड़ा। इस सम्राट के शासन काल में अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण करके २८ जनवरी, १७५७ ई० को दिल्ली में प्रवेश किया। उसने सरदारों, अधिकारियों तथा शहर निवासियों से जबरदस्ती से धन वसूल किया और नगर को लूटने की आज्ञा दे दी। (द) इस प्रकार एक महीना तक वह दिल्ली में रहा। अब्दाली की सेना ने प्रसिद्ध मथुरा नगर को लूटा, मन्दिरों को तोड़ा और यात्रियों का वध किया। मथुरा-वृन्दावन को लूटने के पश्चात् वह सेना दल महान गया। इस नगर में महामारी फैल जाने से अफगान सेना के बहुत से सिपाही मर गये। विवश होकर सेना को दिल्ली लौटना पड़ा। (घ)

शाही वंश की अनेक स्त्रियों को अपने साथ लेकर करोड़ों रुपयों की लूट जुटा कर अब्दाली हिन्दुस्तान से निकल गया। जाते समय उसने "इमाद-उल-मुल्क को वजीर बनाया। नजीब खाँ को मीरबख्शी बनाकर सम्राट की रक्षा का भार उस पर सौंपा। (न) नजीब उद्दौला ने भी राजकोष का पैसा अपने लिये खर्च करके शाही

(ख) फॉल ऑफ दि मुगल एम्पायर जि. २ पृ. ३।
(द) ,, ,, २ पृ. ७०-७२।
(ध) ,, ,, २ पृ. ९०।
(न) ,, ,, २ पृ. ९३।

परिवार को भूखों तड़पाया। यह नया दरोगी इमाद-उल-मुल्क से भी बदतर निकला। राज परिवार के लोगों को उसकी ओर से अनेक यातनाएँ सहनी पड़ीं। वजीर और मीरबख्शी में फिर संघर्ष निर्माण हु ा। इमाद-उल-मुल्क ने मराठों की सहायता से नजीब उद्दौला के मकान को घेर डाला। नजीब उद्दौला ने आत्म समर्पण कर दिया और वह अपना अधिकार छोड़कर रुहेलखंड की अपनी जागीर को लौट गया।

तदुपरान्त बादशाह और वजीर इमाद-उल-मुल्क मे विरोध बढ़कर वह चरम सीमा को पहुँचा। बादशाह ने आक्रमणकारी अब्दाली के साथ पत्र-व्यवहार चालू कर उससे भारत आने की प्रार्थना की। अतः वजीर इमाद-उल-मुल्क "बादशाह को सन्त दर्शन के बहाने कोटला फिरोजशाह ले गया और ३० नवम्बर, १७५६ ई० को उसकी हत्या करवा दी। दूसरे ही दिन भूतपूर्व वजीर इन्तिजामुद्दौला को भी मरवा डाला।" (प)

बादशाह की हत्या करने के पश्चात् वजीर इमाद-उल-मुल्क ने कामबख्श के पोते "मुही-उल-मिल्लत" को शाहजहाँ तृतीय के नाम से सम्राट घोषित किया। आलीगौहर ने जब अपने पिता की मृत्यु की खबर सुनी तो २० दिसम्बर, १७५६ ई० को शाह आलम द्वितीय" के नाम से अपने को सम्राट घोषित किया और शुजा-उद्दौला को अपना वजीर नियुक्त किया। राजधानी दिल्ली पर उसके जानी दुश्मन इमाद-उल-मुल्क का अधिकार था अत. वह पूर्वी प्रान्तों में ही भटकता रहा। (प)

नजीब खाँ अपनी जागीर में लौट आने के पश्चात् अब्दाली को बार-बार लिखकर भारत में आने की प्रार्थना करता रहा। अतः अगस्त, १७५६ ई० में अब्दाली पंजाब में उतर लाहौर के रास्ते दिल्ली की ओर बढ़ा। सेना सहित वह गंगा-यमुना के दोआब में आ गया। नजीबउद्दौला अहमद खाँ बंगश, सादुल्ला खाँ तथा अन्य रुहेला सरदार इस आक्रमणकारी से जा मिले। अब्दाली ने दिल्ली से १६ मील उत्तर में बरारी घाट पर मराठा सरदार दत्ताजी सिंधिया पर आक्रमण करके दत्ताजी को मारा और सेना का नाश किया। (फ) इसके अनन्तर अब्दाली ने दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया। पेशवा बालाजी बाजीराव ने आक्रमणकारी को भारत से बाहर खदेड़ने की तैयारी की। अपने चचेरे भाई सदाशिव भाऊ के नेतृत्व में एक बड़ी और मजबूत

(प) फॉल ऑफ दि मुगल एम्पायर जि. २ पृ. १२०।
(फ) ,, ,, पृ. १५६।

सेना भेजी। पानीपत के मैदान के नजदीक दोनों सेनाएँ आमने-सामने डटी रहीं। छोटी बड़ी कई लड़ाइयों के पश्चात् १४ जनवरी १७६१ ई० को अंतिम लड़ाई होकर मराठी सेना की हार हुई। सेनापति सदाशिवराव भाऊ, विश्वासराव तथा अनेक मराठा सरदार वीरगति प्राप्त कर गये। इनके साथ डेढ़ लाख मराठा सैनिक घायल हुए या मारे गये। इस लड़ाइ से मराठों का भारत में साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न भग्न हुआ। इस लड़ाई ने मानो मराठों की कमर ही तोड़ दी। लड़ाई में प्राप्त विजय से अब्दाली को भी विशेष लाभ नहीं हुआ। उसकी सेना ने उसे लौट चलने के लिये बाध्य किया अतः शाह आलम को सम्राट घोषित कर "२० मार्च १७६१ ई० को वह दिल्ली से काबुल के लिये रवाना हुआ।" (ब) जाने के पहले अब्दाली ने नजीबउद्दौला को अमीर उल-उमरा की उपाधि देकर दिल्ली के अधिकार सौंप दिये। (ब)

शाह आलम द्वितीय को सम्राट तो घोषित किया गया था किन्तु वह दिल्ली से दूर पूर्वी प्रान्तों में भटकता रहा। दिल्ली का शाही तख्त सम्राट के अभाव में स. १७६० से स. १७७१ ई० तक खाली पड़ा रहा। इतिहास की यह एक अजीब घटना है।

इन दस वर्षों के भीतर मराठों ने भी अपने को पानीपत के भयंकर आघात से संभाला और उत्तर भारत में धीरे-धीरे अपना स्वामित्व स्थापित किया। पानीपत की हार एवं विनाश का सारा उत्तरदायित्व नजीबउद्दौला पर रखकर उसे कुचलने की योजना बनायी किन्तु "३१ अक्तूबर, १७७० ई० को नजीबउद्दौला की मृत्यु हुई।" (भ)

पूर्वी प्रदेशों में भटकने वाला बादशाह 'शाह आलम द्वितीय' स. १७६० से १७७० ई० अंग्रेजों की सुरक्षा में रहा। इस कार्य के बदले में बादशाह ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी "ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी" को सौंप दी। दिल्ली से राजमाता बादशाह को बार-बार बुलाती थी और दिल्ली जाकर सिंहासन पर विराजित होने की इच्छा उसके मन में भी बार-बार उठती। उत्तर भारत में मराठों की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर बादशाह ने उसे ले जाकर दिल्ली तख्त पर बिठाने

(ब) फॉल ऑफ दि मुगल एम्पायर जि. २ पृ. २७७।
(भ) दि न्यू हिस्ट्री ऑफ मराठाज जि. २ पृ. ५१०।

की प्रार्थना की। दिल्ली के शासन में सत्ता के लिये सबल सरदारों के पक्ष-विपक्षों में झगड़े चल रहे थे। स० १७८२ ई० में मुहम्मदबेग हमदानी और मिर्जा शफी में संघर्ष चला। २३ सितम्बर, १७८३ ई० के दिन हमदानी ने मिर्जा शफी को धोखे से मारा। (र) मराठा सरदारों की सहायता पाकर बादशाह राजधानी लौट आया और ६ जनवरी, १७७२ ई० को उसे सिंहासन पर बिठाया गया। (म) (प. १२६)

दिल्ली आकर शासन कार्य स्वीकारते ही बादशाह के सामने कठिन से कठिन समस्याएँ आ पड़ीं। शाही खजाना खाली हो गया था, सेना की तनख्वाह देनी बाकी थी, शाही परिवार भूखों मर रहा था और मराठों को सात परगने तथा ४० लाख रुपये देने का वादा पूर्ण करना था। बादशाह ने इससे राह निकालने का प्रयत्न किया किन्तु वह असफल रहा। दरबार में गरीबी ने अड्डा-जमाया और बादशाह मराठों के हाथ की कठपुतली बन गया।

बादशाही शासन किसी प्रकार चलता रहा किन्तु पतित साम्राज्य को उन्नत करने तथा उसकी आर्थिक दशा सुधारने में सब मंत्री और अधिकारी असफल रहे। नवम्बर १७८४ ई० में बादशाह ने महादजी सिंधिया को "वकील मुतलक" (संरक्षक) बनाया। महादजी को जाट, गुसाई और सिक्खों से लड़ना पड़ा। इसके पश्चात् महादजी राजस्थान की राजनीति में उलझ गया। उसकी अनुपस्थिति में उसके विरुद्ध दरबार में षड्यन्त्र रचे गये और उसे दरबार से हटाया गया। जाबिता खाँ का पुत्र 'गुलाम कादिर' सितम्बर १७८७ ई० में मीरबख्शी बन गया। वह सम्राट के विरुद्ध हो गया और उसने शाही खानदान पर अत्याचार किये। इस गुन्डे ने बादशाह को गद्दी से उतारा और अनेक यातनाएँ देकर उसे अन्धा किया। शाही परिवार की औरतों का घोर अपमान करके उन्हें भयंकर यातनाएँ दे दीं। शाही परिवार पर होने वाले इन अमानुषी अत्याचारों की कहानी इतिहास में अद्भुत एवं बेजोड़ है।

बादशाह ने महादजी सिंधिया को मदद के वास्ते दर्द भरी प्रार्थना की। सिंधिया ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। गुलाम कादिर साथियों सहित भाग गया। भागा हुआ गुलाम कादिर साथियों सहित पकड़ा गया। सम्राट, शाही परि-

---

(म) न्यू हिस्ट्री ऑफ मराठाज जि. २ पृ. ५१४। प. १२६।

(र) फॉल ऑफ दि मुगल एम्पायर जि. ३ पृ. २६१ और पत्र क्र. १५६।

वार तथा अन्य अधिकारियों की प्रार्थना पर शाही परिवार की इज्जत लूटने वाले इस गुन्डे की मार्च १७८६ ई० में हत्या कर दी गयी।

थोड़े ही समय में महादजी ने साम्राज्य के शेष शत्रुओं को हराया। उसकी शक्ति, पराक्रम और कीर्ति अब चरम सीमा को पहुँची। स. १७६२ ई० के आरम्भ में वह पेशवा से मिलने के लिये दक्षिण में पूना आ गया। इस राज्य के कार्यों में वह उलझ गया। आखिर १२ फरवरी १७६४ ई० के दिन पूना के पास वानबड़ी नाम के स्थान पर उसकी मृत्यु हुई। (ल) महादजी सिंधिया के पश्चात् दौलतराव सिंधिया उसका उत्तराधिकारी बना। (व) चारों ओर निराशा छा गयी थी। मराठों की शक्ति आपसी झगड़ों में नष्ट होती रही। दिल्ली दरबार में भी निराशा फैल गयी। सत्ता-स्वार्थ के लिये षड्यन्त्र रचे जाने लगे किन्तु दौलतराव इस परिस्थिति में किसी प्रकार परिवर्तन नहीं कर सका। अंग्रेजों की सत्ता अब दिन ब दिन विकसित होती रही। उन्होंने निजाम और पेशवा को अपने अधिकार में कर लिया। आखिर सितम्बर १८०३ ई० में लार्ड लेक ने दौलतराव सिंधिया से दिल्ली छीन ली। अन्धे सम्राट शाह आलम द्वितीय को अब समर्पण करने के बिना चारा न था। वह अंग्रेजों के अधीन हो गया। अंग्रेजों ने उसे पेन्शन (मासिक वृत्ति) दे दी। भारतीय इतिहासके १८ वीं शताब्दी के रचमंच पर अनेकविध दृश्य देखकर अधा बना यह सम्राट थक गया था। स. १८०६ ई० में मृत्यु ने उसे अपनी चिरशान्त गोद में सुला लिया।

प्रस्तुत पत्रों में इन घटनाओं-प्रसंगों से सम्बन्धित कुछ थोड़े पत्र उपलब्ध हैं जिनका उल्लेख उन्हीं घटना-प्रसंग या परिस्थिति के वर्णन के साथ किया गया है।

(ख) मराठों का उत्कर्षापकर्ष

राजा शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् मराठी राज्य पर संकटों का पहाड़ टूट पड़ा। संभाजी के राजा होते ही मराठों के शत्रुओं ने अपनी आक्रामक नीति प्रारम्भ कर दी। साम्राज्य-सत्ता की सारी ताकत जुटाकर औरंगजेब ने दक्षिण में घेरा डाला। मराठों का स्वतन्त्र राज्य तथा दक्षिण के अन्य मुसलमान राज्य नष्ट करके भारत में निःशेष मुगल साम्राज्य स्थापित करने पर वह तुला हुआ था। थोड़े ही

(ल) पत्र क्र. २०४।
(व) पत्र क्र २०३।

समय में उसने राजा संभाजी को पकड़कर उसकी निघृ'ण हत्या कर दी।[क] मराठा राज्य के लिये अन्धकार और निराशा का काल आ गया। संभाजी की हत्या के उपरान्त राजाराम मराठों का राजा बना किन्तु उसे लगभग १० साल तक भागदौड़ करनी पड़ी। कष्ट और अति परिश्रम के कारण १२ मार्च १७०० ई० को उसकी मृत्यु हुई। ऐसी अवस्था में महाराष्ट्र में एक वैचारिक परिवर्तन हुआ जिसके परिणाम में मराठों में एक ऐसी शक्ति का निर्माण हुआ कि औरंगजेब को भी इस भूमि में मराठों के सामने हार जाना पड़ा।

राजा संभाजी की निघृ'ण हत्या, राजपरिवार के व्यक्तियों का अपमान जनित बंदिवास, अपने राज्य और धर्म पर इस्लाम का असहिष्णु अत्याचारी आक्रमण, दक्षिण में घूमने वाले सैनिकों द्वारा ध्वस्त सामाजिक जीवन इन सारी बातों का परिणाम यह हुआ कि मराठों के मन में इन सारे अपमानों का बदला लेने की आग भड़कने लगी।[ख] मुगल और मराठा संघर्ष अब मुगल बादशाह और मराठा राजा के बीच का संघर्ष न रहा। मराठों की दृष्टि से वह आत्म-रक्षा के लिये युद्ध रहा। स्थिर एक राजधानी या सुशासित सेना न होने के कारण यह स्वतन्त्रता का युद्ध सारे महाराष्ट्र में फैल गया। स्थान-स्थान पर उसके मोरचे थे, किले-किले को घेरा था और मैदान-मैदान पर लड़ाई थी।

राजाराम की मृत्यु के अनन्तर उसकी विधवा रानी ताराबाई को पति-वियोग में आँसू बहाने को भी समय न मिला। उसने अपने छोटे बेटे "शिवाजी द्वितीय" को राज्याभिषेक कर संरक्षिका के रूप में राज्य शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। कर्तृत्व, अविश्रांत श्रम और दुर्दम्य उत्साह से मराठों में उसने नवचैतन्य का निर्माण किया।

मराठों का राज्य नष्ट करने का संकल्प कर औरंगजेब साम्राज्य की सारी ताकत और सेना लेकर योजना बनाकर खुद लड़ाई के मैदान में उतर आया। कुछ साल प्रयत्न करने पर भी मराठों की हार का कोई चिह्न नजर नहीं आया। दिन ब-

---

(क) केंब्रिज हिस्टरी ऑफ इण्डिया जि. ४ पृ. २८४।
(ख) मराठा रियासत भा. ४ पृ. २१।

दिन वह निराश, हताश होने लगा और इसी मन की अवस्था में २० फरवरी १७०७ ई० को महाराष्ट्र में ही उसकी आँखें बन्द हो गयीं।

औरंगजेब के दक्षिण निवास के दिनों में मराठों ने अपने राज्य की सीमाएँ लाँघकर उत्तर भारत में आक्रमण प्रारम्भ किया। उन्होंने बरार, खानदेश, मालवा और गुजरात में आक्रमण किया। (प. ६८) औरंगजेब की बढ़ती निराशा और मराठों के दुर्दम्य उत्साह के कारण मराठों के पैर दक्षिण में पक्के हो गये। मई १७०६ ई० में मराठों ने बादशाह के शाही पड़ाव पर धावा बोल दिया था।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् जुल्फीकरखाँ की सलाह पर आजमशाह (बहादुरशाह) ने राजा शाहू को मुक्त किया। शाहू को शिवाजी का राज्य देकर दक्षिण के छः सूबें में चौथ और देशमुखी के कर उगाहने के अधिकार दिये। राजा शाहू बहादुरशाह से बिदा लेकर मई १७०७ ई० में नर्मदा पार कर दक्षिण की ओर निकला। जनवरी १७०८ ई० में उसको 'सातारा' में राज्याभिषेक किया गया। राजाराम की पत्नी ताराबाई ने शाहू का विरोध किया। दक्षिण में आये हुए निजाम-उल-मुल्क ने भी ताराबाई के पक्ष की मदद कर शाहू का विरोध करने का प्रयत्न किया। भाग्य से शाहू के पक्ष में ऐसे बलशाली और अकलमंद लोग इकट्ठा हुए जिन्होंने ताराबाई के पक्ष को दुर्बल और शाहू के पक्ष को प्रबल और अजेय बनाया। बालाजी विश्वनाथ भट्ट नाम के एक व्यक्ति ने धूर्तता एवं कुशलता से राजा शाहू का पक्ष प्रबल करके उसकी ठोस मदद की। प्रभावित होकर इसके उपलक्ष्य में राजा शाहू ने बालाजी विश्वनाथ को पेशवा बनाया।

दिल्ली में राजगद्दी और शासन-सत्ता के लिये संघर्ष और लड़ाइयाँ चल रही थी। फर्रुखसियर के काल में राज निर्माता सैयद भाइयों के विरुद्ध षड्यन्त्र रचे जाने लगे। जब इसका पता सैयद भाइयों को लगा तब उन्होंने फर्रुखसियर पर ही आघात करने का निश्चय किया। दक्षिण का सूबेदार सैयद हुसेन अलीखाँ ने अपने भाई की रक्षा के लिये दक्षिण से दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। आते समय उसने राजा शाहू से प्रार्थना करली और उसके साथ संधि करके एक सुदृढ़ मराठी सेना अपने साथ ले ली। इस संधि में प्रधान शर्तें ये थीं—

(१) राजा शिवाजी के समय "स्वराज्य" नाम से प्रसिद्ध सब प्रदेश तथा उसमें स्थित सारे किले राजा शाहू को लौटा दिये जायें।

(२) हाल में जीता हुआ मुल्क—खानदेश, बरार, गोंडवाना, कर्नाटक और हैदराबाद का कुछ हिस्सा–शाहू को दे दिया जाये।

(३) दक्षिण के छः सूबों में मराठों को चौथ और सरदेशमुखी के कर उगाहने की अनुज्ञा दी जाये जिसके बदले में बादशाह की सेवा में १५००० मराठी सेना दक्षिण में रहे।

(४) राजा शाहू मुगल सम्राट को १० लाख रुपये वार्षिक कर दे और सम्राट राजा शाहू के परिवार के लोग तथा अन्य सेवकों को मुक्त करदे। (ग)

इस संधि के अनुसार पेशवा बालाजी विश्वनाथ तथा खंडेराव दाभाड़े सेना सहित दिल्ली पहुँचे। उन्होंने सैयदों की भरसक सेवा की। सैयद भाइयों ने फर्रुखसियर को गद्दी से उतार कर सत्ता अपने हाथों में ले ली। १३ मार्च और २५ मार्च, १७१९ ई० को चौथ सरदेशमुखी की सनदें तैयार करके पेशवा को दी गयीं और राजा शाहू के परिवार के सदस्यों को मुक्त किया गया। (घ) इस संधि और मराठों के दिल्ली गमन से मराठों की शक्ति का परिचय दिल्ली के शासकों को मिला। इन सारी बातों और घटनाओं के पीछे पेशवा बालाजी विश्वनाथ की बुद्धिमानी, कर्तृत्व एवं कूटनीति काम करती रही। अतः इसी समय से दिल्ली के तथा मराठों के शासन में पेशवाओं को महत्त्व प्राप्त हुआ।

१२ अप्रैल १७१९ ई० के दिन पेशवा बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु हुई। राजा शाहू के दरबार में पेशवा पद के लिये कशमकश चल रही थी। राजा शाहू ने पेशवा बालाजी के ज्येष्ठ पुत्र बाजीराव का कर्तृत्व, पराक्रम और महत्वाकांक्षा देखकर उसे पेशवा बनाया।

पेशवा पद ग्रहण करते ही बाजीराव के सम्मुख अनेक समस्याएँ निर्माण हो गयीं फिर भी उसने उत्तर भारत में अपना राज्य विस्तार एवं शासन जारी रखा। (प. ६८)

पेशवा बाजीराव के लिये "निजाम-उल-मुल्क" एक कठिन समस्या बन गया। निजाम के साथ शान्तिपूर्वक व्यवहार करने की सलाह राजा शाहू के अन्य सलाहकार

(ग) न्यू हिस्ट्री ऑफ मराठाज जि. २ पृ. ४१।
(घ) ,, ,, जि. २ पृ. ४६।

शाहू को देते थे किन्तु बाजीराव इनसे सहमत नहीं था। दिल्ली राज्य शासन से अलग होकर दक्षिण के छः सूबों में अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापना करने की इच्छा से निजाम-उल-मुल्क दक्षिण में आया। मराठों को वह अपना शत्रु समझने लगा। मराठों से युद्ध करके तथा राजा शाहू और राजा सभाजी द्वितीय में होने वाले गृह-कलह को भड़का कर उनके आपसी युद्धों में मराठों की शक्ति नष्ट करने का उसने निश्चय किया। दक्षिण में आते ही उसने बादशाह और शाहू के बीच की संधि को अस्वीकार कर लिया। निजाम ने राजा संभाजी को अपने पक्ष में कर लिया। राजा शाहू निजाम की यह नीति ताड़ गया और वह बाजीराव के विचारों से सहमत हो गया। बाजीराव ने तैयारी करके निजाम-उल-मुल्क पर आक्रमण किया। निजाम भी तैयारी कर युद्ध के मैदान में आ गया। पालखेड़ नामक स्थान पर ११ मार्च, १७२८ ई० को बाजीराव ने भारी चढ़ाई की। निजाम हार गया और उसने ६ मार्च, १७२८ ई० को संधि कर ली। यह संधि "मुंगी शेवगांव की संधि" के नाम से प्रसिद्ध है। (च) बाजीराव की इस विजय का बड़ा महत्व है। तत्कालीन सबसे शक्तिशाली मुगल सरदार को मैदान में हराकर बाजीराव ने अपनी बेजोड़ युद्धनीति का परिचय भारत के सत्ताधारियों को करा दिया और विपक्षी को दबाकर राजा शाहू को शिवाजी के स्वराज्य का एक मात्र स्वामी सिद्ध किया। इस विजय के साथ ही राजा शाहू के दरबार में बाजीराव का पलड़ा भारी हो गया। (छ)

इसी समय उत्तर भारत की राजनीति में महत्त्वपूर्ण घटनाएं घटती रहीं। उदाजी पवार, राणोजी सिंधिया और मल्हारराव होलकर मालवा में आक्रमण करते रहे। ८ दिसम्बर, १७२८ ई० को उन्होंने मालवा का सूबेदार राजा गिरिधर बहादुर को हराकर मारा। उसके पश्चात् उसके भाई दया बहादुर की भी वही गति हुई। उस समय बुन्देलखंड, इलाहाबाद सूबे का एक भाग था। इलाहाबाद के सूबेदार 'मुहम्मद खाँ बंगश' ने महाराजा छत्रसाल पर आक्रमण करके उसे हराया और कैद में रख दिया। बुन्देला राजा छत्रसाल की प्रार्थना पर पेशवा बाजीराव और उसके भाई चिमाजी आप्पा ने बुन्देलखण्ड में प्रवेश किया सौर जैतपुर के पास मुहम्मद खाँ

(च) मराठी रियासत जि. ५ पृ. १०३।
(छ) केंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया जि. ४ पृ. ४००।

को करारी हार दी। मुहम्मद खाँ संधि करने के लिये वाध्य हुआ। उसने छत्रसाल को फिर कभी तङ्ग न करने का वचन दिया। इस सामयिक मदद के वास्ते छत्रसाल ने पेशवा वाजीराव को भरे दरवार में अपना पुत्र मानकर ५ लाख की जागीर पेशवा वाजीराव और उसके भाई चिमाजी को दे दी (एक पत्र में इसका उल्लेख मिलता है (प. १२)। इस जागीर में काल्पी, माटा, सागर, झांसी, सिरोंज इत्यादि महत्त्वपूर्ण शहर थे। इसी समय से मालवा और बुन्देलखण्ड पर मराठों का अधिकार स्थापन हुआ। स० १७३६ ई० में जयपुर के राजा सवाई जयसिंह ने बादशाह से पेशवा को मालवा का नायव सूवेदार वनाकर मराठों का मुगल प्रदेश पर होने वाला आक्रमण रोका। छत्रसाल की मदद से लोग मराठों को हिन्दू धर्म के अभिमानी तथा रक्षण-कर्ता समझने लगे।(ज)

अगले साल मराठों ने यमुना पार कर गंगा-यमुना के दोआव पर धावा बोला। मार्च स० १७३७ ई० में अवध के सूवेदार 'सादत खाँ' ने मल्हारराव होलकर को एक लड़ाई में हराया। सादत खाँ ने डींग मारते हुए बादशाह को पत्र लिखा कि उसने मराठा आक्रमणकारी को चंबल पार खदेड़ दिया। इस पत्र का आशय समझते ही वाजीराव ने खुद दिल्ली जाकर अपनी उपस्थिति और शक्ति का परिचय सम्राट को करा देने की ठानी। दस दिनों का फासला २ दिनो में काटकर वाजीराव दिल्ली के पास पहुँच गया। अपना आतंक फैलाकर मराठों की ताकत का परिचय दिखाकर उसने वादशाह को डराया। पीछा करने वाली शाही सेना को चकमा देकर वाजीराव दक्षिण लौट आया।(झ)

दिल्ली दरवार में भीति के वातावरण का निर्माण हो गया। मुगल साम्राज्य की रक्षा करने के लिये निजाम-उल-मुल्क को आमन्त्रित किया गया क्योंकि सभी को विश्वास था कि निजाम ही मराठों को दवाकर साम्राज्य की रक्षा कर सकता है। दिल्ली पहुँचने पर उसका अत्यधिक आदर सत्कार किया गया। मराठों को नर्मदा पार खदेड़ने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर निजाम दिल्ली से दक्षिण की ओर निकला। दतिया और वोड़सा के राजा छत्रसाल का पुत्र सभासिंह भी निजाम की सहायता

(ज) मराठी रियासत भा. ५ पृ. १४२।
(झ) केंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इन्डिया जि. ४ पृ. ४०३।

करते थे। (ट) निजाम-उल-मुल्क ने भोपाल के पास अपना डेरा डाला। शीघ्र गति से सेना संचालन करके बाजीराव ने निजाम को घेर लिया और उसकी रसद तोड़ दी। सेना को फाके पड़ने लगे। भूख से पीड़ित सेना को और अपने को बचाने की इच्छा से निजाम ने बाजीराव के पास संधि-प्रस्ताव भेज दिया। लगभग दस साल पहले इस स्थान के निकट बाजीराव ने निजाम को अपमानकारी संधि करने के लिये बाध्य किया। (ठ) (स० १७३७ ई०) निजाम की हार से यह सिद्ध हुआ कि मुगल सरदार एवं साम्राज्य में अब मराठों का मुकाबला करने लायक ताकत नहीं है।

सन् १७३९ ई० में नादिरशाह ने दिल्ली पर आक्रमण किया और अपने भयंकर आघात से पतनशील मुगल साम्राज्य को विनाश की गर्त में धकेल दिया। नादिरशाह दक्षिण पर आक्रमण करने वाला है, ऐसी अफवाह फैल गयी अतः बाजीराव ने तैयारी की किन्तु नादिरशाह दिल्ली से ही लौट गया।

सन् १९४० ई० में मराठा राज्य के लिये आपत्तिजनक दुर्घटना हुई। हिन्दू-तेज पराक्रम का साक्षात् पुतला-बाजीराव युद्धजन्य भयंकर कष्टों के कारण अपने सैनिकों के सान्निध्य में सेना के पड़ाव में स्वर्ग सिधारा। बाजीराव की मृत्यु के अनन्तर पेशवा पद के लिये फिर एक बार शाहू के दरबार में होड़ सी लगी। राजा शाहू ने बाजीराव के ज्येष्ठ पुत्र १९ वर्षीय बालाजी को पेशवा बनाया। इसी साल बाजीराव के भाई चिमाजी की मृत्यु हुई। पेशवा बालाजी बाजीराव ने उत्तर में जाकर जयपुर के राजा सवाई जयसिंह से बातचीत की। इसके अनुसार दोनों में समझौता हुआ। इसके अनुसार पेशवा और सवाई जयसिंह घनिष्ठ मित्रता रखकर एक दूसरे की सहायता करने के लिये वचनबद्ध हो गये (परवर्ती अनेक पत्रों में इसका उल्लेख है उदा० प. १२२, १३२)। एक सनद के द्वारा पेशवा को मालवा का नायब सूबेदार माना गया। इसी समय से—स. १७४१ ई० से पेशवा बालाजी राव (बालाजी बाजीराव) मालवा के सर्वेसर्वा बना। इस सनद के अनुसार पेशवा बालाजी बाजीराव को बादशाह से स्वामिभक्त रहकर उसकी सेवा व रक्षा के लिये सैनिक सहायता देने की शर्त माननी पड़ी।

(ट) मराठी रियासत भा. ५ पृ. ३१८।
(ठ) कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इन्डिया जि. ४ पृ. ४०४।

मराठों के मित्र सवाई जयसिंह की मृत्यु स. १७४३ ई० में हुई। उसके दो पुत्र ईश्वरीसिंह और माधवसिंह राजगद्दी के लिये झगड़ने लगे। यह झगड़ा और उसके कारण होने वाला युद्ध लगभग सात साल चलता रहा। इस पक्ष-विपक्ष की सहायता के कारण मराठा सरदार शिंदे (सिंधिया) और होलकर में तीव्र मत-भेद निर्माण हुआ। अतः इस झगड़े को मिटाने के लिये पेशवा को स्वयं वहाँ जाना पड़ा। पेशवों ने ईश्वरीसिंह और माधवसिंह में समझौता कर दिया परन्तु पेशवा के लौटते ही ईस्वरीसिंह ने समझौता अस्वीकार कर दिया अतः मल्हारराव होलकर को सेना के बल पर ईश्वरीसिंह को समझौता स्वीकार कराने पर बाध्य करना पड़ा।(क) स. १७५० ई० में ईश्वरीसिंह से पैसा वसूल करने के लिये सिंधिया और होलकर जयपुर गये थे। निराशाजनक परिस्थिति में ईश्वरीसिंह ने विष-प्राशन किया। मराठी पत्रों से ज्ञात होता है कि इसका बदला लेने के लिये माधोसिंह ने जयाप्पा सिंधिया और होलकर को दावत में बुलाकर धोखे से मारने का प्रयत्न किया किन्तु भाग्य से वे बच निकले। बाजारों में खरीद करने आये अनेक मराठा सैनिकों को घेर कर मौत के घाट उतारा गया। सवाई जयसिंह के समय मराठों-राजपूतों में जो मित्रता थी वह कायम रखने का प्रयत्न मराठा सतत करते रहे। किन्तु जयपुर के राजा द्विविधा में पड़कर इस मित्रता को निभा न सके। (कुछ पत्रों में इसका उल्लेख मिलता है)।

राजपूतों के संघर्ष से निबट कर पेशवा बालाजी बाजीराव अपने घरेलू मत-भेद एवं झगड़ों को दूर करने में लगा। इसी समय अहमदशाह अब्दाली का भारत पर आक्रमण हुआ। दिल्ली के वजीर और रुहेलखण्ड के पठानों में सत्ता के लिए कशमकश चली थी। वजीर ने मराठों की सहायता से प्राप्त करने का विचार किया। शिन्दे, होलकर इत्यादि सरदारों तथा जाटों की सहायता लेकर पठानों को कुमायूं में खदेड़ दिया गया। पठानों ने अब्दाली से सहायता की माँग की अतः अब्दाली ने स. १७५१ ई० में पंजाब में प्रवेश किया। भयभीत होकर बादशाह ने अब्दाली को मार भगाने के लिये वजीर के द्वारा मराठों से एक समझौता किया। यह समझौता मराठों की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस समझौते में निम्नलिखित शर्तें प्रधान थीं। (१) पेशवा भीतरी तथा बाहरी शत्रुओं से बादशाह की रक्षा करे।

(क) पूर्व आधुनिक राजस्थान पृ. १७१।

(२) सहायता के लिए मराठों को ५० लाख रुपया दिया जाये। (३) पंजाब, सिंध, गंगा-यमुना के दोआब में चौथ वसूल करने का अधिकार पेशवा को दिया जाये तथा (४) पेशवा को अजमेर और आगरा का सूबेदार नियुक्त किया जाये। (ख) अब्दाली आगे नहीं बढ़ा, वह लौट गया। दिल्ली दरबार में सफदरजंग और वजीर में सत्ता के लिये खींचातानी चल रही थी। दोनों अपनी-अपनी ओर से बादशाह को भली-बुरी सलाह देते रहे। ऐसी स्थिति में बादशाह ने मराठों के साथ किये हुए इस समझौते को अस्वीकार किया किन्तु अपनी सहायता के बदले में मराठों ने समझौते अनुसार वर्ताव करने का प्रयत्न किया। इस काल से मराठों को पंजाब, सिंध, अजमेर, आगरा और गंगा-यमुना के दोआब इत्यादि मुगल साम्राज्य के प्रान्तों के राज्य-शासन में अधिकार मिला।

जयपुर के पश्चात् मारवाड़ में राजा अभयसिंह की मृत्यु के कारण उत्तराधिकार के लिये जो संघर्ष चला उसमें जयाप्पा शिन्दे (सिंधिया) ने मदद दी किन्तु धोखे से उसे मारा गया। (ग) जयाप्पा के भाई दत्ताजी शिन्दे (सिंधिया) ने नागौर का युद्ध जारी रखा और अपना दबाव बढ़ाया अन्त में विजयसिंह समझौता करने पर वाध्य हुआ। इस समझौते के अनुसार दत्ताजी ने अजमेर अपने अधिकार में रख लिया।

अहमदशाह अब्दाली म० १७५७ ई० में भारत पर आक्रमण करके दिल्ली आ गया। उसने दिल्ली निवासियों पर बड़े अत्याचार किये और आगरा और मथुरा पर आक्रमण करके कत्लेआम कर दिया। रघुनाथराव और मल्हारराव होलकर अब्दाली को खदेड़ने के लिये उत्तर भारत में आये। इसके पहले ही अब्दाली लौट गया था। मराठों ने दिल्ली और दोआब पर अधिकार कर लिया। दिल्ली पर अधिकार करके मराठों ने आलमगीर द्वितीय को फिर सिंहासन पर विठाया। रघुनाथ राव ने सरहिन्द, कुंजपुरा जीतकर लाहौर के लिये प्रस्थान किया। तुकोजी होलकर और साबाजी शिन्दे सीमा प्रान्त की ओर बढ़े। उन्होंने अटक पर अधिकार करके मराठों के झंडे वहाँ गाड़ दिये और पेशावर तक का कर वसूल करने का प्रवन्ध

(ख) न्यू हिस्ट्री ऑफ मराठाज जि. २ पृ. ३६५।
(ग) पूर्व आधुनिक राजस्थान पृ. १८२।

किया। रघुनाथराव ने दत्ताजी शिन्दे को सीमा प्रान्त की रक्षा के लिये रखा और साबाजी शिन्दे को सिंध तक के पंजाब का सूबेदार बनाया। (घ) दत्ताजी शिन्दे और नजीबउद्दौला में संघर्ष बढ़ा। नजीबउद्दौला ने अब्दाली को आमंत्रित किया। अब्दाली ने अपने सेनापति जहान खाँ को भेज दिया किन्तु साबाजी शिन्दे ने उसे हराकर घायल किया। यह खबर सुनकर अब्दाली ने भारत पर फिर आक्रमण करके शत्रु को सजा देने का निश्चय किया। पंजाब में साबाजी शिन्दे पर अब्दाली ने हमला कर उसे हरा दिया। साबाजी पंजाब का शासन छोड़कर शक्रताल लौटा।

दिल्ली में वजीर 'इमाद-उल-मुल्क' ने आलमगीर द्वितीय की हत्या की। यह खबर सुनते ही वजीर और उसके पक्ष के लोगों को दण्ड देने के लिये अब्दाली दिल्ली की ओर आ रहा था। दत्ताजी शिन्दे भी अब्दाली का मुकाबला करने निकला। दिल्ली से दस मील की दूरी पर बरारीघाट नामक स्थान पर युद्ध हुआ। युद्ध में दत्ताजी मारा गया और जनकोजी शिन्दे घायल हो गया।

दत्ताजी की मृत्यु का समाचार पाते ही उसका बदला लेकर अब्दाली को भारत के बाहर खदेड़ने का निश्चय पेशवा बालाजी बाजीराव ने किया। इस समय सेना का नेतृत्व पेशवा ने अपने चचेरे भाई सदाशिवराव भाऊ को सौंपा। भाऊ दक्षिण से दिल्ली की ओर निकला। आगरे के पास मल्हारराव होलकर और जनकोजी शिन्दे भाऊ से आ मिले। सूरजमल जाट भी सेना सहित आ गया। भाऊ ने राजस्थान के सरदारों तथा अन्य अनेक प्रमुख व्यक्तियों को पत्र लिखे। उसने अब्दाली के इस आक्रमण को देश पर होने वाला परकीय आक्रमण समझकर इस विदेशी आक्रमणकारी को देश के बाहर खदेड़ने में मराठों की सहायता करने का सुझाव दिया। अब्दाली ने अपनी कूटनीति से भाऊ की यह योजना असफल बनायी। अक्टूबर में अब्दाली और मराठों की सेनाएँ आमने-सामने आ डटीं। अब्दाली की रसद तोड़कर उसकी सेना को भूखों मार दुर्बल बनाने पर उस पर आक्रमण करने की योजना भाऊ ने बनायी किन्तु अब्दाली ने धूर्तता एवं कूटनीति से चाल चलाकर उल्टे भाऊ की रसद तोड़ी। मराठा सैनिकों को फाके पड़ने लगे। अन्त में अधिक रुकना असम्भव होने पर १४ जनवरी, १६६१ ई० के दिन अन्तिम प्रहार करने का भाऊ ने निश्चय किया। प्रातःकाल ही मराठी सेना आगे बढ़ी। दोपहर तक घमासान युद्ध

(घ) न्यू हिस्ट्री ऑफ मराठाज जि. २ प. ४०१।

चला। मराठों का पलड़ा भारी था। अकस्मात् पेशवा का पुत्र विश्वासराव गोली से मारा गया। युद्ध का रंग पलट गया। सदाशिवराव भाऊ शत्रु पर टूट पड़ा और अन्त में उसे वीर गति प्राप्त हुई। मराठी सेना में घबराहट फैल गयी और वह भागने लगी। शत्रु ने उसका पीछा किया। भयंकर कत्ल, लूट-खसोट और हाहाकार के साथ १४ जनवरी, १७६१ का दिन अस्त हुआ।

पानीपत के भयंकर विनाश और पराजय के आघात से पेशवा बालाजी बाजीराव का स्वास्थ्य बिगड़ गया और २३ जून, १७६१ ई. को उसकी मृत्यु हुई।(च) बालाजीराव के पश्चात् १६ वर्षीय माधवराव को पेशवा बनाया गया। पेशवा बनते ही माधवराव के सामने अनेक समस्याएं आ खड़ी हुईं। पानीपत युद्ध के संहार से मराठों की सत्ता दुर्बल हुई और उत्तरी भारत के शासन में उनका आसन डगमगाने लगा। मराठों की धाक नष्ट हुई। अनेक छोटे-बड़े राजा, जमींदार और अन्य सत्ताधारी मराठों के अधिकार से छुटकारा पाकर स्वतन्त्र बनने के प्रयत्न में लगे हुए थे। उन्होंने मराठों को कर देना बन्द किया। इसके साथ जाट, राजपूत, बुन्देला, रोहिला लोग मराठों के विरुद्ध होकर मराठों के थानों पर अधिकार करने लगे। जाटों ने तो मराठों को नर्मदा पार खदेड़ने का प्रण किया। इधर पेशवों के घराने में पेशवा पद के लिये खींचातानी शुरू हुई। पक्ष-विपक्ष तथा सहायता, समझौता इत्यादि के सम्बन्ध में मराठा सरदारों के मन में विकल्प उठने लगे। मराठों के प्रमुख सरदार शिन्दे और होलकर उत्तर भारत की अपनी-अपनी जागीर की फिक्र एवं शासन-व्यवस्था में उलझ गये।(छ) दक्षिण में निजाम ने फिर एक बार माथा उठाया और खुद पेशवाओं की राजधानी पूना पर चढ़ाई करने को निकला। किन्तु माधवराव की राज-कुशलता से वह आफत टल गयी। आगे माधवराव ने तैयारी की और "राक्षस भुवन" की लड़ाई में निजाम को करारी हार दी। उत्तर भारत में नारोशंकर का भतीजा विश्वासराव लक्ष्मण, मालवा का सूबेदार था। उसने मराठों का शासन स्थिर बनाने का प्रयत्न किया और मराठों का अधिकार पुनर्स्थापित करने का प्रयत्न कर बहुत सी सफलता पायी।

पानीपत युद्ध के कारण मराठों का अधिकार दिल्ली दरबार से उठ गया था।

(च) न्यू हिस्ट्री ऑफ मराठाज जि. २ पृ. ४५७।

(छ) मराठी रियासत मध्य विभाग ४ पृ. १८९-१९०।

अत: दिल्ली की शासन सत्ता अपने हाथों में रखने के लिये जाट और नजीब खाँ रुहेला में होड़ सी लगी थी। सूरजमल जाट ने दिल्ली के पास अपना डेरा डाला। यह देखकर नजीब खाँ ने उस पर चढ़ाई की। लड़ाई में सूरजमल मारा गया। सूरजमल के पश्चात् उसका पराक्रमी पुत्र जवाहरसिंह जाटों का नेता बना। जवाहरसिंह ने नजीब खाँ पर आक्रमण करके उसे हराया और अपने बाप का बदला ले लिया। रोहिलों से निबटने पर जवाहरसिंह ने मराठों को उत्तर भारत से निकालने का प्रयत्न शुरू किया। उसने बुन्देलखण्ड और मालवा में स्थित मराठों के कतिपय थाने जीत लिये। यह देखकर अन्यत्र भी छोटे-बड़े राजा, जमींदार, सरदार सिर उठाने लगे अत: पेशवा माधवराव को उत्तर भारत के राज्य शासन मे ध्यान देना पड़ा। पेशवा ने तुकोजी होलकर, महादजी शिन्दे, राजेबहादुर (नारोशंकर) विठ्ठल शिवदेव, खंडेराव पवार आदि को सेना सहित उत्तर भारत में जाकर मराठों के शत्रुओं को दबाने की आज्ञा दे दी। अक्टूबर १७६८ में विश्वासराव लक्ष्मण ने जाटों को हराया। इसी साल जवाहरसिंह की मृत्यु हुई और गद्दी के लिए जाटों में झगड़े पैदा हुए। इन झगड़ों में जाटों की सेना, शक्ति नष्ट हुई। जवाहर के पश्चात् नवलसिंह जाट ने मराठा विरोधी नीति चलायी किन्तु उसकी हार हुई। जाटों की हार देखकर मराठों का दुश्मन नजीब खाँ रोहिला घबरा गया और वह अपनी रक्षा का प्रयत्न करने लगा। उसने होलकर की शरण ले ली और अपने को बचा लिया। स. १७७० ई. में नजीब खाँ की मृत्यु हुई। (ज)

मराठों की सत्ता उत्तर भारत में फिर स्थापित हुई। यह देखकर अंग्रेजों की अधीनता छोड़कर दिल्ली जाकर तख्त पर बैठने की इच्छा पूर्ण करने के लिये मराठों की मदद प्राप्त करने की बात बादशाह के मन में आ गयी। मराठा सरदारों से सुझाव आते ही बादशाह दिल्ली जाने के लिये अधीर हो उठा। अंग्रेज बादशाह को मराठों से बचने के लिये समझाते थे। (झ) आखिर अंग्रेजों की सलाह न मानकर वह मराठों की सहायता लेने के लिये तैयार हो गया। मराठों के साथ उसकी जो सुलह हुई उसके अनुसार बादशाह को दिल्ली ले जाकर सिंहासन पर बिठाने तथा उसका

(ज) मराठी रियासत मध्य विभाग ४ पृ. २१७
(झ) „ „ पृ. २१६

अधिकार कराने के कार्य की जिम्मेदारी मराठों ने स्वीकार कर ली। उसके बदले में बादशाह ने मराठों को ४० लाख रुपये देने की तथा वजीर के सिवा अन्य सारे अधिकारी मराठों की इच्छा के अनुसार रखने की शर्त मान ली। (ट) महादजी शिन्दे, तुकोजी होलकर, रामचन्द्र गणेश, विसाजी कृष्ण ने बादशाह को इलाहाबाद से दिल्ली लाने का कार्य किया और दिसम्बर १७७१ ई० को वे दिल्ली के समीप आये। बड़े समारोह के साथ महादजी शिन्दे ने ६ जनवरी, १७७२ ई० के दिन बादशाह को दिल्ली के राज सिंहासन पर बिठाया। (ड़) मराठों के पराक्रम की यह चरम सीमा थी।

इसके पश्चात् रोहिलों को दबाने की योजना चली। महादजी शिन्दे ने अपने पूर्वजों की हत्या का बदला लेने के लिए रोहिलों को मिट्टी में मिलाने का संकल्प किया। बादशाह शाह आलम द्वितीय को साथ लेकर महादजी शिन्दे और विसाजी कृष्ण ने रोहिलों के प्रदेश पर आक्रमण किया। नजीबाबाद में नजीबखान ने पानीपत की लूट में प्राप्त अपार सम्पत्ति इकट्ठा कर रखी थी। मराठों ने सारी सम्पत्ति लूट ली और कत्ल, हत्याएँ, लूट-खसोट करके उन्होंने रोहिलों को "रोहिल खंड" से हिमालय की तराई में भगा दिया और पानीपत की हत्या का बदला ले लिया। (ठ)

पेशवा माधवराव की बीमारी में प्रसिद्ध वैद्य गंगाविष्णु दक्षिण बुलाया गया। (ड) और वही दवा दारु करता रहा किन्तु वह बीमारी कम न हुई। १६ मई, १७७२ ई० के दिन पेशवा माधवराव स्वर्ग सिधारा। मरते समय उसने अपने छोटे भाई नारायणराव को पेशवा बनाकर उसके संरक्षक के रूप में तथा सलाहकार के नाते शासन चलाने की राघोबा (रघुनाथराव) की प्रार्थना की। उस समय रघुनाथराव मारे गये किन्तु पेशवा बनने की इच्छा उसे बेचैन करने लगी।

सितम्बर १७७१ ई० में छत्रपति की ओर से नारायणराव को पेशवा और

(ट) मराठी रियासत मध्य विभाग ४ पृ. २२०।
(ड.) ,, ,, ४ पृ. २२४।
(ठ) पत्र क्र. १२६।
(ड) पत्र क्र १८१, १८४।

सखाराम बापू को कारबारी बनाया गया। नारायणराव पेशवा बना तब पेशवा और अन्य कारबारियों के (शासकों के) सामने कठिन आर्थिक समस्या आ खड़ी हुई। पेशवों का खजाना रिक्त था और सेना-सिपाहियों को कई महीनों की तनख्वाह देनी बाकी थी। आखिर पेशवों के निवास स्थान की रक्षा करने वाले "गारदियों ने" इसके खिलाफ आवाज उठायी। नारायणराव को पेशवा पद से हटाकर स्वयं पेशवा बनने के लिए रघुनाथराव सतत प्रयत्न करता रहा। उसने तथा उसके पक्ष के लोगों ने नारायणराव को बन्दी करने का षड्यन्त्र रचा। इसे पूर्ण करने में गारदियों से सहायता ली गयी। अन्त में ३६ अगस्त, १७७३ ई० के दिन पेशवों के महल में ही पेशवा नारायणराव की हत्या की गयी। (ढ) इसका उल्लेख पत्र क्र. १६० में प्राप्त है। षड्यन्त्र में रघुनाथराव का हाथ रहा। रघुनाथराव कुछ दिन (लगभग ६ महीने) पेशवा बना किन्तु उसे स्थायी रूप से पेशवा पद देने के लिये मराठा प्रमुख तैयार न थे। पेशवा बनने पर रघुनाथराव को निजाम अली तथा हैदर से मुकाबला करने के लिये जाना पड़ा। नारायणराव की पत्नी गर्भवती थी। उसके लड़का हुआ तो उसको अन्यथा किसी अन्य लड़के को उसकी गोद देकर उसके नाम से राज्य का कारबार चलाने की योजना प्रमुख दस-बारह मराठा व्यक्तियों ने की। इन्होंने एक मंडल की स्थापना की, जो मराठों के इतिहास में "बार-भाई" के नाम से प्रसिद्ध है। इन लोगों ने प्रथमतया पूना शहर अपने कब्जे में कर लिया और राघोबा के पक्ष के लोगों को बंदी बनाया। (ण) इन बातों की खबर जब रघुनाथराव को लगी तब उसने हैदर अली से संधि की और वह पूना की ओर लौटा। मराठा सरदार भी सेना सहित तैयार होकर रघुनाथराव पर चढ़ाई करने निकले। रघुनाथराव भागकर बुरहानपुर गया और वहाँ से अंग्रेजों से मिलने के लिये "सूरत" चला गया। वहाँ रघुायराव और अंग्रेजों से संधि हुई जिसके अनुसार अंग्रेजों ने रघुनाथराव का पक्ष लेकर मराठी राज्य पर आक्रमण करने की तैयारी की। स. १७७६ ई० में उन्होंने दो बार मराठी राज्य पर चढ़ाई की। दूसरी लड़ाई में अंग्रेजों ने रघुनाथराव का पक्ष लेकर पूना पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। जनवरी १७७६ ई० में अंग्रेजी सेना बम्बई से पूना की ओर बढ़ रही थी। तेलगांव-वड़गांव के नजदीक मराठों की

(ढ) मराठी रियासत मध्य विभाग ४ पृ. ३२८।

(ण) " " पृ. ३६४।

सेना ने उसे जा घेरा। मराठों ने अपना दबाव चारों ओर से बढ़ाया। अंग्रेज अधिकारी और सैनिक भूख-प्यास से तड़पने लगे। अन्त में उन्होंने सुलह का प्रस्ताव भेजा और लड़ाई समाप्त हुई। (त) अंग्रेजों को इस हार और संधि के कारण अपमानित होना पड़ा। इस युद्ध में महादजी शिन्दे और नाना फड़णवीस की नीति सफल हुई। रघुनाथराव को अंग्रेजों ने मराठों के हाथों सौंप दिया। रघुनाथराव कैदी बना। (इसी घटना का प्रत्यक्ष वर्णन एक पत्र में प्राप्त है पत्र क्र. १३१)। रघुनाथराव ने अपने को कैद से मुक्त किया वह फिर अंग्रेजों की ओर भागा। अंग्रेजों की ओर से सहायता मिलना असंभव देखकर वह महादजी शिन्दे की शरण में आ गया। महादजी ने उसके साथ उदारता से व्यवहार किया। उसे नगर जिले में कोपरगांव के पास एक छोटी सी जागीर दी। यहाँ अपनी शेष आयु बिताकर ११ दिसम्बर, १७८३ ई० के दिन रघुनाथराव स्वर्ग सिधारा।

मराठी राज्य की सहायता के लिये महादजी स. १७७३ ई० में दक्षिण आ गया। तब से सन् १७८२ ई० तक वह मराठी राज्य की समस्याओं और घटनाओं में उलझता रहा। मराठा अंग्रेजों के बीच स. १७८२ ई० में सालबाई की सन्धि हुई। उसके पश्चात् महादजी शिन्दे फिर उत्तर की ओर निकला।

इसके पूर्व दिल्ली में सतत षड्यन्त्र रचे जाते थे। सम्राट बारम्बार महादजी को पत्र लिखता था। अपने अधिकारियों तथा शासकों के षड्यन्त्र तथा कूटनीति के दाँव-पेचों से सम्राट मुक्त होना चाहता था। महादजी के उत्तर भारत में आगमन की खबर सुनते ही बादशाह शाह आलम द्वितीय ने अपने बड़े पुत्र जवानबख्त को महादजी शिन्दे से मिलने को भेज दिया। महादजी सम्राट की सहायता करने का आश्वासन दिलाकर ग्वालियर से निकला। सम्राट ने उसका स्वागत करने की इच्छा से आगरा से प्रस्थान किया और वह फतहपुर सीकरी के पास आ पहुँचा। १४ नवम्बर, १७८४ ई० के रोज दोनों की भेंट हुई। बादशाह ने महादजी का स्वागत करके उसे अपने पास बिठाया और शासन का सारा भार तथा शाही जिम्मेदारी स्वीकारने की प्रार्थना की। (थ) बादशाह ने महादजी शिन्दे को "वकील-ई-मुतालिक" (बादशाह का

(त) मराठी रियासत उत्तर विभाग १ पृ. १८३।

,, मराठी आणि इंग्रज पृ. ७१, ७२।

(थ) मराठी रियासत उत्तर विभाग २ पृ. ८०।

खास प्रतिनिधि) पद देना चाहा। वादशाह को प्रार्थना कर महादजी ने वह पद पेशवा को दिला दिया और स्वयं उसका नायव बनकर दिल्ली का शाही शासन चलाने लगा। इस प्रकार गौरवान्वित होकर महादजी शिन्दे दिल्ली के मुगल साम्राज्य का सर्वाधिकारी वना।

महादजी को वादशाह के तथा मराठों के शत्रुओं से लड़ना पड़ा। राजपूताने में भी राजपूत राजा सिर उठाने लगे। अत: महादजी शिन्दे को उधर जाना पड़ा। इसी वीच में वादशाह का मन महादजी के बारे में वदल रहा था। इसी समय गुलाम कादिर ने दिल्ली का शासन अपने हाथों में कर लिया। उसने वादशाह को अन्धा वनाकर शाही परिवार पर भयंकर अत्याचार किये और शाही वेगमों को इज्जत मिट्टी में मिला दी। (द) महादजी को दर्दभरी प्रार्थनाएँ की गयीं। महादजी और मराठों ने आकर दिल्ली पर अधिकार जमाया। गुलाम कादिर भाग गया। उसका पीछा कर उसे पकड़ा गया। वादशाह की प्रार्थना के अनुसार उसे साथियों सहित मारा गया। गुलाम कादिर के अमानुषी अत्याचारों से मुक्ति पाकर फिर सम्राट बनने की खुशी में सम्राट ने महादजी का सम्मान करके गौरवान्वित किया। सुना जाता है कि इसके उपलक्ष्य में वादशाह ने शाही फर्मान द्वारा मुगल साम्राज्य में गोवध वंदी की आज्ञा दी और मथुरा, वृन्दावन जैसे तीर्थ स्थानों के शासन के सम्पूर्ण अधिकार महादजी को दे दिये।

शिन्दे और होलकर के परिवारों में नजीवखां के कारण अनसन हुई थी। राजपूतों के साथ होने वाले युद्धों में वह कलह वढ़ता ही गया। आखिर इस कलह की परिणति आपसी युद्ध में हुई। लाखेरी नाम के स्थान पर लड़ाई होकर महादजी की जीत हुई। "वकील-ई मुतालिक" की शाही सनद पेशवा को अर्पण करने के लिये महादजी ने पूना की ओर प्रस्थान किया। २२ जून, १७९२ ई० को शिन्दे ने एक वड़ा भारी दरवार किया और पेशवा सवाई माधवराव को सनद और पोशाक दी और पेशवा के हाथों अपने को "नायव वकील-ई-मुतालिक" की सनद और पोशाक ली। (ध) महादजी अव पेशवों के कार्य में भी दखल देने लगा। वह पेशवा को

(द) मराठी रियासत उत्तर विभाग २ पृ. १६८, १६९, १७०।
(ध) ,, ,, २ पृ. ३८१, ३८२।

सलाह देता रहा किन्तु अधिक दिन वह मराठा राज्य की सेवा कर न सका। पूना के निकट वानवड़ी स्थान में १२ फरवरी, १७९४ ई० के दिन उसकी मृत्यु हुई (पत्र क्र. २०४) । इसके साथ ही मराठों की पराक्रमी भुजा टूट पड़ी ।

महादजी की मृत्यु के पश्चात् मराठी राज्य का सारा भार नाना फडणवीस पर आ पड़ा। निजाम ने कई साल मराठों को चौथ नहीं दी थी। उसका वजीर "मशीर-उल-मुल्क" उसे गलत सलाह देता रहा। मराठों के दूतों का उसने अपमान किया। महादजी की मृत्यु की खबर सुनते ही निजाम ने मराठी राज्य पर आक्रमण करके पूना जीतने का निश्चय किया और फौज की तैयारी करके वह हैदराबाद से पूना की ओर निकला। नाना फड़णवीस ने मराठा सरदारों को पत्र भेजकर सेना सहित बुलाकर मुकाबले की तैयारी की। दोनों सेनाएँ "खंर्डा" के पास आमने-सामने आ गयीं। निजाम के आक्रमण करने पर मराठों ने चारों ओर से घेर कर डटकर सामना किया। निजाम भाग कर किले के आश्रय में रहा। मराठों ने निजाम और सेना की रसद बन्द कर दी। निराश होकर निजाम ने सन्धि प्रस्ताव भेजा और वजीर मशीर-उल-मुल्क को मराठों के हाथों सुपुर्द किया। (न) निजाम ने सन्धि की सारी शर्तें स्वीकार कर लीं। इस लड़ाई में अन्तिम बार सारे मराठा सरदार इकट्ठा होकर शत्रु से लड़े। मराठा-निजाम में होने वाली यह अन्तिम लड़ाई थी।

लड़ाई की विजय के ६ महीने पश्चात् पेशवा सवाई माधवराव की दुःखदायी मृत्यु २७ अक्टूबर, १७९५ ई० को हुई। (प) सवाई माधवराव की मृत्यु के पश्चात् फिर पेशवा पद के लिये कलह निर्माण हुआ। अन्त में रघुनाथराव का पुत्र 'बाजीराव द्वितीय, पेशवा बना। वह अस्थिर चित्त और घमंडी था। उसने कलह के पुराने मुर्दे उखाड़कर अपने शत्रुओं से बदला लेने की ठानी। उसने अनेक प्रमुख व्यक्तियों को अपने आचरण से अपमानित किया। एक समय उसने नाना फड़णवीस को भी कैद किया। कुछ ही समय में उसे मुक्त किया गया। नाना फड़णवीस ने आगे चलकर पेशवा के कार्यों से अपने को अलग किया। स. १८०० ई० में नाना फड़णवीस की मृत्यु हुई और इसके साथ ही मराठा राज्य की बुद्धिमानी नष्ट हुई। इसी साल फिर

(न) प्रत्यक्ष लड़ाई का वर्णन पत्र क्र. १५१।
मराठी रियासत उत्तर विभाग २ पृ. ४७२-४७३ ।
(प) न्यू हिस्ट्री ऑफ मराठाज जि. ३ पृ. ३०७।

पेशवा पद के लिये 'बाजीराव द्वितीय' तथा 'अमृतराव' में झगड़े का निर्माण हुआ। सरदारों में आपसी लड़ाइयाँ होने लगीं। पेशवा बाजीराव द्वितीय ने नाना के पक्षपाती होने के कारण विठोजी होलकर को हाथी के पैर से बाँधकर घसीटकर पूना शहर में मार दिया। इसका बदला लेने के लिये यशवन्तराव होलकर ने पूना पर चढ़ाई की। बाजीराव द्वितीय पूना से भाग गया। (ध) अंग्रेजों की शरण में जाकर ३१ दिसम्बर, १८०२ ई० को बाजीराव द्वितीय ने "वसई" में अंग्रेजों से वह सन्धि की जिससे मराठी राज्य का स्वातंत्र्य अंग्रेजी सत्ता ने ग्रस लिया। (न) अब पेशवा अंग्रेजों का मातहत बना। इसी समय उत्तर भारत में अंग्रेज अधिकारी लेक ने दौलतराव शिन्दे से दिल्ली छीनकर अपने हाथों में ली। इस तरह १९ वीं शती के प्रारंभ में ही अंग्रेज भारत के सर्वेसर्वा बन गये।

प्रस्तुत पत्रों में ऐतिहासिक घटनाओं,प्रसंगों तथा परिस्थितियों से सम्बन्धित कतिपय पत्र हैं। उनका उल्लेख प्रसंग सहित किया गया है। फिर भी इनमें बादशाह शाहआलम द्वितीय को दिल्ली की राजगद्दी पर बिठाने के सम्बन्ध में तथा नारायण राव की हत्या, महादजी शिन्दे की मृत्यु, अंग्रेजों के साथ बड़गांव की लड़ाई तथा खर्डा की लड़ाई में निजाम की हार आदि महत्त्वपूर्ण घटनाओं से सम्बन्धित पत्रों का महत्त्व ऐतिहासिक वर्णन के सम्बन्ध में उल्लेखनीय है।

(ध) न्यू हिस्ट्री ऑफ मराठाज जि. ३ पृ. ३७४।
(न) " " ३ पृ. ३८४।

अनुक्रमणिका

परिशिष्ट

पहला अध्याय

लेखन प्रणाली

किसी भी भाषा में अक्षर अधिकांशतः उस भाषा में प्रयुक्त ध्वनि को ही प्रकट करने वाले होते हैं, किन्तु कभी-कभी एक ही अक्षर द्वारा दो या अधिक ध्वनियाँ प्रकट की जाती हैं। साथ ही कभी दो या अधिक अक्षर एक ही ध्वनि को प्रकट करते हैं। ऐसी अवस्था में सर्वप्रथम निश्चित कर लेना आवश्यक होता है कि कौन से अक्षर किस ध्वनि को प्रकट करते हैं। यदि एक ही अक्षर दो या अधिक ध्वनियों को प्रकट करते हैं तो किन-किन अवस्थाओं में उस विशिष्ट अक्षर-द्वारा कौन-कौनसी ध्वनियाँ प्रकट होती हैं ? यह जानना आवश्यक है। भाषा का मूल रूप उच्चरित है न कि लिखित। लिखित रूप तो उच्चरित भाषा के संकेत रूप में होता है। अतः ये संकेत कहाँ तक यथार्थ ध्वनि को प्रकट करते हैं इसकी परीक्षा कर लेना आवश्यक है।

प्रस्तुत पत्रों की भाषा में "ऐ" और "औ" के लिए दो संयुक्त स्वर प्रयुक्त हुए हैं। ये संयुक्त स्वर कभी "ऐ" तथा "ओ" के रूप में लिखे गये हैं और कभी "अइ" तथा "अव" के रूप में लिखे गये हैं। वास्तव में ये दोनों रूप एक ही ध्वनि के हैं। लिखने की दोनों अलग पद्धतियाँ किसी परिस्थिति से बाध्य नहीं हैं। एक ही शब्द "रेयती[६१] तथा रईयत" [१४४] दोनों रूपों में लिखा गया है। इसी तरह "चैत[२०६] —चईत[१२३]"। "है [१]— हइ [४२]। आदि दृष्टिगत होते हैं।

संयुक्त स्वर "ओ" का प्रयोग "औ" के रूप में तो मिलता ही है साथ ही "अव" के रूप में भी मिलता है। "दौलत[१५५]" शब्द "दवलत [१०७]" के रूप में भी लिखा गया है। इसी तरह—

और[५]	अवर[११,३०]
फौज [२४]	फवज [६८]
माधौ [१३८]	माधव [११८]

आदि शब्द भी हैं।

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि पत्रों की भाषा में संयुक्त स्वर "ऐ" और "औ" अपना स्वतंत्र स्थान नहीं रखते। कुछ लोग यह भी कह सकते हैं कि संयुक्त स्वर "ऐ" और "औ" का बिगड़ा रूप "अइ" और "अव" है। "अइ"

और "अव" के लिखने से संयुक्त स्वर "ऐ" और "औ" का न होना साबित नहीं होता। इस आक्षेप के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि पत्रों की भाषा में यदि संयुक्त स्वर "ऐ" और "औ" की स्वतंत्र स्थिति होती तो उसको व्यक्त करने के लिए दो भिन्न स्वर "अइ" और "अव" का उपयोग न किया जाता। दोनों रूपों के मिलने से यह स्पष्ट है कि "ऐ" और 'औ" स्वतंत्र स्वर न होकर दो स्वरों के सम्मिलित रूप हैं, जिनको कभी दोनों स्वरों के सम्मिलित संकेत में प्रकट किया गया है और कभी दोनों स्वरों के अलग अलग रूप में। इसके साथ ही इन दोनों की उच्चारण-पद्धति भी इसका कारण है। कुछ लोग "ए" को "अइ" रूप में ही उच्चारण करते हैं और "औ" को "अव" रूप में। ऐसे उच्चारण के अनुरूप ही लेखन हमें इन पत्रों में प्राप्त होता है।

पत्रों की भाषा में "ऋ" स्वर स्वतंत्र रूप से कहीं भी प्राप्त नहीं होता किन्तु व्यंजन संयोग के साथ यह मिलता है। व्यंजन संयोग के साथ जो "ऋ" स्वर मिलता है वह केवल लिखने की परम्परा है, क्योंकि एक ही शब्द में व्यंजन संयोग के साथ "ऋ" के स्थान पर "र" का प्रयोग भी मिलता है। जैसे—

कृपा[६४]	क्रपा[१६८]।
पृथ्वी[१८२]	प्रीथ्वी[१२५]।
वृध्धी[१११]	व्रध्धी[११३]।

देवनागरी लिपि में व्यंजन के साथ "ऋ" का संयोग लिखा जाता है उसी प्रकार से पत्रों की भाषा में भी परम्परागत रूप में वह प्राप्त होता है, जैसे— कृष्ण[१२३], वृछ[६७] (क्ष), पृथ्वी[१८८]।

किन्तु इस परम्परागत रूप से हम स्वतंत्र "ऋ" का प्रयोग इन पत्रों में नहीं देखते हैं।

अनुस्वार

इन पत्रों में अनुस्वार, नासिक्य व्यंजन तथा चन्द्रबिन्दु के लिए अधिकतर, अनुस्वार (अक्षर के ऊपर एक बिन्दु) का ही प्रयोग किया गया है। किन्तु कहीं-कहीं अर्ध-नासिक्य-व्यंजन तथा चन्द्रबिन्दु का प्रयोग भी मिलता है।

नासिक्य-व्यंजन, चन्द्रबिन्दु तथा अनुस्वार को अलग अलग करना वहाँ बहुत कठिन है, जहाँ तीनों के लिए अनुस्वार का ही प्रयोग है। ऐसे शब्दों में नासिक्य व्यंजनों के संयोगों के नियम पर ही हम उन्हें ठीक-ठीक समझ सकते हैं। ण्

न्, म् , नासिक्य व्यंजनों का प्रयोग क्रमशः "क" वर्ग, "च" वर्ग, "ट" वर्ग, "त" वर्ग तथा "प" वर्ग के साथ होता है। पत्रों की भाषा में इनके उदाहरणों से हम इन नासिक्य व्यंजनों के प्रयोगों को ठीक ठीक देख सकते हैं, जैसे–

(१) संकल्प[167]— सङ्कल्प
संकोच[53]—सङ्कोच
मंगसर[74]—मङ्गसर
फिरंगी[131]—फिरङ्गी
प्रतापसिंघ[03]—प्रतापसिङ्घ
संकराजी[134]– सङ्कराजी
नरसिंगढ[43]— नरसिङ्गढ
हंगाम[187]—हङ्गाम
संजयसिंघ—संजयसिङ्घ।

(२) अपरंच[74]— अपरञ्च
वंचजो[109]—वञ्चजो
पंछोर[41]—पञ्छोर
चीरंजीव[162]—चीरञ्जीव
पंच[53]—पञ्च
पंच–पञ्च
वांछित[64]—वाञ्छित
मंजूर[167]—मञ्जूर

(३) टंटा[149]—टण्टा
मुंठी[19]—मुण्ठी
वैकुंठ[200]—वैकुण्ठ
खंडणी[125]—खण्डणी
भंडार[97]—भण्डार
डंढे[131]—डण्ढे
दंडवत[35]—दण्डवत
हुंडी[77]हुण्डी
ढांढा—ढाण्ढा

(४) अनंत[51]—अनन्त
लिखंत[112]—लिखन्त
दादुपंथ[80]—दादुपन्थ
आनंद[112]—आनन्द
संदेह[17]—सन्देह
वंधेज[50]—वन्धेज
सिंधे[203]—सिन्धे
अंतहकरन[35]—अन्तहकरन
संतोष[40]—सन्तोष।
पांडुपंथ[64]—पांडुपन्थ।
किस्तवंदी[43]—किस्तवन्दी।
हिंदुस्तान[203]—हिन्दुस्तान।
वसुंधरा[98]—वसुन्धरा।

(५) परंपरा[119]—परम्परा
तंवीह[59]—तम्वीह
रणथंवर—रणथम्वर[115]
आरंभु[64]—आरम्भु
कंपू[151]—कम्पू
तांवापत्र[167]—ताम्वापत्र।
मुंवई[131]—मुम्वई।
संभुराम[167]—सम्भुराम।

महंमद[४७]—महम्मद संमत १५–सम्मत
संमाचार[२०७]—सम्माचार

स्वर— चंद्रबिन्दु के लिए भी अनुस्वार का प्रयोग किया गया है। किन्तु वास्तविक रूप में चन्द्रबिन्दु स्वर का नासिक्यकरण रूप है। इन पत्रों में सभी स्वरों के नासिक्य-करण रूप प्राप्त होते हैं जैसे—

अं लिखतं[५६]—लिखत्अं संरक्षण[१८४]—सअंरक्षण।
आं इहांका[१८८]—इह्आंका छां[१६४]—छ्आं।
इं इं[१६४]
ईं झुठीं[२०२]—झुठ्ईं।
उं उं[१५७], कुंवर[६८]—क्उंवर। तुमकुं—तुमक्उं।
ऊं यासूं—यास्ऊं।
एं कहेंगे—कह्एंगे। में[४६]—म्एं। अपने[२०५]—अपन्एं।
ऐं आगैतें[४५]—आगेत्ऐं। खाखमें[६४]—खाखम्ऐं। हैं[२०५]—ह्ऐं।
ओं लीखवों[२०२]—लिखव्ओं।
औं उनकों[५५]उनक्ओं। औंरसौं–औरस्औं[६६]

इसके अलावा चंद्रबिन्दु का प्रयोग भी कुछ शब्दों के साथ मिलता है जो नासिक्य–स्वर के लिए हुआ है, जैसे–ताँई[२०५]। हमेशाँ[२०५]। हिन्दुस्तानकोँ[१०८]। होवेँ[१०८]।

इन पत्रों की भाषा में नासिक्य व्यंजनों का अर्धरूप भी कहीं कहीं पर मिलता है जो अनुस्वार द्वारा नहीं बल्कि व्यंजन अक्षर के अर्धरूप द्वारा प्रकट किया गया है, जैसे—

उपरान्त[६०] वृतान्त[६०]
श्रीमन्महाराज[१६७] ब्रह्मपोता[१८२]
कुटुम्ब[६०] सन्मान[१७१]

अनुस्वार का प्रयोग पत्रों की भाषा में इतनी अधिकता के साथ हुआ है कि अनेक स्थानों पर अनावश्यक रूप से भी अनुस्वार रखे गये हैं। यद्यपि इन अनुस्वारों की ध्वनि की दृष्टि से कोई उपयोगिता नहीं है। यथा—

कामंदार[८०] साहुंकार[८०]
हुंदताड़ी[१६] कूंच[२१] जांनी[२१] आगेँ[१०८]।

इन अनावश्यक अनुस्वारों को रखने का कारण यही हो सकता है कि ये शब्द अनुस्वार से युक्त बोले जाते रहे होंगे। यह भी हो सकता है कि ये शब्द इसी रूप – अनुस्वार से युक्त– में लिखे मिले होंगे और उन्हीं के अनुकरण पर इन पत्रों की भाषा में भी परम्परा के अनुसार आ गये होंगे।

अनुस्वार का प्रयोग य, स, ह, व ध्वनियों के साथ हुआ है, जैसे—

यांसु[१७०] दीलावश्यां[१६७]
सोमवंसी[६८]
कृपासु[१७३] संवतु[५०] संरक्षण[१८४]
उहां[१८०] हैं

इन पत्रों की भाषा में अक्षर "ष" दो भिन्न ध्वनियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। प्रथम "ष" (मूर्द्धन्य संघर्षी) और द्वितीय "ख" (कंठ्य अघोष स्पर्श) जो ध्वन्यात्मक रूप से बिल्कुल ही दो भिन्न ध्वनियाँ हैं।"ष" "ष," के लिए नीचे लिखे शब्दों में प्रयुक्त हुआ है जो हिन्दी शब्दों की व्युत्पत्ति से स्पष्ट होता है। यथा—

इष्टदेव[७५]	पौष[१६३]	विष[४]
विष्णु[१८१]	सीष्टाचार[१८८]	साष्टी[१३१]
संतोष[१६१]	शिष्य[६०]	कृष्ण[१२३]

"ष" ध्वनि का संयोग ट, ण के साथ हुआ है जबकि "ख" ध्वनि का संयोग इनके साथ – "ट" "ण" के साथ–किसी भी प्रकार नहीं हो सकता। इन संयोगों में "स" (वर्त्स्य) का प्रयोग संभव है किन्तु "ट" ध्वनि के मूर्द्धन्य होने के कारण मूर्द्धन्य "ष" का ही संयोग उसके साथ हो सकता है। (वर्त्स्य) "स" का नहीं।

"ख" ध्वनि के लिये "ख" अक्षर का प्रयोग प्रस्तुत पत्रों में अप्राप्त है।

हिन्दी में जहाँ सर्वदा "ख" का प्रयोग होता है वहाँ पत्रों की भाषा में "ष" का प्रयोग मिलता है जो ध्वनि की दृष्टि से ठीक नहीं है।

"ष" अक्षर "ख" ध्वनि के लिए नीचे लिखे हुए शब्दों में प्रयुक्त हुआ है–सुष[४८], दुष[५७], लिषौ,[३५] राषौ[३५], वैसाष[३७], पालषि[१६१], राषत[३५]
मुषालफ[१७३], षजाना[४३], षत[१५८], षरीफ[४०], षरावी[१६७]
षाष[४७], षुसी[१५६], षरषसा[४], जषमी[५०]

नीचे लिखे प्रमाणों से यह स्पष्ट होगा कि "ख" ध्वनि के लिए जहाँ "ष" अक्षर लिखा गया है वह वास्तव में "ख" ही है "ष" नहीं। शब्दों की व्युत्पत्ति द्वारा–

संस्कृत शब्द–सुख, दुख, वैसाख ये शब्द सुष, दुष, वैसाष के रूप में संस्कृत या हिन्दी में कहीं भी प्राप्त नहीं होते इनका मूल रूप सुख, दुःख, वैशाख ही है।

अरबी शब्द—खजाना, खत, मुखालफ ये अरबी शब्द हैं जिनका मूल रूप ख़जाना, ख़त, मुख़ालिफ़ है और ये सर्वदा इसी रूप में बोले तथा लिखे जाते हैं। ये शब्द किसी भी प्रकार षजाना, षत, मुषालफ नहीं हो सकते।

फारसी शब्द—खाख, खुसी, जखमी हैं जिनका मूल रूप ख़ाक, ख़ुशी, जख़्मी है इनका उच्चारण तथा लेखन ख़ाक, ख़ुशी, जख़्मी है अत: ये शब्द किसी भी प्रकार षाख, षुमी और जषमी नहीं हो सकते।

इन सभी बातों से यह स्पष्ट है कि उस समय "ष" अक्षर का "ख़" ध्वनि के लिए प्रयोग भी प्रचलित था। "ख़" ध्वनि के लिए "ख" अक्षर का प्रयोग आधुनिक है।

पत्रों की भाषा में सबसे अधिक भ्रामक लेखन पद्धति "व" "ब" तथा "प," "य", के सम्बन्ध में है।

देवनागरी में "व" और "ब" तथा "प" और "य" के रूप में बहुत कम अन्तर है इसीलिए इस प्रकार का भ्रम पैदा होता है। यद्यपि इनमें अन्तर स्पष्ट करने के लिए "ब" को "व" समझने के लिए "ब" के नीचे एक बिंदी (ब़) दी गई है लेकिन ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ इस तरह का कोई स्पष्ट अन्तर नहीं है, जैसे—बा साल[५], असबार[८]। बीमाजी[८], बाजीराव[१], गोपालराव[१], सेबककु[१८]

"व" ध्वनि को प्रकट करने के लिए दो अक्षरों का प्रयोग किया गया है, प्रथम ब (जिसके नीचे बिंदी नहीं) और द्वितीय "व"। "व" अक्षर द्वारा नीचे लिखे शब्दों में "ब" ध्वनि प्रकट हुई है, जैसे—वावति[३५] बावति। अव—[३५] अब। साहिव[४८]—साहिब।

वाकी[४०]—बाकी। मवव[४०] मबब। वैठे[४२]— बैठे

"ब" ध्वनि को प्रकट करने के लिए जहाँ "ब" अक्षर लिखा गया है ऐसे कुछ शब्द निम्नलिखित हैं, जैसे—

बाजीराउ[२४]। बचनात[२४], रामाबाई[२०], बीनंती[११], बरकंदाज

"प" और "य" में अन्तर स्पष्ट करने के लिए "य" को समझने के लिए प अक्षर के नीचे एक बिंदी (प़) रखी गयी है लेकिन ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ इस तरह का कोई स्पष्ट अन्तर नहीं है, जैसे—

पह[४], जोगिप[२२], आप[२२], होप[२२], कीपो[२२]

चाहिपे[४६], आपो[४६], गपो[४६], समप[४६]

"य" ध्वनि को प्रकट करने के लिए दो अक्षरों का प्रयोग किया गया है प्रथम "प" और द्वितीय "य"। "प़" (जिसके नीचे बिंदी है) अक्षर द्वारा नीचे लिखे

स्थानों में "य" ध्वनि प्रकट हुई है, जैसे–

कल्पानसिघ[35], सुन्पौ[35], भेजपौ[36], रुपैपा[37]

"य" ध्वनि को प्रकट करने के लिऐ जहाँ "य" अक्षर लिखा गया है ऐसे कुछ शब्द निम्नलिखित हैं, जैसे–

आग्यापत्र[24], आया[24], दयो[27], रुपये[27], युवराज्य[1], या मे[1]

बिना बिंदी का "प" अक्षर "प" ध्वनि प्रकट करता है, जैसे—

पंडित[35], पाती[35] पास[35], पैसा[37], पिपरी[37]

इन पत्रों की भाषा में लेखन सम्बन्धी और भी कई विशेषताएँ हैं जिनका संकेत नीचे किया जा रहा है ।

(१) 'इ' ध्वनि को प्रकट करने के लिए स्वतंत्ररूप से "इ" स्वर (ह्रस्व इ और दीर्घ ई) लिखा गया है यथा—

इ—इहाके[2], सिवाइ[2], बुलाइयौ[2]

ई—ईहाके[1], दई[4] आई[4], रघुवं राई[4]

किन्तु कहीं कहीं "इ" स्वर को प्रकट करने के लिए व्यंजन के साथ लगने वाले "इ" स्वर के चिन्ह ि, ी (ह्रस्व, दीर्घ) भी "इ" स्वर के साथ जोड़े गये हैं, जैसे—

इि—इिजत[11], इिहाके[19], होइि[19] साइिर[19]

इी—गइी[20], इीहा[25], फुरमाइीवो[55], आइी[35]

(२) "ए" और "ऐ" ध्वनि को प्रकट करने के लिए "ए" "ऐ" अक्षरों का प्रयोग किया गया है यथा—ए—एक[24] आए[60], पठवाए[63], एते[75]

ऐ—गऐ[45], ऐदज[45], आऐ[4], पठवाऐ[4]

किन्तु इनके साथ ही साथ "ए" और "ऐ" ध्वनि के लिए क्रमशः "अे" "अै" का प्रयोग भी मिलता है, जैसे—

अे हुअे[67] अजाअे[70]

अै—पाअै[19], अैयसे[20], दअैजे[19], अैवज[40], गअै[67]

लेखन—पद्धति की एक विशेष विशेषता यह लक्षित होती है कि कहीं "ऐ" ध्वनि के लिए "एॅ" अक्षर का प्रयोग किया गया है, यथा—

उदा०—एॅ[53], एॅते[16]

(३) "ड" अक्षर "ड" ध्वनि को ही प्रकट करने के लिए प्रयुक्त किया गया है। किन्तु ड़ ध्वनि को प्रकट करने के लिए "ड" का प्रयोग किया गया है।

जैसे—

पंडित[४], षांड[२८], भंडार[२६], डामरीन[७], दंडवत[३५], डाक[२०१]

हिन्दी में "ड" ध्वनि जब भी कभी दो स्वरों के बीच आती है तो उसका उच्चारण "ड़" होता है जिसके उदाहरण पत्रों की भाषा में पर्याप्त मात्रा में हैं पर उनका लेखन भ्रामक ढंग से हुआ है, जैसे—

घोडी[११], कपडा[२०], पीछौडी[२०], चुनडी[२०], साडी[२०]

पघडी[१७६] , माली हेडो[६८]

(४) "ळ" अक्षर हिन्दी भाषा में नहीं मिलता। किन्तु पत्रों की भाषा में कतिपय स्थानों पर 'ळ" अक्षर मिलता है, जैसे—

होळकर,[१५५] राजोळे,[११५] मजळ[१२१] रह्योळा[१२४]

पाळइ,[११] राजमाळ,[२०] गुळवदाम,[२०] बळवंत[१२८] इ०

इसका प्रमुख कारण पत्र-लेखन पर उनकी प्रांतीय भाषा का प्रभाव है। मराठी, गुजराती, राजस्थानी, माळवी आदि भाषाओं में "ळ" अक्षर मिलता है। अतः इस क्षेत्र से या इस क्षेत्र के लेखकों से लिखे गये पत्रों में 'ळ" अक्षर मिलता हैं।

(५) "ज्ञ" ध्वनि को प्रकट करने के लिए "ज्ञ" और "ग्य" दोनों अक्षर लिखे गये हैं, जैसे—यज्ञदत्त[१३३], आज्ञा[५१], आग्या[१६८], आग्यापत्र[२४] आग्याकारी[४०], प्रतीग्यांकर[१६७]

स्वर और व्यंजनमाला का रूप इन पत्रों में जैसा प्रयुक्त हुआ है उसे स्पष्ट करने के लिये एक चार्ट परिशिष्ट में दिया गया है।

———

❋ दूसरा अध्याय ❋

दूसरा अध्याय

ध्वनि विचार

किसी भी प्राचीन लिखी हुई भाषा की ध्वनियों का अध्ययन करते समय कई प्रकार की कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। अध्ययन करते समय हमें उस भाषा के लिखे हुए, तथा प्राप्त रूप पर निर्भर रहना पड़ता है। कभी-कभी तो अक्षर जो लिखित रूप में मिलते हैं उच्चरित ध्वनि का प्रतिनिधित्व न करके एक दूसरी ही ध्वनि का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसका स्पष्टीकरण इसके पूर्व "लेखन–पद्धति" के अध्याय में किया गया है। सभी प्रस्तुत पत्रों का विश्लेषण करने के बाद ध्वनियों के सम्बन्ध में जो परिणाम प्राप्त हुए हैं वे यहाँ दिये जा रहे हैं।

प्रस्तुत पत्रों में निम्नलिखित ध्वनियाँ प्राप्त होती है।

स्वर—

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ
ए, ऐ, ओ, औ।

व्यंजन—

स्पर्श—कंठ्य	क् ख् ग् घ्
संघर्षी	च् छ् ज् झ्
मूर्द्धन्य	ट् ठ् ड् ढ्
दंत्य	त् थ् द् ध्
ओष्ठ्य	प् फ् ब् भ्
नासिक्य	ङ् ञ् ण् न् म्
अंतस्थ	य् र् ल् व्
ऊष्प	श् ष् स् ह

(क) सभी स्वरों के दीर्घ रूप भी प्राप्त होते हैं।

(ख) सभी स्वरों के नासिक्य रूप भी मिलते हैं।

(ग) व्यंजन–ध्वनियों में अरबी, फारसी आदि विदेशी शब्दों के माध्यम से आगत निम्नलिखित व्यंजन-ध्वनियाँ भी यहाँ मिलती हैं।

क़् ख़् ग़् ज़् फ़्

(घ) मराठी, राजस्थानी, गुजराती में मिलने वाली मूर्द्धय "ळ" व्यंजन ध्वनि भी पत्रों में मिलती हैं।

स्वर ध्वनियों का वितरण—

स्वर	स्थिति		
	आदि	मध्य	अन्त
अ	अपुन (प ४)	कहत (प.४)	जब (प.४)
आ	आपके (प.१)	प्रसाद (प.९)	राजा (प.४)
इ	इन (प.७)	पंडित (प.४)	जिहि (प.४)
ई	ईश्वर (प.५७)	फकीर (प.३)	तुम्हारी (प.६)
उ	उन (प.७)	कुछ (प. ५७)	कछु (प. ७)
ऊ	ऊपरी (प. ५०)	जरूर (प. ८)	जू (प. ८)
ए	एही (प. ४)	हमेस (प. ४)	राउरे (प. ४)
ऐ	ऐसी (प. ६)	पैसे (प. ११)	चाहिजै (प. ४)
ओ	ओर (प. १८)	कोऊ (प. १०)	सो (प. ९)
औ	और (प. ४)	गौर (प. ४)	करौ (प. ९)

सभी स्वर, शब्दों के आदि, मध्य तथा अन्त तीनों स्थितियों में मिलते हैं।

प्रस्तुत पत्रों में स्वर-संयोग

प्रस्तुत पत्रों में सभी स्वरों का संयोग नहीं प्राप्त होता। जिन स्वरों का संयोग मिलता है उनका विवरण नीचे के चार्ट में दिया जा रहा है—

	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ
अ	—	१	२	३	४	५	६	७	—	—
आ	—	–	८	९	१०	११	१२	१३	१४	–
इ	—	१५	–	—	–	–	–	१६	–	–
ई	—	१७	१८	१९	२०	—	—	२१	—	—
उ	—	—	२२	२३	—	—	२४	—	—	—
ऊ	—	—	—	२५	—	—	—	—	—	—
ए	—	—	२६	२७	२८	२९	—	—	—	—
ऐ	—	३०	३१	३२	३३	३४	—	—	—	—
ओ	—	—	३५	३६	३७	३८	—	—	—	—
औ	—	—	३९	—	—	४०	—	—	—	—

उदाहरण—

(१) रुपआ (प. ११७) ।

(२) गह (प. ५१) ।

(३) दई (प. ४) ।

(४) गउ (प. २०५) अउती (प. १०) ।

(५) बहुतऊ (प. ८) ।

(६) लए (प. ३) ।

(७) पठऐ (प. ४) दऐ (प. १०) भऐ (लऐ) ।

(८) जाइआ (प. ५०) । बुलाइ (प. २) उठाइ (प. २) ।

(९) छुडाई (प. ३) । माई (प. १७९) सिवाई (प. १७६) ।

(१०) गाउ । न्याउ (प. ८) नाउ (प. १९) ।

(११) राऊजू (प. ६६) नाऊ ।

(१२) जाए (प. १८) ।

(१३) पटचाऐ (प. ४) । आऐ (प. १०) पाऐ (श. १०) बुलाऐ (प. ८०) ।

(१४) आओ (. २३) ।

(१५) बिआज (प. १७३) ।

(१६) दिऐ (प. १५५) ।

(१७) दतीआ (प. १०६) ।

(१८) कीइ (प. १७१) । दीइ (प. १९८) ।

(१९) दीई (प. ७७) । लीई (प. १७४, १७९) ।

(२०) गईउ (प. ८) ।

२१) चाहीऐ (प. ६६) ।

(२२) हुइ (प. २८) ।

(२३) हुई (प. ९२) ।

(२४) हुएकी (प. १४२) ।

(२५) हूई (प. ६८) ।

(२६) टेइ (प. ८) ।

(२७) ऐसेई (प. ८) ।

(२८) केउ (प. २१) देउगे (प. १३५) ।

(२९) हतेऊ (प. ८) ।

(३०) रुपैआ (प. १०३) ।

(३१) करनेइ (प. ४) ।

(३२) आगँई (प. ४६) ।

(३३) मटेउघ (प. ६३) ।

(३४) गँउ (प. ४७) ।

(३५) होंइ (ग. ८) ।

(३६) खोई (प. ४) ।

(३७) सोउ (प. ४) ।

(३८) सोऊ (प. ८) कोऊ (प. १०) ।

(३९) होइंगे (प. ५८) । दौइ (प. ८१) ।

(४०) बुरौऊ. (प. ५३) ।

विशेषताएँ:—

(१) "अ" और "आ" स्वरों का संयोग अन्य कतिपय स्वरों के साथ मिलता है ।

(२) दीर्घ "ऊ" और दीर्घ "ई" का संयोग अल्प मात्रा में मिलता है ।

(३)—ह्स्व "इ" स्वर का संयोग सिर्फ "आ" और "ऐ" के साथ मिलता है ।

(४) "औ" का संयोग "च" और दीर्घ "ऊ" के साथ मिलता है ।

व्यंजन-ध्वनियों का विवरण

व्यंजन ध्वनियों के उच्चरित तथा लिखित रूप में भेद होता है । बोलते समय हम व्यंजन-ध्वनियों का व्यंजनान्त उच्चारण करते हैं किन्तु लिखते समय उन्हें स्वरान्त लिखते हैं ।

उदा०—नाक् , कर् : नाक, कर ,

प्रस्तुत पत्र लिपिबद्ध रूप में मिलते हैं अतः "त्" को छोड़कर सभी व्यंजन ध्वनियाँ स्वरान्त मिलती हैं । व्यंजन-ध्वनियाँ शब्दों के आदि और मध्य स्थिति में मिलती हैं, अन्त स्थिति में नहीं ।

उदाहरण—

व्यंजन	स्थिति आदि	मध्य
क्	करत (प. ५१)	संकर (प. ५१)
ख्	कंडेराअ (प. ५१)	लिखत (प. ५३)
ग्	गढी (प. ५३)	गंगाधर (प. ५३)
घ्	घरी-वरी (प. ४८)	सिंघ (प. ४१, ५३)
ङ्	—	—
च्	चार (प. ५३)	कूच (प. ५७)
छ्	छलबल (प. ५४)	कुछ (प. ५७)
ज्	जहाँ (प. ५२)	राजश्री (प. ५१)
झ्	झासी (प. ६२) झाडे (प. १८४)	आकाझरी (प. ६१)
ञ्	—	—
ट्	टोक (१३८) टेढी (प. ७)	अटकाव (प. १७२)
ठ्	ठेठ (प. १६५) ठिकानां (प. ७५४)	जेठ (प. ५४)
ड्	डुंडी (प. ५३)	छोड (प. ५६)
ड़्	—	घोड़ो (प. ७) वड़ो (प. ७)
ढ्	ढील (प १७२)	ढांढा डंढे (प १६१)
ढ़्	—	टेढ़ी (प. ७)
ण्	—	प्रे)णा (प. ६०)
त्	तपन (४६)	इतनी (प. ५४)
थ्	था (प. ५६)	साथ (प. ५६)
द्	दंडवत (प. ५३)	दादु (प. ५६)
ध्	धूम (प. १८३)	चौधरी (प. ५६)
न्	नहीं (प. ५३)	दिन (प. ५१)
प्	पंच (प. ५३)	तापर (प. ५३)
फ्	फालगुण (प. १६७)	फपृद (प. ६०)
ब्	बनावत (प. ५३)	सबब (५३) अब (प.५३)

व्यंजन	स्थिति	
	आदि	मध्य
म्	मले (प. ५३)	सुभ (प. ५४)
म्	मन (प. ५३)	काम (प. ५३)
य्	यह (प. ५३)	जानियँ (प. ५३)
र्	राजश्री (र. ५३)	मिरतु (प. ५३)
ल्	लरतु (प. ५३)	छलवल (प. ५४)
व्	वास (प. ६०)	दंडवत (प. ५३)
श्	शिवराम (प. ६०)	सदाशिव (प. ५३)
ष्	—	पौष्य (प. १६३)
स्	सत्र (प. ५४)	वास (प. ६०) पास (प. ४)
ह्	हम (प. ५३)	यह (प. ५३)
क़्	क़बीला (प. ५४)	हक़ीक़त (प. ७, ५३)
ख़्	ख़त (प. ३५)	तनख़्वाह (प. २)
ग़्	ग़नीम (प. ६८)	काग़ज (प. ३८)
ज़्	ज़मीन (प. १५०)	रोज़ (प. ४३)
फ़्	फ़ौज (प. १२, २२)	तरफ़ (प. १, ७)
ळ्		कागळ (प. ६२१)

(क) क़् , ख़् , ग़् , ज़् फ़् ध्वनियाँ प्रस्तुत पत्रों में मिलती हैं। किन्तु इन ध्वनियों की विशेषता द्योतक चिन्ह—अक्षर के नीचे एक बिन्दी अप्राप्त है। इन ध्वनियों का रूप निश्चित करने के लिए फारसी और अरबी की मूल ध्वनि तथा उसके उच्चारण का आधार लिया गया है।

(ख) प्रस्तुत पत्रों में "ळ" ध्वनि का प्रयोग मिलता है। राजस्थानी गुजराती और मराठी भाषाओं में यह ध्वनि मूर्द्धन्य मिलती है।" अत: इन भाषाओं के प्रभाव के कारण यह ध्वनि प्रस्तुत "हिन्दी पत्रों में" प्राप्त है।

विशेषताएं:—

(अ) संस्कृत के शब्दों को छोड़कर अन्यत्र विसर्ग (:) का प्रयोग पत्रों में नहीं मिलता।

(क) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. ४०।

(आ) ङ् ञ् ण् ळ् व्यंजन शब्दों के आदि में नहीं मिलते।

व्यंजन-संयोग

प्रस्तुत पत्रों में नीचे लिखे व्यंजन-संयोग प्राप्त होते हैं।

प्रस्तुत पत्रों में "क्ष" का जो रूप मिलता हैं उसके आधार पर उसे स्वतंत्र व्यंजन ही माना जा सकता है, संयुक्त व्यंजन नहीं।

"ज्ञ" ध्वनि को भी स्वतंत्र व्यंजन-अक्षर मानकर उसका संयोग दिया गया है।

"श्" और "ष" ध्वनियों को भी अलग अलग माना गया है।

उदाहरण

१. क्+य्= एक्यता (प. ११६) ईक्यावन (प. ८२)
२. क्+र्= क्रपा (प. १६८) क्रिपा (प. ५६) सु-क्रे (प. १२)
३. क्+व्= क्वार (प. ८७)
४. ख्+य्= लख्या (प. २०६) नाख्यो (प. १७६) देख्यौ (प. ३५)
५. ख्+व्= ख्वाहिंद (प. ४५) तनख्वाह (प. २)
६. ग्+य्= जोग्य (प. २१) ग्यारह (प. ७१) आग्यापत्र (प. २४)
७. ग्+र्= अनुग्रह (प. ७५) बीग्रह (प. १३३)
८. ग्+व्= ग्वालेर (प. ७८)
९. घ्+य्= स्लाघ्ये (प. ११३)
१०. च्+छ्= रसच्छीराम (प. २०५)
११. च्+य्= अच्युतराव (प. १७२) वंच्यौ (प. २८) समाच्यर (प. ११८) च्याहजे (प. ११८)
१२. छ्+य्= रछ्या (प. ६४ छ्याल्ढट (प. ८५)
१३. ज्+ज्= लज्जा (प. ५१) उज्जन (प. १८६)
१४. ज्+म्= ज्मा, ज्मा खात्र (प. १४६) ज्मीयत् (प. १४६) ज्मीन (प. १५०)
१५. ज्+य्= राज्यपर (प. १८३) ज्यायंत (प. १००) भेज्ये (प. १७९)
१६. ज्+र्= उज्रा वहादर (प. १६५)
१७. ज्+व्= ज्वावु (प. १५)
१८. ट्+ट= भट्ट, (प. ११९)

१६. ट्+य्= वेट्या (प. १८३)
२०. ठ्+ठ्= पठ्ठग्वरि (प. २)
२१. ड्+य्= पड्या (प. १७४)
२२. ण्+य्= जाण्या (प. ११६)
२३. त्+क्= सत्कार (प. १२६)
२४. त्+त्= चित्त (प. ५०) तुमारे (प. ३३) वृत्तान्त (प. ६०) तदुत्तर (प. ६०)
२५. त्+प = सुखोत्पत्ती (प. ११६) तत्पर (प. ६४)
२६. त्+य्= त्यार (प. ३६) सत्यानासे (प. ६७)
२७. त्+र्= सासत्रवावा (प. २०) त्रफ (प. ५६) कत्रिक (प.१४) तात्रा (प. २०)
२८. त्+स्= संवत्सरे (प. १४) मुत्सदिया (प. ११७)
२६. थ्+व्= प्रीथ्वीसींगजी (प. १२५) पृथ्वी (प. ४६)
३०. द्+द्= सिद्दी (प. १३८) मुतसद्दीन (प. २८)
३१. द्+ध्= सिद्धि (प. ८) वृद्धी (प. ११६)
३२. द्+र्= ईद्रसेन (प. १३५) आसमुद्रांत (प. ३) पंद्रा (प.१०२) दवार (प. ७४) द्रव्य (प. ६४) उपद्रह (प. ५५)
३३. द्+व्= द्वि (प. ४६), नाथद्वारा (प. १५३) श्री द्वारें (प. ६६)
३४. ध्+ध्= वृध्धी (प. १११)
३५. ध्+य्= अध्ययन (प. ६०) ध्यान (प. १६८) नीध्यान (प. ४८) ध्यानु (प. ५४)
३६. ध्+र्= गंध्रपसिंघजू (प. १०२)
३७. ध्+व्= ध्वांत (प. २०५)
३८. न्+त्= अन्तर्वेद (प. ६०)
३६. न्+द्= सिकन्दरा (प. ६०)
४०. न्+न्= प्रसन्नता (प. ११८) प्रसन्न (प. २२)
४१. न्+प्= जुनवान्पादीसेली (प. ७३)
४२. न्+म्= सन्मान (प. १७१)

४३ न्+य्= न्याव (प. १२८) जान्येगा (२०२) सुन्यौं (प. ३५) न्यमसकार (प. ७४)

४४. न्+र्= नृकी (प. ६८)

४५. न्+ह्= न्ही (प. १८३, १४६) कन्हेरगढ (प. २१) इन्है (प. ६९)

४६. प्+य्= प्यादे (प. ७९)

४७. प्+र्= उप्र (प. ५६) प्रदाखत (प. ५६) पृथ्वी (प. ४६) प्रेम (प. १०३) प्रोहित (प. ६) प्रसन्न (प. २२)

४८. ब्+द्= महाशब्दे (प. १२८)

४९. ब्+य्= ब्यालीस (प. ७१) ब्योहवार (प. १११) ब्यौरा (प. ५३)

५०. ब्+र्= ब्रजनाथ (प. ७९) ब्राह्मण (प. ७५), ब्राह् (प.२०)

५१. भ्+य्= संभ्या (प. ४८) भ्यो (प. ७)

५२. भ्+र्= भ्रागीरथी (प. ४८)

५३. म्+ब्= कुटुम्ब (प. ६०)

५४. म्+म्= जगम्मनिपुर (प. ६०)

५५. म्+य्= दरम्यान (प. १६९)

५६. म्+र्= अम्रतरावजी (प. १०)

५७. म्+ह्= म्हते (प. ८२)

५८. य्+य्= रुपय्या (प. ७७ , १४०)

५९. र्+ग्= सर्ग (प. १००) मार्गशीर्ष (प. १०८) मार्गेश्वर (प. १७१)

६०. र्+च्= जमाखर्च् (प. ८६)

६१. र्+ज्= कर्ज (प. १२८) अर्जदास्ति (प. ५४) मार्जा (प.३०) निर्जीवक (प. ६०)

६२. र्+त्= तुर्तकी (प. १२५) मोहर्त (२०३) मार्तंड (प. १४९) किर्ती (प. ११९)

६३. र्+थ्= पुनार्थ (प.३०) तीर्थजात्रा (प. ३६) पदार्थ (प. १)

६४. र्+द्= गिर्दे (प. १९) जनार्दन (प. १६६)

६५. र्+प्= कृष्णार्पण (प. १००)

६६. र्+फ्= आमदर्फत (प. १९) सर्फराजनामा (प. १८)
६७. र्+ब्= आसीअर्दि (प. ६)
६८. र्+म्= धर्म (प. ४८) सर्म (प. १८) धूर्ममूर्ति (प. १७) जु—र्म (प. १९)
६९. र्+य्= कार्य (प. १० क—र्या (प. ३) पधा—र्या (प.११७)
७०. र्+व्= आशीर्वाद (प. १०५) सर्वओपमा (प.५६) स अन्तर्वेद (प. ६०)
७१. र्+ष्= मार्गशीर्ष, (प. १०८)
७२. र्+स्= वर्स (प. १८१) दर्सन (प. ४६)
७३. र्+ह्= त-र्हा (प. १८४) त-र्है (प. ११८)
७४. ल्+प्= कल्पवृक्ष (प. ६७)
७५. ल्+य्= ल्यावना (प. १०८)
७६. ल्+ल्= मुफसल्ल (प. १२३) दिल्ली (प. १२६)
७७. ल्+ह्= सल्हाह (प. ६७) दुल्हाराइ (प. ७०) सिल्हैदार (प. ७२)
७८. व्+य्= प्रानव्यास (प. ७६) व्यतीत (प. ४६) व्यतीपात (प. १००)
७९. व्+र्= वृध्वी (प. ११३) व्रतमान (प. ५४) व्रीधी (प.१७९)
८०. व्+ह्= चेतसिव्ह (प. १०८) वेव्हार (प. १०९)
८१. श्+च्= उदतंश्च (प. ३०)
८२. श्+न्= प्रश्न (प. १६७)
८३. श्+य्= दीलावश्या (प. १६७)
८४. श्+व्= अश्व (प. ४) इश्वर (प. ३) ईश्वर (प. ५६)
८५. ष्+क्= पुष्कर (प. १२७)
८६. ष्+ट्= जेष्ट (प. १८१) कनिष्ट (प. ३०) इष्टदेव (प. ७५) साष्टी (प. १३१)
८७. ष्+ठ्= अधिष्ठाता (प. ६०)
८८. ष्+ण्= वृष्ण (प. १२३) विष्णु
८९. ष्+त्= पोष्तगी (प. ९६)
९०. ष्+य्= शिष्य (प. ६०) पौष्यवर्ग (प. ५१)
९१. स्+क्= लस्कर (प. १६८)

९२. स्+ट्= जेस्ट (प. ८३) रिस्टाचार (प. १२६)
९३. स्+त्= स्वस्त (प. ६) मिस्तर (प. १३५, प. १३७) ईस्तकबहाल (प. १६) दस्तूर (प. ३)
९४. स्+थ्= अस्थान (प. ८) हिंदुस्थान (प. १७१) यथास्ति (प. ४६)
९५. स्+द्= स्दा (प. १३२) (सदा)
९६. स्+न्= स्नान (प. ४८) कृस्न (प. १०८) स्नेह (प. ९५)
९७. स्+म्= स्मंचार (प. ४१) स्माचार
९८. स्+य्= बलिभद्रस्यंह (प. ५६)
९९. स्+र्= मुकेस्र से (प. ४८)
१००. स्+ल्= स्लाध्ये (प. ११२)
१०१. स्+व्= अस्वलायन (प. ७३) फनैस्वर (प. ११४) ज्वाबु-स्वालु (प. १५)
१०२. स्+ह्= स्ही (प. ८२)
१०३. ह्+य्= ह्यांकी (प. १६८)
१०४. क्ष्+म्= लक्ष्मन् (प. १४३)
१०५. ज्ञ्+न्= यज्ञ्नदत्त (प. १३३)
१०६. ज्ञ्+य्= सूज्ञ्य (प. ६१)

तीन व्यंजनों का संयोग

१ र्+क्+र्=क्रंपा (प. ५४)
२ प्+र्+य्=प्रथींसिंघजी (प. १७५)
३ र्+त्+त्=वर्त्तन (प. ६४) कर्तव्य (प. ५१)
४ म्+ह्+य्=म्ह्यांकी (प. २०२)

व्यंजन संयोग की विशेषताएँ

(१) प्राप्त व्यंजन-संयोगों में "य" द्वितीय स्थान पर अधिक मात्रा में मिलता है।
(२) प्रथम स्थान में निर्मित व्यंजन-संयोग सब से अधिक "र" ध्वनि से बने हैं, किन्तु द्वितीय स्थान में भी "र" ध्वनि काफी मात्रा में है।
(३) "स" ध्वनि भी व्यंजन संयोगों में प्रथम स्थान में काफी मात्रा में पाई जाती है।
(४) ट् और ळ् ध्वनियों के व्यंजन-संयोग पत्रों में अप्राप्त हैं।

(५) प्रथम स्थान में होनेवाली घ् छ् ठ् ड् ण् थ् य् ह् क्ष् ध्वनियों का एक ही ध्वनि से संयोग मिलता है।

(६) केवल ज् ट् ठ् त् द् थ् न् म् य् ल् ध्वनियों के द्वित्व व्यंजन के कारण बने हुए व्यंजन-संयोग मिलते हैं।

ध्वनि परिवर्तन

प्रस्तुत पत्रों की भाषा में ध्वनि परिवर्तन की दृष्टि से निम्नलिखित विशेषताएँ लक्षित होती हैं।

स्वर :

अ आगम

आदि में – अस्थान[८] <स्थान। असवार[८] <सवार। असनान[६] <स्नान।

मध्य में – तीरथ[६८] <तीर्थ। तुरकी[६२] <तुर्की। शरकरा[१०७] <शर्करा।

अन्त में – संवत <संवत् (१६२)

अ > आ – जागह[३८] <जगह। आछी[४६] <अच्छी। कावजा[८३] <कब्जा।
आस्वपति[६७] <अश्वपति। आटकाव[१४६] <अटकावा। आव[१७७] <अब।

अ > इ – लछिमन[८६] <लछमन <लक्ष्मण। खिजमित[२०३] <खिदमत।
आदिमी[१२२] <आदमी।

अ < उ – वुहोतु[४६] <वहुत। सिखापुनु[४०] <सिखापन। तुवक[३२] <तवाक।
फुरमाऊत[४५] <फरमावत। मुहाल[६] <महाल।

अ > ए – अभयेपत्र[६८] <अभयपत्र। मतालेब[१७७] <मतलब।

अ > ऐ – ठेहरा[७] <ठहरा। राजेश्री[६८] <राजश्री।

अ > ओ – बोहत[१३१] <वहुत। पोहर[१३१] <प्रहर।

अ > औ – वौहत[१६०] <बहुत। पौहचाइ <पहुचाइ।

आ आगम – हाजार[१४] <हजार

लोप – दीतवार[५७] <आदित्यवार

परिवर्तन

आ > अ – अदमी[११] <आदमी। नरायन[११६] <नारायण। अषढ[८०] <आषाढ
वैशख <वैशाख। तलस[३] <तलाश।

आ > ए – तेरीख[८६] <तारीख।

इ आगम – सिरदार[८]<सरदार । आदिमी[१६]<आदमी । निमसकार[५६]<
नमस्कार ।

लोप – हासल[७]<हासिल । लखि[५]<लिखी । प्रतिनिध[२३]<प्रतिनिधि ।

परिवर्तन

इ>अ – अश्वन[५]<आश्विन । मूजव[११४]<मूंजिब । सहत[११४]<संहित ।

इ>ई – नीरबाह[६८]निर्वाह । दीन[१७७]<दिन । ईक्यावन[८२]<इक्यान ।
कीस्त[११७]<किस्त । बीग्रह[१३३]<विग्रह । कीर्ती[११६]<कीर्ति ।

इ>ए – बाजेराव[५६]<वाजिराव । सदासेऊ[४५]सदाशिव ।

इ>ऐ – आखैर[१२३]<आखिर । फेर[४]<फिर ।

इ>य – यखलास[२०७]<इखलास ।

ई

आगम – हींगामा[५६]<हंगामा । यादी[५४]<याद । सेठी[७६] <सेठ ।

परिवर्तन

ई>इ – इश्वर[३]<ईश्वर । टिका[१]<टीका । आदमि[१७६]<आदमी । पृथ्वि-
सिह[१८१]<पृथ्वीसिंह । छेत्रवासि[६७]<क्षेत्रवासी । सुस्ति[१६६]<सुस्ती ।

उ

आगम – सुलाह[२२]<सलाह । मनोरथु[४६]<मनोरथ । उजुर[६६]<उज्र ।

लोप – परंत[७६]<परंतु । तकौजी[१८५]<तुकौजी ।

परिवर्तन

उ>इ – हनिमंत[५४]<हनुमंत ।

उ>ओ – कोमार[५२]<कुमार । वुहोतु[४६]<बहुत ।

ऊ

परिवर्तन

ऊ>उ – पुरन[६७]<पूर्ण । वेदमुर्ती[१२८]<वेदमूर्ति । मंजुर[१६४]<मंजूर ।

ऊ>ओ – अनोपराम[१११]<अनुपराम ।

ए

परिवर्तन

ए>इ, ई – इतबर[३]<एतबार । ईतवार[१८६]<एतवार ।

ए>ऐ — भैंट[२०६] < भेट। मैंहरवानगी[११४] < मेहरवानगी (मेहरवानी)
सनैंह[१७६] < सनेह। इन्है[६६] < इन्हे।

ए>य — येक[१६७] < एक।

ऐ

लोप — तयार[५२] < तैयार।

परिवर्तन

ऐ>ई — तईयार[७] < तैंयार। चईत[७] < चैत्र। रईयत[१४४] < रैयत।

ओ

लोप — बंदबस्त[५३] < बंदोबस्त (फा.)।

परिवर्तन

ओ>उ — सुना[१७] < सोना। चारु[५४] < चारो।

ओ>ओ — ब्रमपोता[१७६] < ब्रह्मपोता। ओडछो[५१] < ओडछा (ओरछा)।

औ

परिवर्तन

औ>ओ — फोजा[२०८] < फौज। मोलवी[६३] < मौलवी। ओरु[६४] < और।

औ>अव — अवर[६८] < और। फवज[६८] < फौज। कवन[६८] < कौन।

स्वर परिवर्तन (निष्कर्ष)

(१) प्रस्तुत पत्रों में ऊ, ए, ऐ, ओ, औ स्वरों का आगम नहीं मिलता।
(२) 'आ' स्वर का परिवर्तन सिर्फ "अ" या "ए" स्वर में मिलता है।
(३) दीर्घ "ई" का परिवर्तन सिर्फ–ह्रस्व "इ" में मिलता है।
(४) ह्रस्व "उ" का परिवर्तन "इ" या "ओ" में ही मिलता है।
(५) दीर्घ "ऊ" का परिवर्तन केवल ह्रस्व "उ" में या "ओ" में मिलता है।
(६) 'ऐ' स्वर का परिवर्तन केवल "ई" में मिलता है।
(७) "औ" का परिवर्तन "ओ" या "अव" में मिलता है।

व्यंजन

व्यंजन लोप

च् व्यंजन — इछा[३] < इच्छा। आछै[६२] < अच्छे। तुछनु[६४] < तुच्छ।
अंछा[६१] < इच्छा।

[

त् — कदाच[१४६] <कदाचित् ।

द् — जीर्णोधार[१५७] <जीर्णोद्धार ।

न् — कानुगो[६] <कानूनगो । जिमी[१९] <जमीन ।

य् — ब्राह[२०] <ब्याह । वतीपात[९८] <व्यतीपात ।

र् — कातिक[४२] <कार्तिक । गाम[३०] <ग्राम । चैत[५८] <चैत्र ।
नीवाह[६८] <निर्वाह । पाती[२१] <पत्री ।

व् — प्रथीसिंघ[२३] <पृथ्वीसिंघ । सरूप[७७] <स्वरूप ।

स् — थाना[४] <स्थान ।

ह् — ग्यारा[६] <ग्यारह । जाग,[६] <जगह । बारा[६५] <बारह ।
मसलत[१५९] <मसलहत (अ.) वगैर[६१] <वगैरह । दसराव[१२१]
<दशहरा । तनखा[१२४] <तनख्वाह । तंबी[१५१] <तंबीह ।

व्यंजन आगम—

क् — बहुतक[५५] <बहुत ।

ग् — दुजागी[१११] <दुजाई

य् — न्यमस्कार[७४] <नमस्कार । एक्यता[११९] <एकता । च्यार[१२३] <चार ।
पच्यास[१४६] <पचास ।

र् — त्रीरे[४८] <तीरे । ब्राह[२०] <ब्याह । भ्रागीरथी[४८] <भागीरथी
श्रीमंत्र[९०] <श्रीमंत् ।

व् — दसराव[१२१] <दशहरा ।

ह् — होर[७] <और । कानुगोह[१९] <कानूनगो । जाहागीर[६१] <जागीर
सल्हाह[६७] <सलाह ।

अघोष ध्वनियों का घोषीकरण—

क>ग — अनेग[२०] <अनेक । तगादो[७६] <तकाजा (अ.) ।
तागीत[४] <ताकीद । लसगर[१०] <लश्कर ।

प>व — तोवखाना[११५] <तोपखाना ।

घोष ध्वनियों का अघोषीकरण—

द>त — तागीत[४] <ताकीद । ततवीर[६] <तदवीर ।

अल्पप्राण ध्वनियों का महाप्राणीकरण—

क>ख — खाख[५६] <खाक । पालखि[१६३] <पालकी । वखत[४५] <वक्त

सलुख[११५] <सलूक (अ.) ।

ग>घ – पघडि[१२२] <पगड़ी । वघेरे[५२] <वगैरे ।

ट>ठ – उठ[१८६] <ऊँट । पठेल[१२१] <पटेल । वेठी[१५३] <वेटी । भेठ[१५७] <भेंट ।

ड>ढ – अवढेरे[६] <अवडेर । पंढत[१८] <पंडित । लढाई[१२४] <लड़ाई । हंढे[१६१] <हंडे ।

त>थ – तैनाथ[४५] <तैनात ।

द>ध – सनधं[१०] <सनद । शुध्ध[१६६] <शुध्द । स्नेहवृध्धी[१११] <स्नेहवृध्दि ।

प>फ – तोफ[३] <तोप (तु.)

व>भ – भौत[३] <बहुत । सुभेदार[१३१] <सूवेदार ।

महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राणीकरण—

ख–>क – इक्लास[६४] <इखलास । कौलाफ[७७] <खिलाफ । वक्सी[३५] <बख्शिश (फा.)

घ>ग – रुगनाथ[२२] <रघुनाथ ।

झ>ज – साजी[१६] <साझी

ठ>ट – जेट[१२५] <जेष्ठ । टहराया[१६७] <ठहराया । प्रतीष्टा[१५७] <प्रतीष्ठा ।

ढ>ड – काड[३] <काढ । साडे[२७] <साढे । अपाड[१८३] <आपाढ़ ।

थ>त – हात[११] <हाथ । हाती[१२४] <हाथी ।

फ>प – तपसील[४] <तफसील ।

भ>व – वी[१३१] <भी ।

इनके अलावा प्रस्तुत पत्रों में व्यंजन-ध्वनियों के जो परिवर्तन मिलते हैं वे इस प्रकार हैं—

ग>ज – भजाइ[८०] <भगाई ।

घ>ह – मेह[६१] <मेघ ।

ज>द – कागद[४] <कागज । तगादी[७६] <तकाजा ।

ज>ळ – कागळ[१२४-१८३] <कागज

ड> र — घरी[१०] <घडी । थोरे[८] <थोड़े । भीर[४३] <भीड ।
लरतु—भिरतु[५३] <लडतु भिडतु ।

ण> न — चरन[१०] <चरण । लक्ष्मन[१४३] <लक्ष्मण ।
साधारन[८] <साधारण ।

थ> मूर्धन्य ठ — ठाना[११५] <थाना ।

द> ज — खिजमत[४७] <खिदमत ।

द> ड — डिली[३८] <देहली—दिल्ली ।

न> ण — थाणा[१३२] <थाना । देणा[१५८] <देना इ० (अनेक)

म> अ — नरवदा[६८] <नर्मदा ।

य> इ — घाइल[५०] <घायल । फाइदा[११६] <फायदा । सहाइ[७] <सहाय ।

य> ई — काईम[२०२] <कायम ।

य> ज — जस[४] <यश । जती[१६७] <यती । जह[४६] <यह । जथा[१५७] <यथा ।
जोग्य[१५७] योग्य । मरजाद[१३३/१७६] <मर्यादा ।

य> व — किरावौ[६] <किराया । परावो[१०] <पराया ।

ल> ळ — अनेक उदाहरण हैं ।

ल> र — पखेरु[६१] <पक्षालु ।

व> उ — उतन[५३] <वतन । उकील[६३] <वकील । गाउ[२] <गाँव ।
बनाउ[८] <बनाव ।

व> औ — दंडौत[३६] <दंडवत् ।

व> म — समत[१७] <संवत् ।

व> ह — उपद्रह[५३] <उपद्रव ।

श> स — तलस[३] <तलाश । सुभ[१०] <शुभ । आसा[८] <आशा ।

श> छ — छत्रू[६७] शत्रू ।

ष> स — संतोस <संतोष ।

ह> ए — फते[१२४] <फतह ।

ह> घ — खुमानसिंघ[६] <खमानसिंह ※ अनेक उदाहरण हैं ।

ह> ट — कटाताइ[२०४] <कहाँताइ ।

क्ष> छ — लछिमन[४५] <लक्ष्मण । छेत्रवासि[१७] <क्षेत्रवासी ।
साछी[५७] <साक्षी ।

विपर्यय:

व्यंजन ध्वनियों के विपर्यय के उदाहरण भी पत्रों में मिलते हैं । कुछ इस प्रकार हैं ।

तात्रा[२०] = भ्राता ।   मुकालवा[१६३] = मुकाबला ।

मुलजिम[७] = मुजरिम । सहाल[१६४] = सलाह् ।

हालहलाव[६८] = हालहवाल ।   इ०

व्यंजन-परिवर्तन की विशेषतायें—

(क) प्रस्तुत पत्रों में केवल "क्" और "1" ध्वनियों के घोषीकरण के उदाहरण मिलते हैं, जैसे—अनेग (प. २६) तोवखाना (११५)

(ख) घोष ध्वनियों के अघोषीकरण में सिफ द+ त के उदाहरण मिलते हैं जैसे—तागीत (प. ४)

(ग) विदेशी शब्दों के माध्यम से आगत "ज" ध्वनि का परिवर्तन द् या ळ् ध्वनियों में मिलता है ।

(घ) "ह" ध्वनि का परिवर्तन "ट्" में मिलता जो एक विशेष उल्लेखनीय बात है, जैसे—कटाताई (२०४)

—०—

❋ तीसरा अध्याय ❋

तीसरा अध्याय

संज्ञा-विचार

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त संज्ञा शब्दों का विवेचन यहाँ किया गया है। "संज्ञा दो प्रकार की होती हैं—(१) पदार्थ वाचक (२) भाव वाचक। पदार्थ-वाचक संज्ञा के दो भेद हैं—(१) व्यक्ति वाचक (२) जाति वाचक।"(क)

इस अध्ययन में जातिवाचक और भाववाचक संज्ञाओं का ही विवेचन किया गया है। प्रथम इन संज्ञा शब्दों को विभिन्न स्रोतों के अनुसार विभाजित किया है। प्रत्येक स्रोत में होने वाले संज्ञा शब्द पत्रों में जिस रूप में मिलते हैं उसी रूप में दिये गये हैं। प्रत्येक शब्द के साथ कोष्ठक में शुद्ध संस्कृत या हिन्दी तत्सम रूप दिया गया है। एक ही संज्ञा शब्द भिन्न रूपों में मिलता है, अत: उसके विभिन्न रूप भी दिये गये हैं। शब्द के ऊपर पत्र-क्रमसंख्या द्योतक अङ्क है।

जाति-वाचक संज्ञा :

"जिस संज्ञा से किसी जाति के सम्पूर्ण पदार्थों या उनके समूहों का बोध होता है उसे जातिवाचक संज्ञा कहते हैं।"(ख)

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त जातिवाचक संज्ञाओं का अध्ययन :—

इन संज्ञाओं का विभाजन प्रथमत: स्रोतों के अनुसार किया गया है। प्रथम संस्कृत स्रोत से और क्रमश: अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी स्रोतों से प्राप्त जातिवाचक संज्ञा शब्द दिये हैं। उसके अनन्तर हिन्दी और मराठी स्रोत से प्राप्त शब्द दिये हैं।

इन संज्ञाओं के अनन्तर कुछ यौगिक जातिवाचक संज्ञाएँ दी हैं। इनकी विशेषता यह है कि इनमें योग देने वाली दो संज्ञाएँ या तो एक या दो भिन्न भाषाओं से प्राप्त हैं।

यहाँ अध्ययन में उदाहरण के रूप कुछ संज्ञाएँ दी गयी हैं।

संज्ञाओं के उदाहरणों के अनन्तर लिंग और वचन के अनुसार उनमें होने वाले भेद, परिवर्तन आदि का अध्ययन है। जिन नियमों के कारण एक व. से बहु वचन बनाये गये हैं तथा जिन नियमों के अनुसार कारक परसर्ग प. व. या बहु व. में लगने से भिन्न रूप बने हैं उन नियमों का विवेचन किया गया है।

(क) हिन्दी व्याकरण पृ. ६५ (ख) हिन्दी व्याकरण पृ. ६६

संस्कृत तथा प्राकृत स्रोतों से मिलने वाली जातिवाचक संज्ञाएं

१	असथान (२०)	(सं. स्थान)
२	आशीर्वाद (७५)	(सं. आशीर्वाद)
३	ईसुर (६५)	(सं. ईश्वर)
४	उट (२७)	(सं. उष्ट्र, प्रा. उट्ट, हिन्दी ऊंट)
५	कपडा (२०)	(सं. कर्पट, प्रा. कप्पड, हि. कपड़ा)
६	घोडी (११)	(सं. घोटक, प्रा. घोडा, हि. घोड़ा–स्त्री लिंग)
७	जात्रा (१२७)	(सं. यात्रा)
८	तोरा (१७)	(सं. तोलक, हि. तोला–एक भार)
९	दंडौत (३६)	(सं. दंडवत्)
१०	पघडि (१७६)	(सं. पटक, हि. पगड़ी)
११	प्रनामु (४२)	(सं. प्रणाम)
१२	वेटा (६७)	(सं. वटु, प्रा. विट्ट, हि. वेटा)
१३	मानस (८)	(सं. मनुष्य ब. व.)
१४	सुना (१७)	(सं. स्वर्ण, हि. सोना)
१५	हात (११)	(सं. हस्त, हि. हाथ)

अरबी स्रोतों से प्राप्त जातिवाचक संज्ञाएं (छ)

१	उकील (६३)	(अ. वकील)
२	कवीला (५४)	(अ. क़बीला—खानदान के लोग)
३	खजानो (४३)	(अ. ख़ज़ाना)
४	जिल्ला (५३)	(अ. ज़िला)
५	फवज (६८)	(अ. फ़ौज)
६	मनसुबा (५६–१२०)	(अ. मन्सूब:)
७	मुकदिमा (१४४)	(अ. मुक्दमा मुक़द्दम:)
८	सलतनत (८)	(अ. सल्तनत)
९	हकीकति (४०)	(अ. हक़ीक़त)
१०	हीसा (३१)	(हिस्स:)

फारसी स्रोत से प्राप्त संज्ञायें (छ)

१	आफत (३४)	(फ़ा. आफ़त)
२	असावार (२६)	(फ़ा. सवार)

३	गुमास्ता (२, ३८)	(फ़ा. गुमाश्तः)
४	जिमी (१९)	(फ़ा. ज़मीं , ज़मीन)
५	तनखा (१२५)	(फा. तनख़्वाह)
६	दसकत (८८)	(फ़ा. दस्तख़त)
७	नीमक (१८)	(फ़ा. नमक)
८	पातशाह (६०)	(फ़ा. पादशाह)
९	फरमास (१४७)	(फा. फरमाइश)
१०	मुहर (३८)	(फ़ा. मुह्र)
११	लसकर (२५)	(फ़ा. लश्कर)
१२	सीरदार (१८)	(फ़ा. सरदार)

तुर्की स्रोत से प्राप्त संज्ञायें (छ)

१	कोरनीसात (१८)	(तु. कुरनुश)
२	तुवक (३२)	(तु. तबाक़)
३	तुरक (६४)	(तु. तुर्क)
४	तोफ (३)	(तु. तोप)
५	नौकर (५३)	(तु. नौकर)

अंग्रेजी स्रोत से प्राप्त संज्ञायें

१	कंपू (१५१)	(अं. कैंप)
२	गारदी (७९)	(अं. गार्ड)
३	पलटने (१३६)	(अं. प्लटून)
४	मिस्तर (१३५)	(अं. मिस्टर)

(क) अरबी, फारसी, तुर्की शब्दों के लिये उर्दू-हिन्दी शब्दकोश-प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग उत्तर प्रदेश का आधार लिया गया है।

हिन्दी या हिन्दी शब्दों से प्राप्त जातिवाचक संज्ञायें (ख)

१	खदाहन (१३)	(हिं. खान, खदान)
२	गादी (३५)	(हिं. गद्दी)
३	चुङ्गी (१९)	(हिं. चुङ्गल)
४	वाहान (१२७)	(हिं. व्हन, वहिन)
५	वयाह (१५४)	(हिं. व्याह)
६	भाइी (२२)	(हिं. भाई)

७	लढाई (१२४)	(हिं. लड़ाई)
८	सावकार (१४६)	(हिं. साहूकार)

मराठी भाषा से प्राप्त जाति-वाचक संज्ञायें (ग)

१	उन्हालु (११७)	(म. उन्हाळा)
२	कावरी (६७)	(म. कावड)
३	तह़नामा (१३१)	(म. तहनामा-संधिपत्र)
४	वुनगाह (१५१)	(म. वुणगा)
५	सही (३४)	(म. सही - दस्तखत)
६	सेलल (१२७)	(म. सहल)

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त जातिवाचक संज्ञाओं में संस्कृत स्रोत से मिलने वाली संज्ञाएँ सर्वाधिक हैं। संस्कृत से प्राकृत और प्राकृत से हिन्दी या अन्य देशी भाषाओं में आयी हुई संज्ञाएँ भी पत्रों में मिलती हैं।

अन्य भाषा स्रोतों से प्राप्त संज्ञाओं में प्रधानतः अरवी और फारसी भापा के शब्द हैं। इसके अतिरिक्त तुर्की और अंग्रेजी भाषा स्रोतों से प्राप्त संज्ञाएँ भी मिलती हैं। मराठी प्रभाव के कारण प्राप्त कुछ संज्ञा शब्द भी प्रस्तुत पत्रों में मिलते हैं।

अरबी,फारसी स्रोत से प्राप्त इन शब्दों से यह स्पष्ट होता है कि मुगल सलतनत के ह्रास के दिनों में राजभाषा के रूप में फारसी का प्रभाव घटता रहा फिर भी राजशासन, व्यवस्था में प्रयुक्त अनेक अरवी, फ़ारसी शव्द हिन्दी भापा ने आत्मसात किये इसी काल की भाषा में हमें हिन्दी भाषा का सर्व समन्वयवादी रूप लक्षित होता है और इसके साथ ही हिन्दी के स्वतंत्र विकास की दिशाएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

यौगिक संज्ञायें

जब दो या अधिक संज्ञा शव्दों के संयोग से एक स्वतंत्र संज्ञा शव्द बनता है तब उसे यौगिक संज्ञा कहते हैं। यौगिक संज्ञा में जिन दो शव्दों का संयोग होता है वे शव्द कभी एक ही भापा से प्राप्त होते हैं तो कभी भिन्न-भिन्न दो भापाओं से। यौगिक संज्ञा में जब कभी एक शव्द संस्कृत भावा से और दूसरा अरवी या फारसी भापा से मिलने वाला होता है और उन दोनों के संयोग से एक यौगिक संज्ञा बनती है तब वह उल्लेखनीय होती है।

प्रस्तुत यौगिक संज्ञाओं में या तो समानार्थक दो संज्ञाओं का संयोग है या इनमें होने वाले प्रथम संज्ञा शव्द के साथ दूसरा सार्थक या निरर्थक समानुप्रास शव्द आता है।

यौगिक संज्ञाएँ

१	अर्ज विती (१५)	(अर्ज—फा.+विनति—सं.)
२	करार मदार (७)	(करार—अ.+मदार–अ.)
३	कागद पत्र (४)	(कागज—फा.+पत्र—सं.)
४	काम काज (१६, ५०)	(सं. काम+कार्य)
५	खत पत्र (३)	(खत—अ.+पत्र—सं.)
६	गहणा–जेवर (३०)	(गहना–ग्रहण—सं.+जेवर—फा.)
७	गाव जागा (६१)	(गांव, ग्राम—सं.+जगह—फा.)
८	घाट डाग (७)	(घाट—स.+डॉग (हिन्दी या देशज)
९	चीज वस्त (११)	(चीज—फा.+वस्तु—सं.)
१०	चीजवस्त (३)	(,,)
११	देस मुलक (११६)	(देश—सं.+मुल्क—अ.)
१२	फौज सींबदी (५६)	(फौज—अ.+सिहबन्दी—फा.)
१३	बंदगी–मुजरा (४०)	(बंदगी—फा.+मुजरा—अ.)
१४	बात चीत (७)	(बात—हि.+चेत—सं.)
१५	वाल वच (६७)	(वाल—सं.+बच्चा—हिन्दी)
१६	महाल मुलख (१३१)	(महाल—अ.+मुल्क—अ.)
१७	मुट्डी—चुंगी (१६)	(मुट्ठी—सं. प्रा +चुंगी—हि.)
१८	सलाम बंदगी (२६)	(सलाम—अ.+बंदगी फा.)
१९	ढांढा ढोर (११७)	
२०	भीर भार (५०)	
२१	साज सीग (११)	

यौगिक संज्ञाएँ

यहाँ कुछ ऐसी संज्ञाएँ प्रस्तुत है जो एक दृष्टि से तो यौगिक संज्ञाएँ और दूसरी दृष्टि से सामासिक शब्द हैं। "दो या अधिक शब्दों का परस्पर संबन्ध बतलाने वाले शब्दों अथवा प्रत्ययों का लोप होने पर उन दो या अधिक शब्दों से जो एक स्वतन्त्र शब्द बनता है उस शब्द को सामासिक शब्द कहते हैं।"(अ)

पत्रों में प्राप्त ऐसे कुछ सामासिक शब्द या संज्ञाएँ :

१ अमेय पत्र (६८)

(अ) हिन्दी व्याकरण पृ. ३८९

२	अर्जदास्त (११)	अर्जदास्ति (४३)
३	आग्या पत्र (२४, २५, ३३)	
४	आसीर्वचन (८५)	
५	इनाम पत्र (७३)	
६	इह लोक (६७) देव लोक, परलोक (११६)	
७	कवज रसीद (४४, ७१)	
८	कवीला मानस (१४०)	
९	कल्प वृक्ष (६७)	
१०	कागज समाचार (३५) कागज-समाचार (३६)	
	कागद समाचार (१८)	
११	कृपा पत्र (४६) कृपा पत्र (१७) क्रपा पत्र (२२)	
१२	जवाव-सला (५३) जाव साल (११८) जूवाव-सवाल (१४२)	
	ज्वावु-स्वाल (१५) ज्वावु-स्वालु (१५)	
१३	टीका वियोहार (६३) (- जेवर)	
१४	जामदार खाना (२०)	
१५	ताकीद पत्र (७३) तागीत पत्र (४)	
१६	तीर गोली (११)	
१७	तीर्थ-जात्रा (३६)	
१८	पती संमचार (४१) पाती समाचार (४, २८)	
	पालखी डंढे (१६०)	
१९	वेपारी रईयत (१४४)	
२०	महा प्रसाद (६)	
२१	तोफखाने (१५१) तोवखानो (११५)	
२२	मुकासे कामदार (८०)	
२३	याददास्ति (३८)	
२४	राजभंडार (६)	
२५	रात्र दिन (१०८)	
२६	वरदान पत्रौ (८)	
२७	सर्फराज नामा (१८)	
२८	सिलेपोस (१४१)	

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त यौगिक जातिवाचक संज्ञाएँ अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इन संज्ञाओं में होने वाले दो शब्द और उनका संयोग उल्लेखनीय है। ये दो शब्द कभी एक ही भाषा के मिलते हैं, कभी इनमें होने वाला एक शब्द संस्कृत और दूसरा हिन्दी है, किन्तु जब हमें एक शब्द संस्कृत और दूसरा अरबी या फारसी का मिलता है तब इसका अध्ययन ध्यान देने योग्य होता है। अरबी, फारसी भाषाओं से प्राप्त शब्द तत्कालीन शासन-व्यवस्था में इतने प्रचलित हुए थे कि प्रचलित भाषा से उनका निष्कासन कठिन था। ये शब्द तत्कालीन भाषा में इतने मिले हुए थे कि उनका पराया-पन नष्ट हो गया था और तत्कालीन शासक और पत्र-लेखक जो प्राय: पंडित थे—इन शब्दों को संस्कृत शब्दों के साथ प्रयुक्त करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं करते थे। अत: भाषा का सर्वग्राही रूप हमें इस प्रकार की यौगिक संज्ञाओं के द्वारा तत्कालीन प्रस्तुत पत्रों से प्राप्त होता है।

संज्ञाओं का लिंग-निर्णय

"हिन्दी में लिंग का पूर्ण निर्णय करना कठिन है। इसके लिए व्यापक और पूरे नियम नहीं बन सकते, क्योंकि इनके लिए भाषा के निश्चित व्यवहार का आधार नहीं है।"(आ) लिंग-निर्णय के लिए व्याकरण से पूर्ण सहायता नहीं मिल सकती। उसका निर्णय व्यवहार पर निर्भर है।

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त संज्ञाओं को लिंग-निर्णय की दृष्टि से देखने पर प्रतीत होता है कि यह लिंग-निर्णय अधिकतर व्यवस्थित है। स्त्रीलिंग की संज्ञाओं के लिए कुछ व्यवस्था बताने का प्रयास किया गया है यह व्यवस्था अधिकतर व्यवहार पर आधारित है।

व्यवहार में पुल्लिंग होते हुए भी पत्रों में स्त्रीलिंग में प्रयुक्त विशेष शब्दों की सूची दी गयी है। अन्त में यौगिक स्त्रीलिंग संज्ञाओं पर विचार किया गया है। स्त्रीलिंग संज्ञाओं में होने वाले लिंग-निर्णय का अध्ययन—

'अ" कारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं का विभाजन

(१) कुछ "त" कारान्त संज्ञाएँ स्त्रीलिंग हैं—

फबुलियत (३१)
कीमत (१४७)
दीकत (१८५)

(आ) हिन्दी व्याकरण पृ. १८८

वात (३)
बिसात (११५)
मामलत (१५२)
मदत (१०२)
मुलाजमत (१६०)
रयत = रैयत (१६२)
वरात = हुण्डी चैक (४५)
हकीकत (७)

(२) कुछ "द" कारान्त संज्ञाएँ स्त्रीलिंग हैं ।

तरतूद (१३२)
ताकीद (७३)
पालद (७३)
फीर्याद (१२८)
मरजाद (१७३)
सनद (३६)

(३) कुछ "र" कारान्त संज्ञाएँ स्त्रीलिंग हैं उदा—

आखै (१२४)
ओर (१८)
कसर (१७३)
खबर (५६)
खातर (४५)
गौर (४, ४२)
जागीर (१२)
ततवीर (६, ४०)
तदवीर (२)
तलवार (१६०)
दरकार (१५६)
देर (८)
भीर (४३)
भार (१३६)
मुहर (३८)

सरकार (५२)
सिरकार (७)
हजुर (१२)

(४) कुछ "ह" कारान्त संज्ञाएँ स्त्रीलिंग हैं।

जगह (३५)
तंवीह (५६)
तनख्वाह (२)
तरह (२)
वाह (६५)
राह (७)
सलाह (२२)

(५) शेष अकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञायें।

आँख (७)
उसन (५३)
ऐवज (४५) (मराठी)
कीस्त (१४७)
कुसाइस (५०)
गुञ्जाइस (४०-घीराव)
चीजवस्त (१५७)
छाप (१०)
जीनस (३) (फा. जिंस)
टीप (३१)
ठीप (१२८)
डाक (२०१)
डाम (७)
तरफ (५३)
तलव (५६)
तारीफ (४०)
दुकान (३८)
दस्तावेज (६६)
धूम (१८३)

नकल (६५)
नालीस (१२८)
फरमास (१४७)
फसल (४०)
फोज (२१)
वंदूक (११)
वाहान (१२७)   भेंट (२६)
रस्म (१६२)
रौनक (१४२)
लिपत (८२)
सरम (१८)
सिकस्त (५४)
सिखापन (५३)
सीख (१६८)
सेडल (१३७) (मराठी सडल)
हद (१६)

(६) "अ।" कारान्त स्त्रीलिंग ंज्ञाएँ।

(अ) कुछ "ता" कारान्त भाववाचक संज्ञाएँ स्त्री लिंगहैं।

एक्यता (११६)
द्रढ़ता (१२०)
चिंता (१४२)
छैमता (१६८)
प्रसन्नता (११८)

(७) (अ) कुछ भाव वाचक "आ" कारान्त संज्ञाएँ स्त्रीलिंग हैं।

आसा (६)
आज्ञा (५१)
इच्छा (३)
काव्जा (८३)
कृपा (४६)
खातरजमा (११७)

जमा (१६) जमा (६५)
जीविका (६०)
नीसा (६५)
पालना (१५, ४५)
पूजा (३)
माया (५७)
लज्जा (५१)
सजा (५३)
सेवा (१५)
सोभा (१६१)

(८) शेष कुछ "आ" कारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाएँ।

जागा (६) म. (जगह)
जात्रा (१२७)
भार्जा (३०)
शर्करा (१०६)

(९) "इ" कारान्त संज्ञाएँ स्त्रीलिंग हैं।

अभिवृध्दि (१२२)
कीर्ति (३)
सुखोत्पत्ति (११६)

(१०) अकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं के अन्त में "इ" जोडकर बनी हुई संज्ञाएँ।

आफति (७५)
कूवति (५०)
ताकीदि (२)
नजरि (१०)
यादि (५४)
सनधि (१६)
हकीकति (१, २०)
उमरि (३५)
खबरि (४)
तागीति (४५)
फुरसति (५०)
राति (११५)
सजलि (५०)

(११) "ई" कारान्त संज्ञाएं।

कुछ "आ" कारान्त पुल्लिग संज्ञाओं के अन्त में "ई"

जोड़कर "ई" कारान्त संज्ञाएं बनी हैं।

कोठी (१३५) घोड़ी (११)
चिठी (१५) चीठी (२०)
जोडी (६२) थैली (४८)
वैठी (१५३)

(१२) "अकारान्त" पुल्लिग संज्ञाओं के अन्त "ई" जोड़ने से वनी भाववाचक स्त्रीलिग संज्ञाएं।

कर्जदारी (७५) कामदारी (१०४)
जीमीदारी (३६) दस्तगीरी (५६,६८)
मुखत्यारी (१४३) चाकरी (४०)
नौकरी (८३) वकीली (१५५)

अकारान्त विशेपणों के अन्त में "ई" जोड़कर वनी संज्ञाएँ।

अवादानी (१६) खुशी (१०६)
खरावी (१६८) जुदाई (१०६)
जुदाइगी (६६) जेरवारी (१०६)
तयारी (१२१) दुरुस्ताई (७७)
दोस्ती (१५१) दौलतिखाई (५३)
निकाई (६४) मजवूती (७४)
सर्फराजी (१०६) खुशहाली (५)
सुभचितकी (११४) हराम खोरी (५६)
सकती (१०)

(१३) "अ" कारान्त पुलिग संज्ञाओं के अन्त में "ई" जोड़कर वनी अल्पार्थक स्त्रीलिग संज्ञाएँ।

गढ़ी (५३) छत्री (१५०)
नगरी (४८) पत्री (४८)
प्रश्नपत्री (१६७)

(अन्त में "वन्दी" शव्द जोड़कर वनी भाववाचक स्त्रीलिग संज्ञाएँ।

किस्तवंदी (४३) पेशवंदी (५६)
रजावंदी (६, १६७) रस्मै-वंदी (१६२)

क्रियाओं से वनी भाववाचक स्त्रीलिंग संज्ञाएँ।

खाना खोदी (५६)

लड़ाई (१२४) लराई (५०)

लिखी (५६) खरीदी (१८७)

धमकी (२१)

कुछ अन्य "ई" कारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाएँ।

अवाई (६४) आमदानी (१९)

कावरी (६४) खंडणी (३३)

खलासी (नुक्तता) (१३४) खुशवखती (६८)

गई (११४) (गय—मराठी) गादी (१५७)

जुवानी (१७२) (जुवानी हकीकत के अर्थ में प्रयुक्त)

तगलवी (१३५) तरकी (५)

तिहाई (६) पठारी (६५)

पालखी (१५१) पौन्तगी (१२३)

मनाई (१४४) मरजी (४६)

मीती (१९२) विनती (१५)

वीदी (३१) सरुवराई (७७)

सफाई (१७९) सकती (१०)

साचोटी (१२५) सिपरसी (४०)

सीवंदी (८४)

(१५) कुछ "उ" कारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाएँ—

गउ (२०५)

सिखापनु (१०२)

(१६) "ए" व "ऐ" कारान्त संज्ञाएँ।

फते (१२४)

फतै (८)।

(१७) प्रस्तुत पत्रों में कुछ विशेष स्त्रीलिंग संज्ञाएँ प्राप्त हुई हैं। ये संज्ञाएँ मूल में पुल्लिग हैं किन्तु उनका प्रयोग स्त्रीलिंग में किया गया है।

आधार (५१) तख्त (२०६)

तुवक (३२) मतलव (४)

सहाय (६४) साल (२)
साथ (१६) जीला (२०४)
राजि (४) असामी (११)
असवारी (७७) न्याऊ (८)

१८ समानार्थक या अन्यत. दो शब्दों के संयोग से बनी यौगिक स्त्रीलिंग संज्ञाएँ।

कवज--रसीद (४४, ७१) खुसी--खातरनामा (३६)
गाव--जागा (६०) ताड़-पीछोड़ो (२०)
घूम-धाम (५०) नौकरी-दौलतखाही (३६)
पाती-समाचार (४५) पाती सीखापनु (७६)
फौज-सीबंदी (५६) वातछीत (७)
बंदगी-मुजरा (४०) लुहालाही (५४)
लखि-पढ़ी (४) सलाम-बंदगी (२३)
सल्लाह-सिखापनु (६७)

इन यौगिक संज्ञाओं के लिंग-निर्णय में स्वतन्त्रता से काम लिया गया है। इनमें प्रथम या द्वितीय शब्द के अनुसार लिंग-निर्णय नहीं किया गया।

संज्ञा, वचन-विचार

"संज्ञा के जिस रूप से संख्या का बोध होता है उसे वचन कहते हैं। हिन्दी में दो वचन है—(१) एक वचन (२) बहु वचन।

(१) संज्ञा के जिस रूप से एक ही वस्तु का बोध होता है उसे एक वचन कहते हैं।

(२) संज्ञा के जिस रूप से एक से अधिक वस्तुओं का बोध होता है उसे बहुवचन कहते हैं।"(अ)

"राजस्थानी भाषा में भी दो वचन होते हैं—एकवचन और बहुवचन।"(आ)

"मराठी में वचन दो हैं : एकवचन, और अनेक वचन अथवा बहुवचन।"(इ)

विभक्ति-रहित बहुवचन जिन नियमों के आधार पर बने हैं वे नियम यहाँ दिये हैं। ये नियम भी लिंग भेद के अनुसार अलग-अलग दिये हैं।

(अ) हिन्दी व्याकरण पृ. २०४, २०५
(आ) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. ४८
(इ) मराठी शास्त्रीय व्याकरण पृ. २८६

पुल्लिग शब्द

प्रस्तुत पत्रों में इस नियम के अनुसार बने हुए बहुवचन के कतिपय उदाहरण मिलते हैं। अकारान्त पुल्लिग शब्द दोनों वचनों में एक रूप रहते हैं। जैसे—

असवार (८, २४)	आशीर्वाद (१४५)	कागज (३८)
कामदार (१३८)	कासीद (२०१)	खत (१६५)
गाव (१३४)	चरन (४३)	ठाकुर (१५२)
दिन (३०)	नमस्कार (५१)	नौकर (५३)
पत्र (४)	पुत्र (३०)	बैल (११)
मानुस (६३)	मुकासदार (१३६)	मुहाल (१७)
रोज (७)	छोक (१५७)	समाचार (१८४)
सिरदार (५६)	हाथ (६)	

हिन्दी में आकारान्त पुल्लिग शब्दों का बहुवचन बनाने के लिए अंत्य "आ" के स्थान में "ए" लगाते हैं—इस नियम के अनुसार बने हुए ब. वचन के उदाहरण प्रस्तुत पत्रों में अनेक मिलते हैं। कुछ ये हैं—

किले (१६)	कबीले (१८०)	घोड़े (१४७, २०५)
डंढे (१६१)	तोरे (१७) (तोला-नाप)	
थाने (४)	नकारे (१५१)	प्यादे (१, ७६)
प्रवाने (१५५)(परवाना)	पैसे (११)	ब्रजारे (५७)
बीघे (१५०)	(जमीन का नाप)	सगे (५७)
बेटे (१)	मासे (एक तोल माशा) (१७)	
रुपये (१७)	रुपीये (१२५)	रुके (१२५, १६३) (रुक्का)
लडके (१८४)	सिसे (६७) इ० ।	

हिन्दी में "ई" कारान्त पुल्लिंग शब्द दोनों वचनों में एक रूप रहते हैं। इस नियम के कनुसार बने हुए ब. वचन के उदाहरण निम्न हैं। —

आदमी (१३१)	कारबारी (१६०)	बेपारी (१४८)
भाई (१६१)	मतलबी (१८८)	हाती (१२४) (हाथी)

संज्ञाओं के बहुवचन बनाने के इस नियमों के सिवा पुल्लिंग शब्दों के बहु वचन के कुछ अन्य रूप भी मिलते हैं। ये ब. व. के रूप ब्रजभाषा, मराठी भाषाओं के नियमों के अनुसार बने हैं।

ब्रजभाषा के नियम—

(१) "ब्रजभाषा में व्यंजनान्त संज्ञाओं में अन् जोड़कर विकृत रूप ब. वचन बनाया जाता है। (ई)

प्राचीन ब्रज में "न" जोड़कर विकृत रूप ब. वचन बनाया जाता है। और साधारणतया पूर्व का स्वर दीर्घ होने पर ह्रस्व तथा कभी-कभी—ह्रस्व होने पर दीर्घ हो जाता है।" (उ)

लिखित रूप में संज्ञा शब्द व्यंजनान्त नहीं तो स्वरान्त पाये जाते हैं। अन्त में "न" जोड़कर बने हुए ब. वचन के रूप प्रस्तुत पत्रों में पाये जाते हैं, ये निम्न प्रकार हैं।

खानन (६४) गाउन (५०) चरनन (५४)
जावन (५३) ठाकुरन (५२) दिनन (१, ६)
जागीरदारन (५०) मुतसद्दिन गारदीन (७१)
पातसाहन (८)

"न" के स्थान पर नि या नु प्रत्यय से युक्त ब. व. के रूप मिलते हैं।

नि प्रत्यय—

गांउनि (२) चरननि (४५) ठाकुरनि (५०)
दिननि (१,८,४६) पैसनि (२) मानसनि (६६)
राजानि (५७) रुपैयनि (४७)
किस्तनि (८४) महालनि (१६) जागनि (६६)
जिमीदारनि परगननि (६४) रोजनि (५३)

नु प्रत्यय से बना रूप—

पुत्रनु (६४)

"इ" या "ई" अन्त्य वाले कुल मूल शब्दों में "न" प्रत्यय लगाने के पूर्व य जोड़ा जाता है। उदा=आदमीयन (७) (ऊ)

मराठी भाषा में प्राप्त बहु वचन बनाने के कुछ नियम भी प्रस्तुत पत्रों में मिलते हैं।

(१) "अ" कारान्त नपुंसक लिंग संज्ञाओं का ब. वचन एकारान्त होता है। (ए) जैसे—

वरसे (८) (वर्षे—मराठी) निशाने (१२१)
निशाणे (१२४) झाडे (१८४)

(ई) ब्रज भाषा पृ. ५८ (उ) केलाग—हिन्दी ग्रामर पृ. १०६
(ए) मराठीचे शास्त्रीय व्याकरण पृ. ३१२ (ऊ) ब्रजभाषा पृ. ५८

अरबी नियम—

एक पत्र में "आकारान्त पुल्लिग शब्द" बन्दा का अरबी ब. वचन बन्दगान मिलता है—उदा—

अरज बंदगान (११)

स्त्रीलिंग शब्द—

हिन्दी में "अकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों का बहुवचन अंत्यस्वर के बदले एँ करने से बनता है।" (अ) इस नियम के अनुसार बने हुए ब. वचन कतिपय रूप पत्रों में मिलते हैं—(अनुस्वार की संदिग्धता सर्वत्र स्वीकार की गयी है।)

उदा—

बाते (७) नौबते (१२४) फौजे (५४, २०२)
राहे (५४) रस्मे (१६२) पलटने (१३६)

"इ" कारान्त और "ई" कारान्त संज्ञाओं में "ई" को ह्रस्व करके अन्त्य स्वर के पश्चात् याँ जोड़ते हैं। (अ)

हवेलियाँ (१२८) हुड़ियाँ (१११)

व्रज भाषा के नियमानुसार बने हुए रूप—

"पूर्वी प्रदेश में व्यंजनान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं में ऐं जोड़ा जाता है। (आ) इस नियम के अनुसार बने रूप—

थनै (८२) (थाने) तरहै (५८) फसलै (४०)
सनदै (३५, ३६) सनघै (६६) दुकानै (३८)
कावरै (६)

मराठी भाषा के अनुसार बने रूप—

"अ" कारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाएँ "आ" कारान्त बनाने से ब. वचन के रूप बनते हैं। (इ) इसके उदाहरण निम्नलिखित हैं —

बंदूका (११) मोहरा (१७)

कुछ आ कारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाएँ दोनों वचनों में एक रूप रहती हैं। (ई) इस नियम के अनुसार बने हुए कुछ रूप—

मुद्रा (६०) जागा (६)

(अ) हिन्दी व्याकरण (पृ. २०६) (आ) व्रजभाषा (पृ. ५८)
(इ) मराठीचे शास्त्रीय व्याकरण (पृ. २६८)
(ई) मराठीचे शास्त्रीय व्याकरण (पृ. ३०६)

अरबी नियम—

एक पत्र में एक स्थान पर अरबी भाषा के अनुसार बनने वाला "अ" कारान्त स्त्रीलिंग शब्द का ब. वचन का रूप मिलता है।

उदा० "अपनी "हृदहुदुद" से बुंदी कुंपोहचाय देवे ।" (१८५)

संज्ञा के कारक सहित बहुवचन (पुल्लिग और स्त्रीलिंग)—

'आ" कारान्त पुल्लिग या स्त्रीलिंग शब्दों के अंत्य स्वर में "ओ" आदेश होता है। (उ) इस नियम के अनेक उदाहरण प्रस्तुत पत्रों में मिलते हैं। जैसे—

उट – उटोकी (१८५) कासीद – कासीदो की (२०१, २०१, २०१) – कु – के

कोतहअंदेस – कोतहअंदेसो ने (५६)

खावंद – खावंदो के (५६)

गाव – गावो कुं (१३४) कृपा–पत्र = कृपा–पत्रों से (२०५)

लोग – लोगों की (५६) लोगों कों (२०५)

सरदार – सरदारो से (१६८) पलटन – पलटनो ने (१५१)

बात – बातों को (१६८)

आकारान्त—"विकारी आकारान्त और हिन्दी याकारान्त शब्दों के अन्त्य स्वर में ओ आदेश होता है।" (ऊ) इस नियम के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

कपडा – कपडो के (३२, १८५) रुपीया – रुपीयो का (१२५)

"इ" कारान्त संज्ञाओं के अन्त्य स्वर के पश्चात् "यों" लगाया जाता है।" (ए) इस नियम के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

लडकी—लडकीयों के (१५४) कारबारी—कारबारियों कों (२०५)

हवेली—हवेलीयों का (१२८) मुतसद्दी—मुतसदीयों ने (१३४)

मुतसद्दी—मुतसदीयों सो (१३४)

हिन्दी नियमों के इन उदाहरणों के सिवा व्रजभाषा के नियमों के अनुसार

(ऊ) हिन्दी व्याकरण पृ. २२८।

(ए) हिन्दी व्याकरण पृ. २२८।

वने हुए व. वचन के कारक सहित रूप प्रस्तुत पत्रों में मिलते हैं। नियम और उनके अनुसार वने रूप इस प्रकार हैं—

व्रज भाषा में बहुवचन द्योतक शब्दों में कारकीय परसर्ग जोड़कर व. व. के रूप वनते हैं।

(१) अन्त में "न" होने वाले व. वचन के संज्ञा शब्दों के परसर्ग सहित रूप—

तुरकन की (६४) दिनन में (६)
मुहालन की (७) मुकासदारन की (६४)
रुहेलन की (८) खानन मै (६४)
आदमन कौ (७) गारदीन के (७१)

(२) अन्त मे "नि" होने वाले ब. व. के संज्ञा शब्दों के परसर्ग सहित रूप—

चरननि को (५४) दिननि मे (८, ४६)
दिननि ते (५, ५५, १०१) महालनि को (१९)
परगननि में (६४) पैसनि की (२)
राजानि सो (५७) रुपैयनि की (४०)
गाउनि कौ (७९) गाउनि मे (२, ७९)
गाउनि सौ (२) सनघनि मै (७९)

इन नियमों के अतिरिक्त मराठी भाषा के कुछ नियमों के अनुसार बने हुए ब. वचन के रूप भी प्रस्तुत पत्रों में मिलते हैं।

[ऊ]

"परसर्ग के पूर्व अन्त्य "अ" स्वर का आदेश "आ" होता है।
इस नियम के अनुसार बने हुए रूप निम्नलिखित हैं—

तालुकदार – तालुकदारा कु (२०१) (दिन) दीन – दीना में (१५०)
दीनामो (१५९) दिना से (१५४)
दीनासु माहालामो (११५)
लोकांसो (११५) लोगांसो (११५)
समयामो (१५९) सरदारा सो (१६९)
तोफांकी (१३१)

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त इन नियमों और रूपों को देखकर ऐसा लक्षित होता है कि कि इन पत्रों में संज्ञा शब्दों की वचन व्यवस्था में प्रधानतः हिन्दी नियमों का ही

(ऊ) मराठीचे शास्त्रीय व्याकरण पृ. २६९।

आधार लिया गया है। हिन्दी नियमों के अनुसार बने हुए परसर्ग रहित और परसर्ग सहित संज्ञा शब्दों के रूपों का परिमाण अन्य शब्द रूपों से अधिक है। हिन्दी नियमों के साथ-साथ ब्रज भाषा तथा मराठी भाषा में प्राप्त नियमों के आधार पर कतिपय रूप बने हुए मिलते हैं। इससे स्पष्ट है कि पत्रों की भाषा में एक ओर ब्रज भाषा का प्राचीन प्रभाव लक्षित है तो दूसरी ओर मराठी शासकों की अपनी प्रान्तीय भाषा मराठी का। इन प्रभावों के होते हुए भी पत्रों की यह भाषा आज की साहित्यिक हिन्दी भाषा के निकटवर्ती है।

भाववाचक संज्ञायें

"जिस संज्ञा से पदार्थ में पाये जाने वाले किसी धर्म का बोध होता है उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं।[अ] धर्म शब्द का उपयोग भिन्न अर्थों में किया जाता हैं। प्रधानतः (१) पदार्थ का धर्म अथवा गुण (२) अवस्था और व्यापार के अर्थों में उसका प्रयोग किया जाता हैं। "भाव वाचक संज्ञाएँ बहुधा तीन प्रकार के शब्दों से बनाई जाती हैं (१) जाति वाचक संज्ञा से (२) विशेषण से (३) क्रिया से।"[आ]

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त भाव-वाचक संज्ञाओं का विवेचन दो प्रकार से किया गया हैं। प्रथमतः इन संज्ञाओं को स्रोत के अनुसार विभाजित किया गया है और हर एक स्रोत की कुछ संज्ञाएँ उदाहरण के रूप में दी गयी हैं। द्वितीय विभाजन परसर्ग के संयोग से बनी हुई भाव-वाचक संज्ञाओं का है।

भाव वाचक संज्ञाओं में भी यौगिक संज्ञाएँ प्राप्त होती हैं जो या तो एक ही भाषा के या अलग अलग दो भाषाओं के शब्दों के संयोग से बनी हैं। इनका भी अध्ययन किया गया है।

स्रोत के अनुसार विभाजन :

इस विभाजन में क्रमशः संस्कृत, अरबी, फ़ारसी स्रोत से प्राप्त संज्ञाओं के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं। इनके अलावा मराठी भाषा के प्रभाव के कारण प्रस्तुत पत्रों में मिलनेवाली भाव वाचक संज्ञाएँ भी दी गयी हैं।

(अ) हिन्दी व्याकरण पृ. ६७, ६८।

(आ) हिन्दी व्याकरण पृ. ६६।

(क) संस्कृत स्रोत से प्राप्त संज्ञाएँ :

अध्ययन (६०)
आनंद ,,
आरोग्रि (सं. आरोग्य)
कीरपा (सं. कृपा)
दर्सन (सं. दर्शन)
पुन्य (सं. पुण्य)
मरजाद (सं. मर्यादा)
लज्जा (सं. लज्जा)
संतोषु (सं. संतोष)
सीख (सं. शिक्षा)
स्नेह (सं. स्नेह)
छेम (सं. क्षेम)

अरबी स्रोत से प्राप्त—

अखतार (१०४) (अ. इख्तियार)
इजित (१०) (अ.) इज्ज़त)
इतवर (३) (अ. एतवार)
करार (६८) (अ. क़रार)
जीमा (१३०) (अ. ज़िम्मा)
तफ़ावत (१८५) (अ. तफाक्त)
दीकत (१८५) (अ. दिक्कत)
फतै (८) (अ. फ़तह, फ़त्ह)
रुकसुद (१६६) (अ. रुख़सत)
सलुक (७५) अ. सलूक)

फ़ारसी स्रोत से प्राप्त—

आराम (२०) (आराम)
गुंजाईश (४०) (फ़ा. गुंजाइश)
फुरमाईस (५४) (फ़ा. फ़रमाइश)
कुच (५५) (फ़ा. कूच—प्रस्थान)
प्रवरस (५५) (फ़ा. परवरिश)

मराठी स्रोत से प्राप्त—

१. घरोवा (७७, १२६) (मरा. घरोवा=वंधुभाव, घरेलु व्यक्ति का सा भाव, भाईचारा, मरा. श. को. भाग. ३, पृ. १०६७)

२. ठिकाणा (६५) (मरा. ठिकाण–णा=पता, मराठी शब्द कोश भाग ३ पृ. १४०४)

३. निकाल (१४६) (मरा. निकाल = फैसला, निर्णय, परिणाम, अंत म. श. को. भाग ४ पृ. १८३९)

४. नीकड (१५८) (मरा. निकड=तकाजा, तगादा, म. श. को, भा, ४ पृ. १८३९)

५. नीभाव (२०, २०७) (मरा. निभाव=वचाव, निर्वाह म. श. को. भा. ४ पृ. १८५६)

६. पारपत्य (६६) (मरा. पारपत्य या पारिपत्य= सजा, दंड, म. श. को. भाग ५ पृ. १०२२)

७. वरतमान (२०) (म. वर्तमान = खवर, वृत्तान्त, स्थिति, म. श. को. भा. ६ पृ. २७५८)

८. वोवाठ (२०) (म. वौभाट—टा—चारों ओर खवर फैल जाना, जाहिर होना म. श. को. भा. ५ पृ. २३१६)

९. भोगोटा (७३) (म. भोगवटा — उपभोग, कब्जा, म. श. को. भा. ५ पृ. २३८९)

१०. साचोटी (१२५) (म. सचोटी—ईमान, नेकी, सत्यता, म. श. को. भा' ७ पृ. २९९१)

यौगिक भाव वाचक संज्ञाएँ

दो या अधिक शब्दों के संयोग से जब एक स्वतंत्र शब्द बनता है तब उसे यौगिक शब्द कहते हैं। दो संज्ञा–शब्दों से बनने वाली यौगिक संज्ञाओं का अध्ययन यहाँ प्रस्तुत है। इन यौगिक भाव-वाचक संज्ञाओं में प्राप्त दो संज्ञा शब्द कभी एक ही स्रोत के हैं कभी दो भिन्न स्रोतों के। इन भाव वाचक यौगिक संज्ञाओं को स्रोत के अनुसार विभाजित किया गया है।

संस्कृत स्रोत के शब्दों से वनी यौगिक भाव वाचक संज्ञाएँ।

कुशल—क्षेम (१०७) (६७)
छल—वल (५४)
जस—पुण्य (३)
जीर्णोद्धार (१५७)
तेज—प्रताप (२९) दयावर्म (९७)
प्रताप—खपन (४६)
राज्य—प्राप्ति (१६७)
राज्य—प्राप्ती के अर्थ में प्रयुक्त शब्द।)
रीत—भात (१९४)
रीत—मरजाद (१९४)
सनेह—वृधि (१७९)
स्नेह—वृद्धि (१८२)
सीष्टाचार (१८९)
स्नेह—वौहार (१९४)
हेत वुहार (२०६)
हेत व्यौहार

हिन्दी यौगिक भाव वाचक संज्ञाएँ।

ढील—ढाल (७७)
घुम—वाम (५०)
घूम—घाम (५०)
लपि—पढी (४)
लराई—भिराई (५३)

केवल अरबी स्रोत से प्राप्त—

खातर जमा (२४, २६)	(अ. खातिर+अ. जम)
खातर ज्मा (६५)	(,,)
फंद फीतुर (१५२)	(अ. फंद+अ. फ़ुतूर)
हाल अहवाज (५५)	(अ. हाल+अ. अह्‌वाल)
हीळा ह़रकत (७३)	(अ. हील:+अ. ह़रक्त=बदअमाशी)

केवल फ़ारसी शब्दों से बनी—

आमदर्फर (१६)	(फ़ा. आमद:+फा. रफ़्त—यातायात)
कारवार (२०७)	(फ़ा. कार+फा. बार) कारोबार।

अरबी और फारसी शब्दों के संयोग से बनी—

गौर परदास्त (१८०)	(अ. गौर+फ़ा. पर्दाख़्त)
गौर परदाखत (११६)	(,,)
तसदी आजार ६८)	(अ. तस्दीअ+फ़ा. आजार)
वद फैल (१५२)	(फ़ा. वद+अ. फेल) फेलेवद।

इन यौगिक भाव वाचक संज्ञाओं के अलावा अन्य भाव वाचक संज्ञाएँ मिलती हैं। इन संज्ञाओं में प्रधान रूप से परसर्ग (प्रत्यय) लगने से बनी हुई भाव वाचक संज्ञाएँ हैं। बहुधा "ई" और "बंदी" परसर्ग लगने से भाव वाचक संज्ञाएँ बनी हैं। संज्ञा शब्द या विशेषण के अन्त में "ई" परसर्ग जोड़ने से बनी हुई भाव वाचक संज्ञाएँ अधिक हैं। इन में होने वाले संज्ञा शब्द या तो एक या एक से अधिक शब्दों के संयोग से बने हैं।

शब्दों के अन्त में "ई" परसर्ग जोड़ने से बनी भाव वाचक संज्ञायें।

(क) संज्ञा शब्दों से बनी—

चाकरि (४५)	(फ़ा. चाकर+ई—चाकरी) उ. हि.
चाकरी (४१)	(,,)
दोस्ती (१५१)	(फ़ा. दोस्त+ई—दोस्ती)
नौकरी (३६)	(तु. नौकर+ई)
पातसाहि (८)	(फ़ा. पातशाह+ई—पातशाही)
बंदोवस्ती (१६२)	(फ़ा. बंदोवस्त+ई)
बंदोवसती (५५)	(,,)

(ख) विशेषण से बनी—

अबादानी (१६, ८४) (फ़ा. आबादान+ई) आबादानी
उमेदवारी (१८) (फ़ा. उम्मेदवार+ई)
कद्रदानी (५५) (अ. फ़ा. क़द्रदाँ+ई—कद्रदानी)
कर्जदारी (७५) (अ. फ़ा क़र्ज़दार+ई—कर्जदारी)
करजदारी (१०६) (अ. फ़ा क़र्ज़दार+ई)
कामदारी (१०४) (फ़ा. कामदार+ई)
कारकुंडी (१०५) (फ़ा. कारकुनः+ई)
खबरदारी (१८५) (अ. फ़ा. खबरदार+ई)
खराबी (१६८) (अ. फ़ा. ख़राब+ई) खराबी
खलासी (१३४) (अ. फ़ा. ख़लास+ई)
खुशी (१०६) (फ़ा. खुश+ई) खुशी
खुसी (८, ३६) („)
खूसी (१७६) („)
खुशहाली (५) (फ़ा. अ. खुशहाल+ई)
जपती (१६३) (फ़ा. जप्त+ई)
जमीदारी (८७) (फ़ा. जमीदार+ई)
जिमीदारी (३५, ३६) („)
जाहरी (५५) (अ. जाहिर+ई)
जुदाई (६१, १६१) (फ़ा. जुदा+ई) जुदाई
जेरबारी (१०६) (फ़ा. जेरबार+ई)
तयारी (६२, १३१) (अ. तैयार+ई)
दस्तगीरी (५५) (फ़ा. दस्तगीर+ई)
दुरुस्ताई (७७) (फ़ा. दुरुस्त+ई) दुरुस्ती
दौलतिखाही (३५, ३६) (अ. फ़ा. दौलतख़्वाह+ई) (फ़ा. म. को. पृ. ११८)
दौलतखवाही (६५) („)
नेकि (११८) (फ़ा. नेक+ई) नेकई
मजबुती (१७६) (अ. मज्बूत+ई) मज्बूती
मजबूदि (१२६) („)

मुखतारी (२०३) (अ. मुख़्तार+ई) मुख्तारी)
मेहरवानी (२०५) (फ़ा. मेह्रबान+ई) मेह्रबानी
राहदारी (३४) (फ़ा. राहदार+ई) राहदारी
लाचारी (५०) (लाचार+ई) लाचारी
वकीली (१५५) (अ. वकील+ई) वकीली विशेष रूप (मराठी प्रभाव)
अ. वकालत

सकती (१०) (फ़ा. सख्त+ई) सख्ती
सखती (४०) (फ़ा. सख्त+ई)
सरफराजी (१०६) (फ़ा. सरफ़राज़+ई) सरफ़राज़ी)
सरवराही (७७) (फ़ा. सरबराह+ई) सरबराही
सुस्ति (१६८) (फ़ा. सुस्त+ई) सुस्ती
हरामखोरी (५५) (अ. फ़ा. हरामखोर+ई)

"वन्दी" परसर्ग जोड़ने से बनी—

किस्तबंदी (४३) (अ. फ़ा. किस्तबंदी)
कीस्तबंदी (१२५) (,,)
नालवंदी (७२) (अ. फ़ा. नालबंद)
पेसबन्दी (५५) (फ़ा. पेशबंदी)
फौजबंदी (१५६) (अ. फ़ौज)

उपरोक्त भाव वाचक संज्ञाओं के अलावा क्रिया से बनी भाव वाचक संज्ञाएँ भी प्रस्तुत पत्रों में मिलती हैं। जैसे—

अवाई (६४) आटकाव (१४६)
घीराव (५५) घेरा (५४)
छाप (१०) छूट (३४)
जोत (७६) नमाई (१३)
वनाउ (८) वीगाड (६८)
वीघाड (१६८) मार (१३१)
मिलाप (७) मीलाप (५५)
लिखाई (५) सुधार (१०२) सोच (२०४)

क्रिया के मूल रूप में "अ", "आ", "आउछ-आव", "आप" और "आई" परसर्ग जोडकर उपरोक्त भाव वाचक संज्ञाएँ वनी हैं।

प्रस्तुत भाव वाचक संज्ञाओं का अध्ययन करने से निम्नलिखित वातें स्पष्ट होती हैं।

(१) संज्ञाएँ भिन्न भिन्न भाषा स्रोतों से प्राप्त हैं।
(२) अरवी, फारसी स्रोतों से प्राप्त संज्ञाएँ काफी मात्रा में हैं।
(३) यौगिक भाव वाचक संज्ञाओं में भिन्न भाषा के संयोग से बनी संज्ञाएँ मिलती हैं।
(४) विशेषण, संज्ञा शब्दों को "ई" प्रत्यय जोड़ने से बनी हुई भाव वाचक संज्ञाओं में अधिकांश संज्ञाएँ अरवी, फारसी की ही हैं।
(५) क्रिया के मूल रूप में परसर्ग लगाकर वनी हुई भाव वाचक संज्ञाओं का परिमाण अल्प है।

— सर्वनाम —

"(घ)" एक ही संज्ञा का उपयोग वार-वार करने से भाषा की हीनता सूचित होती है। अतः संज्ञा के वदले अन्य शब्दों का प्रयोग विकसित भाषाओं में किया जाता है और "जो विकारी शब्द पूर्वापर संवंध से किसी भी संज्ञा के वदले में आता है उसे सर्वनाम कहा जाता है।" (अ)

हिन्दी के व्याकरणकार सर्वनामों की संख्या भिन्न भिन्न वताते हैं तथा भिन्न ढंग से उनका विभाजन करते हैं। अतः इस संख्या और विभाजन के विवाद में न पड़कर कामता प्रसाद गुरु के हिन्दी व्याकरण के मत को ही आधार मानना ठीक होगा।

सर्वनामों के विभाजन में पहला भेद "पुरुष वाचक" सर्वनामों का है। पुरुष-वाचक सर्वनामों के तीन भाग किये गये हैं और उन्हें क्रमशः उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष कहा जाता है।

उत्तम पुरुष एक वचन में "मैं" और वहु वचन में "हम" मध्यम पुरुष एक वचन में "तू" और वहु वचन में "तुम" (आदर सूचक "आप" और अन्य पुरुष में प्रतिनिधिक रूप में एक वचन में "वह" और वहु वचन में "वे") आदर सूचक "आप" प्रयुक्त होते हैं।

(अ) हिन्दी व्याकरण पा. सं पन्ना ७३।

उत्तम पुरुष एक वचन सर्वनाम "मैं"

इन पत्रों में मैं और हम के प्रयोग प्राय: व्याकरण सम्मत न होकर कतिपय भिन्न हैं, जो निम्नलिखित हैं—

(क) इन पत्रों में जहाँ एक व्यक्ति के लिए मैं का प्रयोग किया गया है उनकी संख्या एक ही व्यक्ति के लिए "हम" सर्वनाम के प्रयोग की तुलना में अपेक्षाकृत बहुत कम हैं।

इसका कारण यह है कि पत्र लेखक या पत्र-प्रेषक राजशासन या अर्थव्यवस्था में कोई अधिकारी रहा है जिसे भाषा का उचित प्रयोग का ध्यान नहीं था। दूसरे, एक व्यक्ति के लिए "हम" का प्रयोग करना आज की तरह उस समय भी प्रचलित रहा होगा।

(ख) जहाँ एक व्यक्ति अपने लिए "मैं" (या उसके समान अन्य रूप) का उपयोग करता है वहाँ अधिकतर स्थानों में या तो नम्रता या दीनता का भाव लक्षित होता है।

उदा०—(१) गंगाजी तें प्यारौ नाहि सों मैं आपकू भेजू। (प. ६)
बोहतहि बरस पीछै मैंने आपकी आसा करी है। (प. ६)
म्हे इंदौर से कुचकर...थालनेर के मुकाम आया। (प. १६३)

खड़ी बोली के उत्तम पुरुष वाचक सर्वनाम "मैं" तथा "में" (अनुस्वार विरहित) का प्रयोग कुछ थोड़े ही पत्रों में मिलता हैं। अन्य अनेकानेक स्थानों में अन्य भाषाओं तथा बोलियों के उत्तम पुरुष एक वचन सर्वनाम सूचक शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

ये अन्य शब्द प्रयोग निम्नलिखित हैं।

म्हे, म्है, म्हा

म्हे—"राजस्थानी भाषा में प्रयुक्त उ. पु. बहु वचन का प्रयोग है जो यहाँ एक वचन में किया गया है।" (अ) उदा—

कुच दर कुच रावजी ओर म्हे आवा हा। (प. १६३)

म्है—"राजस्थानी भाषा का उ. पु. व. व. का रूप है जो अनुस्वार रहित लिखा गया है।" (अ) उदा—म्हाथे मोकल्या म्है आया। (प. ७७)

म्हा—राजस्थानी भाषा में उ. पु. व. व. का रूप है यहाँ एक वचन के अर्थ में प्रयुक्त है। उदा—

(अ) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. ५१.

जीं दीना में म्हा सवाई जैपुर माहाराज ईसरीसींघजी छतां आया (प. १६७)

उत्तम पुरुष बहुवचन "हम"—

इन पत्रों में उत्तम पुरुष ए. वचन प्राय: बहुवचन बोधक "हम" का ही प्रयोग किया गया है। एक व्यक्ति के लिए हम का प्रयोग अनेक पत्रों में मिलता है। "एक व्यक्ति के लिए हम का प्रयोग अधिकारी और राजा–महाराजा, संपादक और ग्रंथ-कार करते हैं। कभी कभी अभिमान अथवा क्रोध में हम का प्रयोग किया जाता है।" (ई)

आधुनिक काल में उपरोक्त स्थानों के अलावा एक व्यक्ति के लिए हम प्रयोग अशुद्ध या अयोग्य सा माना जाता है। किन्तु जिस काल के पत्रों का अध्ययन हम यहाँ कर रहे हैं उस काल में "हम" का प्रयोग एक व्यक्ति अपने लिए करे यह बात अयोग्य नहीं प्रतीत होती। इसका प्रमाण यह है कि अनेक पत्रों में "हम" का प्रयोग मिलता है किन्तु कुछ थोड़े ही पत्रों में "मैं" का या उसके समानार्थी अन्य सर्वनामों का प्रयोग है। हिन्दी व्याकरण का स्पष्टीकरण महत्व का है। "हिन्दी "मैं" और हम के प्रयोग का बहुत सा अंतर आधुनिक है...अंगरेजी में "मैं" के बदले "हम" का उपयोग करना भूल समझा जाता है। परन्तु हिन्दी मे बहुधा "मैं" के बदले "हम" आता है" (ई) मराठी में भी उत्तम पुरुष एक वचन के "मी" के अर्थ में अनेक वचन के "आम्ही" प्रयोग स्वीकृत है। (उ)

एक वचन "मैं" के स्थान पर "हम" अ. व. के प्रयोग का कारण प्राय: यह है कि ये पत्र मुख्य–प्रधान, राजा, महाराजा, महाराज–कुमार, दीवान, सरदार, "वकील" तथा शासन या अर्थ व्यवस्था के अधिकारियों के हैं। अत: पत्र लिखने वाले या प्रेषक ने अपने अधिकार और ओहदे का विचार कर "हम" या अन्य ब. व. के सर्वनामों का प्रयोग किया है।

उदा—(१) यामै म्हाने घड़ी खुसी है। (प. १८८)

(२) महाराज का भरोसा हम को सब सूरत सें है। (प. १०६)

(३) सो हम रा. श्री······वीठलराव जी के साथ सरकार की चाकरी में है। सु हम आपने लाइक की···चाकरी करता है। (प. ४१)

(इ) हिन्दी व्याकरण (पृ .७६) (ई) हिन्दी व्याकरण (पृ .७६.७७)

(उ) शास्त्रीय मराठी व्याकरण (पृ. १०२)।

(४) पंडित राव विश्वासराव को महाराज कुमार वखतावरसिंग का पत्र "हम लाइक सिखांपनु हुकमु होइ।" (प. ७६)
"हम हमेस सेवा चाकरी जानत है।" (")

कभी कभी अभिमान में अथवा क्रोध में जाकर "हम" का प्रयोग किया गया है। उदा—

"अणी बात से पंडीत प्रधान बौहत खुमी होंगे और "हम" भी समाधान पावेंगे। (प. १५६)
हम भी श्री दादा साहिब की मुलाजमत कर सीतावही आवते हैं।"
(प. १६०)

"स्त्री अपने लिए हम का प्रयोग वहुधा कम करती है।" (ऊ)

इन पत्रों में स्त्रियों के लिखे हुए कुछ थोड़े ही पत्र मिलते है। ये पत्र प्रमुख रूप से इंदौर की रानी अहिल्याबाई होळकर के है (ए) और एक पत्र मंढ़लेसर (मढ़लेश्वर) से शास्त्री बावा की पत्नी के द्वारा लिखा गया है। अहिल्या बाई के पत्रों में "हम" का प्रयोग अप्राप्त हैं। उत्तम पुरुष वाचक सर्वनाम का प्रयोग म्हयां का एक पत्र में मिलता है। उदा—

"म्हयां की सळह के सामल छा" (प. २०२)

किंतु रामाबाई के पत्र में सर्वत्र "हम" तथा उसीको विभिन्न विभक्तियों से युक्त हम का प्रयोग किया गया है।

उदा०—

"तुमारी सळा के समाचार पावे तो हम कु आराम होवे (प. २०)
"हमारे भाई गोपाल पंढत इहा आये थे" (प. २०)
"रु०. (रुपये) चार सव हमने दीये थे।" (प. २०)

अत: ऐसा लगता है कि स्त्रियाँ भी अपने लिए—एक व्यक्ति के लिए "हम" या उ. पु. वहु वचन के सर्वनामों का प्रयोग करती थीं। यहाँ भी हम का प्रयोग अभिमान सूचक ही कहा जा सकता है।

(प. १६०) पत्र क्. १६० (राव तुकोजी होलर का जयपूर के राजा को पत्र)
(ऊ) हिन्दी व्याकरण पृ० ७७
(ए) पत्र क्. १८५, १६२, १५५, २०२।

उत्तम पुरुष अ. ब. में हम के प्रयोग के अतिरिक्त दूसरे विकृत रूप भी प्राप्त होते हैं जैसे—

हाम,, हंघ

उदा०—

"श्रीजी की आग्य लेके "हाम" लस्कर मी पौहचे" (प. १६८)

"हंम भी ... सीताव ही आवते हे।" (प. १६०)

ये उच्चरित विकृत ध्वनि के लिपिबद्ध रूप हैं।

उत्तम पुरुष वाचक सर्वनामों के कारकीय रूप :

इन रूपों में खड़ी बोली में प्राप्त लगभग सभी रूप हमें मिलते हैं। इन रूपों के साथ अन्य भाषाओं तथा बोलिओं के रूप भी उपयोग में लाये गये हैं। अध्ययन करते समय खड़ी बोली के रूप मूल प्रमाण में रखे गये हैं और शेष भाषाओं तथा बोलियों के रूप "अन्य रूप" के अन्तर्गत लिये गये हैं।

कारकीय रूप

	उत्तम पु. ए. व.	ब. व.
कर्ताकारक	मैं	हम
भूतकाल वाचक मैं सहित	मैंने	हमने
अन्य रूप	अपुन।	अपुन, हमने।

कर्ताकारक में (मैं) का प्रयोग कुछ थोड़े ही स्थानों में हुआ है। भूतकाल वाचक में प्रत्यय जोड़कर किया गया "मैं" का प्रयोग और भी थोड़े स्थानों में मिलता है। एकार्ध स्थान में वह प्राप्त है। उदा —

"बोहतहि बरस पीछे मैंने आपकी आसा करी है।" (प. ६) इससे अपेक्षा कृत अधिक स्थानों में "हमने" यह ब. व. का रूप मिलता है। उदा—

"बलराम हमने तुम्हारे भरोसे भेज्या है।" (प. ३)

"तब हमने खबर पाइ।" (प. ७)

अन्य रूप "अपुन" है। यह रूप या तो एक व्यक्ति के लिए उपयोप में लाया गय है या अनेक के लिए।

"अपुन" यह रूह निज वाचक सर्वनाम के समान दिखाई देता है किंतु वह कर्ताकारक भूतकाल वाचक "मैंने" या "हमने" के अर्थ में प्रयुक्त है। उदा—

राजश्री भोसले जानोजी के पास " अपुन " ए ही मतलब पाई । (प. ४)

यह हिन्दी की बुन्देली बोली का प्रयोग है । (अ) जो उत्तम पुरुष के लिए प्रयुक्त है ।

कहीं " हमने " के स्थान में " हमनै " का प्रयोग मिलता है । उदा०— जेद हमनै इस मनसुबा की पेसबंदी को ... कुच किया । " (प. ५६) इसी पत्र में " हमने " और " हमनै " दोनों का प्रयोग मिलता है ।

यह ब्रजभाषा में मिलने वाला प्रयोग है । (आ)

उत्तम पुरुष सर्वनाम	ए. व.	ब. व.
कर्म तथा संप्रदान कारक		
मूल रूप	अप्राप्त	हम, हमको ।
अन्य रूप	मुजकु, मोको (म्हाने)	हमकु, हमकु, हमकु हामकु, हमकों, हमको हमें, हमैं (म्हाने) (हमहे, हमहै)

उत्तम पुरुष कर्मकारक में होनेवाले "मैं" सर्वनाम के खड़ी बोली के मूलरूप " मुझे " "मुझको" ये रूप इन पत्रों में अप्राप्त हैं ।

(१) अन्य रूपों में "मुजकु" रूप मिलता है । उदा—

"सर्फराज नामा मुजकु आया की ... । (प. १८)

इस रूप में हमें खड़ी बोली के (मुझ) के स्थान में "ज" का का प्रयोग मिलता है । यह दक्खिनी हिन्दी में मिलने वाला रूप है । (इ)

(२) दूसरा एक रूप " मोको" है । उदा०—

हजूरने "मोको" इजत वड़ा दीयै । (प. १०)

(अ) बुन्देली का भा. शा. अध्ययन पृ. ९६

(आ) ब्रजभाषा पृ. ८७

(इ) दक्खिनी हिन्दी पृ. ४५, ४६

"मोको" रूप राजस्थानी [ई] व्रजभाषा तथा कनौजी [उ] में मिलता है।

(३) तीसरा एक रूप "म्हाने" है। उदा०—

यामे म्हाने घणी खुसी है। (प. ११८)

"म्हाने" राजस्थानी भाषा में [ऊ] ब. व. का रूप है किन्तु यहाँ एक वचन के अर्थ में प्रयुक्त है।

उत्तम पुरुष ब. व. के कर्म-संप्रदान के खड़ी बोली के रूप "हमें" और "हमको" – ये दोनों मूल रूप हमें (निर अनुनासिक) और "हमको" इन पत्रों में प्राप्त हैं।

एक पत्र में दोनों रूप प्रयुक्त किये गये हैं। उदा०

"ईहाते हमें निकसतन जोखे है।" (प. ५४)

"महाराज के चरनन को सहाई हमको है।" (प. ५४)

अन्य रूप : हमैं, हमै हमको, हमकौ, हमकुं

हमकु, हांमकुं, म्हाने, हमहे, हमहै।

अनुनासिकता के लिए कोई विशिष्ट नियम नहीं है। कहीं अनुनासिकता है और कहीं नहीं। अतः अनुनासिकता के आधार पर वर्गीकरण नहीं किया जा सकता।

ह्रस्व, दीर्घ के लिए भी कोई विशिष्ट नियम नहीं है।

" और जगह तौ ... साहिब ने हमें ... बकसी है।" (प. ५३)

हमकौ रूप अनेक स्थानों में मिलता है। उदा—

"हमकौं तो अब कछु नहीं सूझै।" (प. ५७)

"आपु साहिब हमकौ नालस करते के तुमने जागा की हकीकति हमकौ जाहर न करी।" (प. ६५)

"सो हमें अस्थान सिर बैठारै ...।" (पत्र क्र. ८)

(ई) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. ५१

(उ) हिन्दी ग्रामर "केलाग" टे. ८ पृ० १६६

(उ) बुन्देली का भा. शा. अध्ययन पृ. ६४, ८४

(ऊ) राजस्थानी भापा और सा. पृ. ५१

ये रूप भी व्रज भाषा के हैं। (उ) (ऊ)

" तुमारी सब यसला के समाचा पावै तो हमकु आराम होवै।" (प. २०)

" हमकु येत ताड पीछोडी बतावेत है।" (प. २०)

कु परसर्ग जोडने से बने ये रूप व्रजभाषा (ए) तथा दक्खिनी हिन्दी में (ऐ) मिलने वाले रूप हैं।

"आलीजाहा बाहादर के कागद हांमकु आये हैं" (प. २०७)

"हींदुस्थान के कारभार की मुषत्यारी हांमकु लीखी आई है।" (प. २०७)

इस रूप में ह के अनन्तर आने वाला (ह् + अ > आ + म + कु) अ स्वर दीर्घ रूप में उच्चारण के कारण स्वरागम है।

"हमहे" और "हमहै" ये रूप विशेष अध्ययनीय हैं।

"हमहे" तो मेहनत करते दो महीना हुवे।" (प. ५६)

"हमहै" सुवेदार की लिखी आई।" (प. ५६)

ये रूप क्रमशः "हम्हे" और हम्है" के स्थान में आये हुए हैं। (ह् + अ + म् + अहे) इनमें म के अनन्तर "अ" स्वर का आगम है। और अन्तिम महाप्राण अनुचरित है। महाप्राण "ह" उच्चारण न करने की प्रवृत्ति कुछ भाषाओं में लक्षित होती है। यह कनौजी, अवधी और दक्खिनी हिन्दी (क) में मिलने वाला प्रयोग है।

उत्तम पुरुष सर्वनाम	ए. व.	ब. व.

करण और अपादान कारक

मूल रूप	अप्राप्त	हमसे
अन्य रूप	,,	हमसौं, हमसौ

(उ) के लाग-हिन्दी ग्रामर चार्ट ८ पृ. १९६।

(ऊ) व्रजभाषा पृ. ६३-६४।

(ए) व्रजभाषा पृ. ८५।

(ऐ) दक्खिनी का पद्य और गद्य पृ. २६७, ३९४।

(क) दक्खिनी हिन्दी पृ. ४६।

खड़ी बोली में प्राप्त उत्तम पुरुष ए. व. का करण तथा अपादान कारक का रूप "मुझसे" इन पत्रों में अप्राप्त है। इससे यह बात लक्षित होती है कि यह रूप "मुझसे" पत्र साहित्य में अपेक्षा कृत आधुनिक है। इसके स्थान में कोई अन्य रूप भी प्राप्त नही है।

व. व. में होने वाला "हमसे" रूप एक पत्र में एक ही स्थान पर मिलता है।

उदा०—" ... अर हमसे लड़ने को तयार हुवा।" (प. २६)

उ. पु. ब. व. में "हमसो" "हमसौ" ये रूप अनेक पत्रों में मिलते हैं।

उदा ०— "कोउ कामदार हमसौ आडो न होइ।" (प. ७)

"हमसौ वा उन आदमीयन वरौघाई घाटडागमे वडौ कजीया म्यो।" (प. ७)

"ठहराउ माफिक हमसौं पत्राइत कराइ लेइ।" (प. ८)

अनुनासिकता संदिग्ध होने से ये दोनों रूप एक ही हैं जो ब्रजभापा में प्राप्त हैं। (आ) (इ) (ई)

उत्तम पुरुष संबंध कारक

	ए. व.	ब. व
मूल रूप	मेरा—मेरे, मेरी।	हमारा, हमारी, हमारे।
अन्य रूप	मेर।	

ए. व.			ब. व.		
म्हाका,	म्हाक,	म्हाकी	म्हकें,	म्हाकें,	म्हाकै
म्हाकौ	म्ह्या की		म्हारै,		
हमारी,	हमारि,	हमारे,	हमारो,	हमारौ,	हमारै,

इन पत्रों में खड़ी बोली के ए. व. के मेरा—मेरे—मेरी रूप भी मिलते हैं। ब. व. के "हमारा", "हमारे", हमारी या हमारि रूप अनेक पत्रों में मिलते हैं।

(आ) हिन्दी ग्रामर के लाग ८ पृ. १६६

(इ) ब्रजभापा पृ. ८५—८८

(ई) ब्रजभापा और खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन पृ. १६०।

उदा०—

"जो कुछ दुखसे मेरा हवाल होइया है वह कहाँ तक लिखौ।" (प. ३)

"एक खतु मेरी सिपरिस को रूपरामकौ लिखियैगो।" (प. ६४)

"सीष्टाचार का सरंजाम मेरे पास है।" (प. १८६)

"जबावसाल मेरे हाथ से लीजौ।" (प. १८६)

"हमारा घर फसाया।" (प. १६६)

"हमारा नीभाव होता न्हीं।" (प. २०)

"हमारि गौर राखणी जोग्य है।" (प. १६६)

"हमारे भाई गोपाल पंढत ईहा आये थे।" (प. २०)

(१) अन्य रूपों में एक रूप "मेर" मिलता है। उदा०—

मेरे हायसें जवावसाल लेने का हाय।" (प. १८६)

(२) अन्य रूपों में जिसके मूल में "म्हा" है जैसे—म्हाका, म्हाके एक वचन या वहु वचन के अर्थ में प्रयुक्त हैं। राजस्थानी भाषा में ए. व. में "म्हा" अननुनासिक और ब. व- में "म्हा" अनुस्वार सहित प्रयुक्त होता है। (क) यहाँ पर भी अनुनासिकता संदिग्ध होने से दोनों रूप एक ही माने जा सकते हैं। अतः इन रूपों को दोनों वचनों में स्वीकृत किया गया है।

(३) इन रूपों में संबंध के का, के, की प्रत्यय "म्हा" में ही जोड़े गये हैं। "ह्म" में रा—रे—री प्रत्यय ही जोड़े गये हैं।

(४) "म्हा" में कहीं रा, रे प्रत्यय ही जोड़े गये मिलते हैं।

उदा०—"जोदपुर ने अठासु "म्हारा" अर व्यासजी का कागज भेज्यां देसौ।" (प. १६२)

"म्हारे पास...कोई तरदुद करीने दीही नहीं।" (प. ७७)

एक स्थान में "म्ह्यां की" का प्रयोग मिलता है। उदा०—

"म्ह्यां की सलाह के सामलछा" (प. १०२) इस में तीन व्यंजनों का...म् + ह् + य् का संयोग मिलता है।

(५) इन रूपों में "महा" में प्रत्यय जोड़कर बने रूप राजस्थानी के हैं।(क)

(६) हमारो, हमारी, ये रूप व्रज तथा कनौजी के हैं। (ग) (घ)

(क) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. ५१ (घ) व्रजभाषा पृ. ६४

(ग) हिन्दी ग्रामर "केलाग" चा. ८ पृ. १६६

(७) कुछ थोड़े पत्रों में खड़ी बोली ना आकागन्त रूप "हमारा" भी मिलता है । अन्यत्र हमारो या हमारौ का प्रयोग है ।

(८) एक पत्र में "हमारा" और "हमारो" दोनों प्रयोग मिला है ।

उदा०—"हमारो तो भलो खावदो के भले से है ।" (प. ५६)

"हमारा तो वड़ा जोर सरकार की चाकरी करने का है ।" (प. ५६)

एक स्थान में "हमरी" रूप मिलता है । उदा०—

"हमरी एक राह बाँध दीजौ । (प. ८०)

यह रूप लिखावट की असावधानी माननी चाहिये क्योंकि उसी पत्र में अन्य दो स्थानों में हमारी का प्रयोग मिलता है ।

"मैं" और "हम" इन सर्वनामों के संबंध–कारक में मिलने वाले रूप सार्वनामिक विशेषण ही हैं ।

उत्तम पुरुष अधिकरण कारक

	ए. व.	व. व.
मूल रूप	अप्राप्त	हम पर, हम पै ।
अन्य रूप	मेर उपर, मेरे, ऊपर, हममै.	

प्रस्तुत पत्रों में उत्तम पुरुष अधिकरण कारक में एक वचन के मुझमें, मुझार ये रूप अप्राप्त हैं । अविकरण कारक का अर्थ बताने के लिए एक वचन में उपर, ऊपर इस संवंव सूचक परसर्ग का प्राय: प्रयोग किया गया है । इन शब्दों के पूर्ववर्ती सर्वनाम का रूप मेर, मेरे है । उदा०—

"तुरत मेर उपर या सकती मही ।" (प. ३)

"यो वातका ईतवार वोहराजी का मेर उपर है ।" (प. १८६)

वहु वचन में "हम पर" और "हमपै" ये रूप मिलते हैं ।

उदा०— "हमपर कीरपा रखते हो ।" (प. ६८)

"हमरी एक राह वांधि दीजौ तौ हमपै जोमीदारो होईगी ।" (प. ८०)

इन रूपों में मिलने वाला "हम पर" रूप खड़ी बोली में मिलता हैं और दूसरा रूप हम पै व्रजमाषा का प्रयोग (ङ) (च) है जो कुछ थोड़े पत्रों मिलता है।

गद्य में अधिकरण कारक में पै का प्रयोग व्रजभाषा के प्रभाव का द्योतक है।

वहु वचन में भी "ऊपर" इस परसर्ग का प्रयोग किया गया है। "ऊपर" का प्रयोग करते समय उसके पूर्व "हम" का संबंध कारक का रूप "हमारे" प्रयुक्त किया गया है। उदा०—

"अरु जु हमारे ऊपर सकती भई।" (प. १०)
"जैसी वे हमारे ऊपर कृपा करत है।" (प. १०)

सर्वनाम और उनके कारकीय रूप

मूल रूप के अन्तर्गत खड़ी वोली हिन्दी के रूप लिये गये हैं और अन्य रूपों के अन्तर्गत अन्य माषाएँ और वोलियों के रूप स्वीकृत किये हैं।

सर्वनाम उत्तम पुरुष कारकीय रूप

	एक वचन	बहु वचन
मूल रूप	मैं	हम
अन्य रूप	म्हा, म्हे, म्है	हामा, हंम
भूतकाल कर्ता कारक मूल रूप	मैंने	हमने
अन्य रूप	अपुन	अपुन, हमने,
कर्म तथा संप्रदान मू. रूप	अप्राप्त	हमे, हमको
अ. रूप	मुजकुं, मोको म्हाने	हमैं, हमें, हमकुं हमकु, हमको, हमकौ, हांमकु, हमहे, हमहै, म्हाने

(ङ) "केलाग" हिंदी ग्रामर पृ. १९६ (चा. ८)
(च) व्रजभाषा पृ. ८७।

	एक वचन	वहु वचन
कारण और अपादान मूल रूप	अप्राप्त	हमसे
अ. रूप	,,	हम-ौं, हमसौ
संबंध मूल रूप	मेरा—मेरे, मेरी	हमारा-हमारे,हमारी
अन्य रूप	मेर	हमरि, हमारि, हमारे, हमारो, हमारौ, हामरे, म्हाका, म्हाकी, म्हाकैं, म्हाके, म्हाकै, म्हाकौ, म्हारे, म्ह्या की
अधिकरण मूल रूप	अप्राप्त	हमपर, हमपै
अ. रूप	मेर उपर मेर ऊपर	हमपै

निष्कर्ष

(क) उत्तम पुरुष वाचक सर्वनाम में (मैं) का प्रयोग बहुत ही कम मात्रा में मिलता है।

(ख) जहाँ "मैं" का प्रयोग किया गया है वहाँ या तो नम्रता या दीनता के भाव लक्षित होते हैं।

(ग) "हम" उ. पु. ब. व. सर्वनाम का प्रयोग एक व्यक्ति के लिए अनेक पत्रों में मिलता है। प्रस्तुत पत्रों के काल में यह प्रयोग अयोग्य नहीं माना जाता। इनका एक प्रमुख कारण यह भी है कि ये पत्र अधिकारी व्यक्ति के द्वारा दूसरे अधिकारी व्यक्ति को लिखे गये हैं। कभी अभिमान या क्रोध में हम का प्रयोग एक व्यक्ति के लिए किया गया है। स्त्री पत्र—लेखकों के द्वारा अपने लिए "हम" का प्रयोग किया गया है।

(घ) उत्तम पुरुष वाचक मैं तथा हम के कर्ता कारक भूतकाल की क्रियाओं के साथ मैंने, "हमने" रूप मिलते हैं।

(ङ) उ. पु. कर्म कारक ए. व. के रूप "मुझे, मुझको" पत्रों में अप्राप्त हैं।
(च) दक्खिनी हिन्दी में मिलने वाला "मुजकु" रूप इनमें मिलता है।
(छ) करण तथा अपादान कारक में उ. पु. ए. व. का मिलने वाला रूप "मुझसे" पत्रों में अप्राप्त है। वह रूप अपेक्षाकृत आधुनिक होगा। ब. व. में हमसौ यह ब्रजभाषा का रूप मिलता है।
(ज) प्रस्तुत पत्रों में खड़ी बोली में मिलने वाले उ. पु. के सम्बन्ध कारक के आकारान्त रूप "मेरा" "हमारा" मिलते हैं।
(झ) उत्तम पुरुष वाचक सर्वनामों में, ब्रजभाषा, राजस्थानी, अवधी, बुन्देली आदि भाषाओं के रूप मिलते हैं।
(ञ) अधिकरण कारक का अर्थ प्रकट करने के लिए ए. व. में उपर, ऊपर का प्रयोग किया गया है। ब. व. में गद्य में " पै " का प्रयोग किया जाता था। जो कि ब्रजभाषा की विशेषता है।

सर्वनाम मध्यम पुरुष

मध्यम पुरुष में ए. व. "तू" और ब. व. में "तुम" तथा (आदर सूचक) "आप" का प्रयोग किया जाता है।

"एक वचन "तू" का प्रयोग एक ही व्यक्ति के लिए निम्नलिखित स्थानों में उचित माना जाता है। (१) देवता के लिए (२) निकटता अथवा प्रेम में (३) अवस्था और अधिकार में अपने से छोटे के लिए।" (अ)

दो व्यक्ति साधारणतः परस्पर व्यवहार में "तू" सर्वनाम का प्रयोग नहीं करते क्योंकि "तिरस्कार अथवा क्रोध में" तू का प्रयोग करते हैं (आ). अतः "तू" सर्वनाम का प्रयोग किसी व्यक्ति के लिये अनुचित माना जाता है। परस्पर पत्र-व्यवहार में भी एक दूसरे के लिए "तू" का प्रयोग नहीं करते।

" तू शब्द से निरादर या हलका पन प्रकट होता है, इसलिए हिन्दी में बहुधा एक व्यक्ति के लिए भी "तुम" का प्रयोग करते हैं।" (इ)

(अ) हिन्दी व्याकरण पृ. ७८।
(आ) हिन्दी व्याकरण पृ. ७८।
(इ) हिन्दी व्याकरण पृ. ७७।

मध्यम पुरुष ए. व. में हिन्दी में "तू" का प्रयोग किया जाता है। मराठी और गुजराती में उसके स्थान में "तूं" (सानुनासिक) और "तु" (अनुनासिक ह्रस्व) का प्रयोग होता है।

"तू" के प्रयोग के सम्बन्ध में होने वाली उपरोक्त हिन्दी की धारणा अन्य भाषाओं में भी उतनी ही सत्य है।

मराठी में "तूं" सर्वनाम द्वितीय पुरुष का है। एक व्यक्ति के लिए उसका प्रयोग कहाँ किया जाता है उसके बारे में व्याकरणकारों का कथन उल्लेखनीय है।

"जेव्हां दुसऱ्याचा दर्जा वक्त्याचे पेक्षा फारच हलका असतो त्या वेळीं द्वितीय पुरुष वाचकाचा एक वचनी प्रयोग होऊं शकतो।" (इ)

"नीच स्थितींतील लोकांशीं बोलताना द्वि. पु. ए. व. अवश्य येते" (इ)

"अति परिचित माणसे किंवा जीवश्च कंठश्च स्नेही परस्परां संबंधाने कधी कधी द्वि. पु. ए व. वापरितात" (ई)

"मध्यम स्थतींतील कुटुंबात, मुले आईशी बोलताना द्वि. पु. ए. वचनाचाच उपयोग करतात। (ई)

यही बात गुजराती भाषा में भी लक्षित होती है।

"तुं" का प्रयोग निम्न स्थानों में किया जाता छे।

(अ) अधिकार में अपने से कम या निम्नस्तर के व्यक्ति के लिये जैसे।

"तुं कोनो नोकर छे।" (उ)

(आ) निकटता या हीनता के अर्थ में संबोधित करते समय।

जैसे—"माट, तारा बोलथी हुं मय पामतो नथो।"

(इ) शास्त्रीय मराठी व्यकरण पृ. १०२

(ई) शास्त्रीय मराठी व्याकरण पृ. १०२

(ई) शास्त्रीय मराठी व्याकरण पृ. १०२

(उ) हिन्टस् ऑन दि स्टडी ऑफ गुजराती पृ. ४०।

म्हारा जेव। में घणा जोया छे।"

इनमें "तु" का कारक सहित रूप प्रयुक्त है।

इन पत्रों में से सिर्फ एक दो पत्रों में "तू" सर्वनाम का प्रयोग किया गया है। उदा०—

(क) "और नाइक सी कही कै ... तू या राहको जात है।" (प. ७)

(ख) "श्री बाबासाहेब जी न फुरमाया की ...
तु मढलेसम मो बेठ।" (प. १८)

उदाहरण (क) में निरादर के अर्थ में "तू" का प्रयोग किया गया है। उदा० (ख) में अधीनता के अर्थ में।

दोनों स्थानों में "तू" या "तु" का प्रयोग प्रत्यक्ष संभाषण में नहीं किया गया है। वास्तव में वह पूर्वोक्त बात के पुनर्कथन (Reported speech.) में किया है यह उल्लेखनीय है।

उदाहरण (ख) मे जिस व्यक्ति के लिए "तु" का प्रयोग किया है उसी व्यक्ति के लिए अन्यत्र "तुम" का ही प्रयोग किया गया है। उदा०—

तु मढलेसम (र) मो बैठ महिने १ मो तुमकु बुलाय भेजते है।" (प. १८)

अतः मध्यम पुरुष एक वचन सर्वनाम "तू" का प्रयोग उस समय भी वर्ज्य सा माना जाता था।

मध्यम पुरुष बहु वचन "तुम"

यद्यपि "तुम" बहुवचनात्मक शब्द है फिर भी उसका प्रयोग एक ही व्यक्ति के लिए किया जाता है। "यद्यपि हम के समान "तुम" बहु वचन है तथापि शिष्टाचार के अनुरोध से इसका प्रयोग एक ही मनुष्य से बोलने में होता है।" (ऊ)
यह बात भी अन्य प्रांतीय भाषाओं के—मराठी, गुजराती – संबंध में लागू है। उदा०—

"एकाच गृहस्थाशी बोलत असतांना सुद्धा शिष्टाचारास अनुसरून तुम्ही याचा प्रयोग होता।" (ए)

(ऊ) हिन्दी व्याकरण पृ. ७८।

(ए) शास्त्रीय मराठी व्याकरण पृ. १०३।

"गुजराती में मध्यम पुरुष एक वचन में "तमे" का प्रयोग किया जाता है। "तु" का नहीं। आदर अथवा श्रेष्ठता के विचार के बिना ही "तु" के स्थान में "तमे" का प्रयोग किया जाता है।" (ऐ) मध्यम पुरुष ब. व. "तुम" सर्वनाम का प्रयोग अनेक पत्रों में मिलता है।

प्रस्तुत पत्रों में "तुम" के स्थान में प्रयुक्त अन्य रूप "तमे" है। उदा—तमे राजके पास ये मीलवा वास्ते आवजो। (प. ७७)

यह गुजराती भाषा का प्रयोग है। (ओ)

मध्यम पुरुष वाचक सर्वनाम कर्ताकारक

	ए. व.	ब. व.
भूतकाल कर्ता कारक मूल रूप	(तुझे) अप्राप्त	तुमने
अन्य रूप	,,	तुमैने

मध्यम पुरुष ए. व. में होने वाला "तूने" यह रूप इन पत्रों में अप्राप्त है।

ब. वचन में होने वाला "तुमने" रूप कुछ पत्रों में मिलता है। उदा०—

"तुमने मसारनिले कु ले जाके मारा।" (प. १४६)

"जैसा चाये तैसा तुमने क–या।" (प. ३)

"तुमने" के स्थान में ऐकारान्त "तुमनै" का प्रयोग भी कहीं मिलता है। उदा० "सरकार के चाकर है सु तुमनै राषे सु अछीकरी।" (प. ६६)

यह रूप ब्रजभाषा में मिलता है।(क)

कर्ता कारक में "ने" का अनावश्यक प्रयोग भी कहीं मिलता है। उदा०—"तुमने लळास करणा।" (प. २०)

"कपड़ा आधे परमाण तुमने लेणा।" (प. २०)

मध्यम पुरुष वाचक सर्वनाम
कर्म-सम्प्रदान कारक :

	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	(तुझे, तुझको) अप्राप्त	(तुम्हें, तुमको) अप्राप्त
अन्य रूप	,,	तुंमकुं, तुमकूं, तुमकों, तुमको।

(ऐ) हिन्ट्स आन दि स्टडी आव गुजराती पृ. ४०।

(ओ) गुजराती भाषानु बृहद व्याकरण पृ. १६४।

(क) ब्रजभाषा पृ. ८७।

कर्म तथा सम्प्रदान कारक एक वचन के रूप "तुझे", "तुझको" इन पत्रों में अप्राप्त हैं। उसी प्रकार ब. व. के रूप 'तुम्हें" और "तुमको" भी नहीं मिलते।

एक वचन में कोई अन्य रूप भी नहीं मिलता किंतु ब. व. में कुछ अन्य रूप मिलते हैं।

तुमकों, तुमकौ :

(क) "मतलब सब तुमकों मालुम है।" (प. ३)

(ख) "तुमकौ विजैपुर में काठ मै दिवा है।" (प. ७)

पत्रों में मिलने वाले ये रूप ब्रजभाषा के हैं। (ख)

तुमकुं, तुमकूं : अनुनासिकता और ह्रस्व दीर्घ की संदिग्धता को मानने पर ये रूप एक से माने जा सकते हैं।

(ग) "मेरी तो तुमकुं सर्व हैय।" (प. १८)

(घ) "महाराज दावा तुमकूं राखना तो······।" (प. १६६)

कुं, कूं से युक्त ये रूप ब्रजभाषा(ग) और दक्खिनी हिन्दी(घ) में मिलते हैं।

बलयुक्त प्रयोग तुमहीकुं मिलता है। उदा०—

"मेरी तो तुंमकुं सर्म हैय, तुंमहीकुं लाज।" (प. १८)

इसमें बलयुक्त प्रयोग के लिए "ही" का प्रयोग किया गया है। इसमें विशेषता यह है कि ही का प्रयोग सर्वनाम का रूप तुम और कारक प्रत्यय "कुं" के बीच किया गया है।

मध्यम पुरुष सर्वनाम

करण और अपादान कारक :

	ए. व	ब. व.
मूल रूप	(तुझसे) अप्राप्त	(तुमसे) अप्राप्त
अन्य रूप	"	तुमसौ.

करण तथा अपादान कारक में एक व. का "तुझसे" तथा ब. व. का "तुमसे" ये दोनों रूप प्रस्तुत पत्रों में नहीं मिलते हैं। ए. व. में कोई अन्य रूप भी नहीं मिलता। ब. व. में "तुमसौ" यह रूप मिलता है। उदा०—

"रुद्रसींघ के कुवर तुमसौ ... कजीया करै ... तो झूटै।" (प. ६१)

(ख) ब्रजभाषा पृ. ८६। (ग) ब्रजभाषा पृ. ८६।

(घ) दक्खिनी का पद्य और गद्य पृ. २३३, ४०६।

यह रूप व्रजभाषा (च) (छ) का माना जा सकता है।

संबन्ध–कारक

		ए. व.	ब. व.
मूल रूप	(तेरा–रे–री)	अप्राप्त	तुम्हारा–तुम्हारे–तुम्हारी तुमारा, तुमारे, तुमारी
अन्य रूप		अप्राप्त	तमारा तुम्हारो, तुमारे, तुम्हारे, थाका, थाकी

मध्यम पुरुष सर्वनाम के संबंध--कारक में होने वाले एक वचन के रूप तेरा, तेरे, तेरी इन पत्रों में अप्राप्त हैं। उनके स्थान में अन्य रूप भी नहीं मिलते।

कुछ पत्रों में बहुवचन के तुम्हारा–तुम्हारे–तुम्हारी ये रूप मिलते हैं।

उदा०—(क) "जो तुम्हारा जाना ईन जागह पर हो"। (प. ३८)
(ख) "तुम्हारे समाचार भले चाहिजै।" (प. २)
(ग) "तुम्हारी रजावदी करिबे को है।" (प. ६)
(घ) "तुम्हारी जागीर सब सरकार तै बंध करी है।" (प. १५)

कुछ पत्रों में महाप्राण रहित "तुमारा, तुमारे, तुमारी" रूप मिलते हैं।

उदा०—(च) "खत तुमारा आया।" (प. ३)
(छ) "बलराम हमने तुमारे भरोसे भेज्या है।" (प. ३)
(ज) "तुमारी खब(र) य(ख) सालस के समाचा(र) पावै।" (प. २०)

इन सभी रूपों में आकारान्त रूप "तुम्हारा" और "तुमारा" छोड़कर शेष रूप व्रजभाषा के हैं। (ज)

कहीं "तुम्हारो" यह रूप भी मिलता है। उदा०—
"तुम्हारो भरोसो याहि भांति राख्यो है।" (प. ६)
यह व्रजभाषा में मिलने वाला रूप हैं। (झ)

(च) व्रजभाषा पृ. ८८।
(छ) हिन्दी ग्रामर "केलाग" पृ. १९६।
(ज) व्रजभाषा पृ. ९७।
(झ) हिन्दी ग्रामर केलाग चार्ट ९ पृ. १९६।

एक स्थान पर "तुम्हारे" के स्थान पर "तुह्मारे" लिखा गया है। यह गलत प्रयोग लक्षित होता है। उदा०—

"तुह्मारे परगननो अमल।" (प. ३६)

एक स्थान में त्तुमारे शब्द का प्रयोग है। उदा०—

"त्तुमारे जीवन माफक खडणी कैसे करेंगे।" (प. ३३)

यह 'द्वित्व व्यंजन' का उदाहरण है प्रथम अक्षर ही द्वित्व व्यंजन है। शब्द के प्रारम्भ में द्वित्व-व्यंजन के उदाहरण अपवाद रूप में मिलते हैं। अतः यह अशुद्ध लेखन ही मानना चाहिए। अन्य रूपों में प्राप्त "तमारा" रूप उल्लेखनीय हैं।

"तमारा सदा भला चाहीजै।" (प. ७७)

यह "तमारा" रूप गुजराती का (षष्ठयन्त) संबन्ध कारक का रूप है। (ट) यह रूप निमाड़ी भाषा में भी मिलता है।(ठ)

इनके अलावा संबंध कारक ब. व. में दो रूप मिलते हैं "थाका" और "थाकी" उदा०—

"थाका मुल(क) आदमि ... रुक्या होसी सो छुड़ाई देशा।" (प. ११७)

"थाकी त्रफ रुकानो उपर ज्मीयत जलदी न पौहची होगी।" (प. १४६)

ये रूप राजस्थानी में मिलते हैं। (ड)

"तुम"सर्वनाम के संबन्ध कारक में मिलने वाले रूप सार्वनामिक विशेषण हैं।

अधिकरण कारक

	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	(तुझमें, तुझ पर) अप्राप्त	तुमपै
अन्य रूप	,,	तुम्हारे पर

अधिकरण कारक ए. व. के रूप "तुझमें", "तुझ पर" इन पत्रों में अप्राप्त हैं।

ब. व. के रूप "तुममें, तुम पर" भी नहीं मिलते। कहीं "तुमपै" यह रूप मिलता हैं।

(ट) गुजराती भाषा नु बृहद् व्याकरण पृ. १६६।

(ठ) निमाड़ी और उसका साहित्य पृ. १६४।

(ड) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. ५२।

उदा०—

"सरकारते वरात तुमपै करी है।" (प. ८५) "पै" का प्रयोग गद्य में किया गया है।

एक स्थान में "तुम्हारे पर" यह अधिकरण का रूप मिलता है। उदा०—

"तुम्हारे पर श्री. जमादार सेख ईमाम की वरात करी है।" (प. ८६)

इसमें "पर" इस कारकीय प्रत्यय का प्रयोग "ऊपर" के समान किया गया है। अतः "पर" के पूर्व संबंध कारक का रूप "तुम्हारे" उपयोग में लाया गया है।

सर्वनाम "तू" कारकीय रूप

	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	तू	तुम
अन्य रूप	तु	तमे
भूतकाल कर्ताकारक मूल रूप	(तूने) अप्राप्त	तुमने
अन्य रूप	,,	तुमने
कर्म और संप्रदान मूल रूप	(तुझे, तुझको) अप्राप्त	(तुम्हें तुमको) अप्राप्त
अन्य रूप	,,	तुमकु तुमकूं, तुमको, तुमकौ
करण और अपादान मूल रूप	(तुझसे) अप्राप्त	(तुमसे) अप्राप्त
अन्य रूप	,,	तुमसो
संबंध—मूल रूप	अप्राप्त	तुम्हारा-तुम्हारे-तुम्हारी तुमारा - तुमारे - तुमारी - तमारा तुम्हारो, तुमारे, तुह्मारे
	ए. व.	व. व
अधिकरण मूल रूप	अप्राप्त	तुमपै
अन्य रूप	,,	तुम्हारे पर

निष्कर्ष

(१) मध्यम पुरुष सर्वनाम ए. व. "तू" का प्रयोग अत्यन्त कम मात्रा में मिलता है। "तू" का वह प्रयोग पूर्वोक्त बात के पुनकर्थन (Reported specob) में किया गया है। "तू" का प्रयोग उस समय भी वर्ज्य सा माना गया है।

(२) बहु वचनात्मक "तुम" का प्रयोग एक ही व्यक्ति के लिये किया गया है।

(३) कर्ता कारक भूतकाल ए. व. का रूप "तूने" का प्रयोग पत्रों में नहीं मिलता।

(४) कर्ता कारक भूतकाल व. व. में "तुमने" इस ब्रजभाषा के रूप का प्रयोग मिलता है किन्तु "तुमने" रूप अधिक परिमाण में मिलता है।

(५) कर्म तथा संप्रदान कारक में होने वाले "तुझ", "तुझको" तथा "तुम्हे", "तुमको" इन पत्रों में अप्राप्त हैं। ये रूप अपेक्षाकृत आधुनिक होंगे।

(६) करण, अपादान कारक में सिर्फ "तुमसौं" यह ब्रजभाषा का रूप मिलता है।

(७) संबंध कारक ए. व. में मिलने वाले "तेरे—तेरा—तेरी" ये रूप पत्रों में नहीं मिलते।

(८) अधिकरण कारक में एक व. के "तुझमें, तुझपर" ये रूप पत्रों में अप्राप्त हैं। व. व. का रूप "तुममें" भी नहीं मिलता। ये रूप भी अपेक्षाकृत आधुनिक होंगे।

(९) "पै" का प्रयोग मध्यम पुरुष में भी अधिकरण कारक में गद्य में मिलता है।

मध्यम पुरुष आदर सूचक "आप"

हिन्दी में "आप" सर्वनाम का प्रयोग तीन स्थानों में किया जाता है। (१) अन्य पुरुष बहु वचन में "वे" के बदले। (२) मध्यम पुरुष बहु वचन "तुम" के बदले (३) किसी संज्ञा या सर्वनाम के अवधारण के लिये निजवाचक के अर्थ में।

इनमें से निजवाचक तथा अन्य पुरुष वाचक "आप को" छोड़कर मध्यम पुरुष ब. व. में होने वाले आदर सूचक "आप" का अध्ययन यहाँ किया गया है।

अन्य पुरुष आदर सूचक "आप" का प्रयोग इन पत्रों में नहीं के बराबर है। इस आप का अर्थ सूचित करने के लिए उसके स्थान में व्यक्ति का नाम या उसका पद लिखा जाता था। उदा० श्री. बालाजी बाजीराऊ, श्री. नान्हासाहिब या मुख्य

प्रधान ३०। कहीं इन व्यक्तियों के प्रति "उन" इस सर्वनाम का प्रयोग किया गया है।

निज वाचक सर्वनाम "आप" का अध्ययन स्वतन्त्र रीति से किया जायेगा।

(१) "तू" का प्रयोग सामान्यतः अनुचित माना जाता है। अतः उसके स्थान में एक व्यक्ति के आदर के लिये आपका प्रयोग किया जाता है। कभी एक से अधिक व्यक्तियों के लिये "तुम" के स्थान में आपका प्रयोग लक्षित होता है।

(२) एक वचन या बहु वचन के लिए प्रयुक्त आप तथा एक व. या बहु व. में होने वाले उसके कारकीय रूपों में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता अतः उन्हें एक ही माना गया है।

(३) मूल रूप में खड़ी बोली के रूप लिये गये हैं और अन्य रूपों में शेष भाषाओं या बोलियों के रूप लिये गये हैं।

(४) जो रूप अनेक बार मिलते हैं उनके पत्र तथा उदाहरण का उल्लेख संदर्भ में नहीं किया गया है।

(५) इन रूपों में भी ह्रस्व दीर्घ तथा अनुनासिकता की संदिग्धता स्वीकृत हैं।

मध्यम पुरुष वाचक आप	उभय वचन
मूल रूप	आप
अन्य रूप	अपुन, आपु, आपू

"आपु" तथा "आपू" का प्रयोग इन पत्रों में मिलता है। उदा०—

"आपु जेठे सरकार हौ।" (प. १०३)

"आपू लिखीती के ऐसी चाकरी सरकार की करनौ" (प. ४१)

ये रूप व्रजभाषा में मिलने वाले हैं।[क] तथा आगरा जिले की बोली में भी मिलते हैं।[ख]

अन्य रूपों में "अपुन" एक रूप मिलता है। उदा०—

"दीवानजु व अपुन ऐक जाइया भए पर हमको लिपि पठेवी।" (प. ५०)

"अपुन" यह रूप बुन्देली में मिलता है।[ग]

(क) व्रजभाषा पृ. ८२.८३ (ख) आगरा जिले की बोली पृ. ४३

(ग) बुन्देली का भाषाशास्त्रीय अध्ययन पृ. ६६

कारकीय प्रयोग "आप"

कर्त्ता कारक भूतकाल	(आपने)	अप्राप्त
अन्य रूप	अपुनु, आपने, आपुने, आपुनै	

कर्त्ता कारक का "आपने" रूप इन पत्रों में अप्राप्त है।

"आपने तागीति राजश्री पंडित हरी वीठल राइजूकां फरमाई के।" (प. ४५)

"जु कछु ब्यौरो आपुनै लिख्यो हो।" (प. ४६)

"आपनै आज्ञा करी हती।" (प. ५१)

"अपुनु" रूप कहीं मिलता है। उदा०—

"भैया गोविंदास अपुनु बुलाऐ हेत अरु कोटारा के पात्र बुलाऐ हेते।"(प.४९)

यह एक विशेष रूप हैं जो आगरा जिले की बोली में मिलता है।(क) यहाँ यह रूप कर्ता कारक में प्रयुक्त किया गया है।

अनेक स्थानों पर कर्ताकारक के ऐसे रूप मिलते हैं जिनमें "ने" प्रत्यय अध्याहृत है। उदा०—

"सौ "आपु न देख्योइ न सुन्यौ।" (प. ३५)

"आपु लिखीती के ऐसी चाकरी सरकार की करनौ" (प. ४१)

आदर सूचक "आप" के साथ "ने" जोड़ने की प्रवृत्ति कम दिखाई देती है। अतः कर्ता कारक में "ने" प्रत्यय जोड़ने की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत आधुनिक मानी जा सकती है।

"आप" कारकीय रूप

कर्म—संप्रदान कारक	उ. वचन
मूल रूप	आपकौ
अन्य रूप	अपुन, अपुनकौ, आपकु, आपुको, आपको, आपुकौ, आपूकौ

(१) पत्रों में अनेक स्थानों में मिलने वाले इन रूपों में "ओ" कारान्त रूप आपको तथा आपुको अपेक्षाकृत कम हैं। "औ" कारान्त रूपों का ही बाहुल्य दिखाई देता है।

(२) इनमें मिलने वाले " आप " के रूप कम हैं। " आपु " उकारान्त रूप अधिक हैं।

---

(१) आगरा जिले की बोली पृ. ४६, ४७

(३) इन रूपों में होने वाले "आपकू" रूप एक विशेषण रूप है। उदा०—
"गंगा जी तैं प्यारो नाहि सो मैं आपकू भेजू।" (प. ४६)
जिसमें स्थानीय खड़ी बोली का प्रभाव लक्षित होता है।"

(४) बलात्मक प्रयोग में जोड़ा जाने वाला "हो" सर्वनाम का रूप और कारक प्रत्यय के बीच लगाया गया है। उदा०—
"या राज्य की लज्जा सर्व प्रकार आपुही को है।" (प. ५१)
"अरु आपुहुके करै सब होनो है।" (प. ६३)

"आप" करण और अपादान

	उ. वचन
मूल रूप	(आपसे) अप्राप्त
अन्य रूप	आपसु, आपसो, आपसौ

"आप" का करण तथा अपादान कारक का "आपसे" रूप इन पत्रों में नहीं मिलता।

अन्य रूपों में "आपसो" और "आपसौ" ओकारान्त तथा औकारान्त रूप है। उदा०—

"सबु व्योरो विदीवार आपुसो कहे।" (प. ४६)
"इहाकी हकीकति आपुसौं जाहिर करि हैं।" (प. ६३)

"आपसे" रूप आधुनिक हिन्दी का है। उसे आधुनिक हिन्दी की विशेपता मानना उचित होगा।

"आपसु" रूप एक पत्र में मिलता है। उदा०—
"श्री जी साहिबफुरमाई छै सौ आपसु मालुम कीये।" (प. २२)

—ह्रस्व दीर्घ तथा अनुनासिकता की संदिग्धता स्वीकार करने से यह रूप राजस्थानी का माना जा सकता है।(ख)

"आप" संबंध कारक

	उ. व.
मूल रूप	आपका, आपके, आपकी।
अन्य प्रयोग	आपको, आपकौ, अपनो, अपनी, आपरा, आपरी।

(ख) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. ५०।

"आपका सदा आरोगि चाहिज्ये ।" (प. २२)

"आपका सदा सर्वदा भला चाहिजे ।" (प. १५९)

"आपको हजुरि पहौच जे ।" (प. २२)

"या सिवाय आपके जेठे वेटे होंगे ।" (प. १)

कुछ थोड़े ही स्थानों में खड़ी बोली के "आपका" यह आकारान्त रूप मिलता है। वैसे ही "आपकी" और "आपके" ये रूप थोड़े ही पत्रों में मिलते हैं।

आपका आकारान्त के स्थान में ओकारान्त "आपको" या औकारान्त "आपकौ" का प्रयोग मिलता है। उदा०—

"आपको हमारौ स्नेह या लानै...लिखने है।" (प. १)

"अठै हुकम आपकौ जाणौला।" (प. २२)

उल्लेखनीय वात यह है कि एक ही पत्र में आपका और "आपको" रूप प्रयुक्त किये गये हैं। (प. २२)

"या उपरान्त अपनो राज्य या देशमो भवो।" (प. ६०)

"हमारौ और अपनौ तौ श्री ककाजू साहिब तें इखलास व्यौहार है।"(प. ५५)

"इनमें प्राप्त रूप अपनो, अपनौ "आप" के संवंध कारक के रूप हैं। ये व्रजभाषा के प्रयोग हैं।

"आपरा होकम माफक अठे आया।" (प. ९२)

"आपरी फौज मातवर सरदार ठाकुर देकर भेजवो।" (प. १५९)

कुछ पत्रों में मिलने वाले "आपरा, आपरी" रूप "आप" के संवंध कारक के रूप हैं। ये राजस्थानी के प्रयोग हैं।(ग)

"आप" शब्द की अपेक्षा अधिक आदर सूचित करने के लिए वड़े पदाधिकारियों के प्रति श्रीमान, महाराज, सरकार, हजूर आदि शब्दों का प्रयोग होता है।" (घ)

प्रस्तुत पत्रों में भी इस प्रकार के आदर सूचक शब्दों का प्रयोग किया गया है। वे शब्द प्रधानतया ये हैं।

राउरे, हजुर, हजूर, महाराज, माहाराजा, सरकार, सिरकार,
साहिब, साहेब, राज, राज्य, म्हाराज, श्रीजू, श्री महाराज।

(ग) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. ५६।

(घ) हिन्दी व्याकरण पृ. ८१।

एक पत्र में आदर सूचक "साहिब" शब्द के पूर्व में दूसरा आदर सूचक शब्द "आपु" (सर्वनाम) का उपयोग किया गया है।

उदा०—"आपु साहिब सनधि करि दीवी।" (प. ६५)

हमारी वाह "आपु साहिब" ने पकरी है। (प. ६५)

अधिकरण कारक में होने वाले आप के रूप "आपमें" "आप पर" इन पत्रों में अप्राप्त हैं।

आदर सूचक "आप" कारकीय रूप

		उभय वचन
	मूल रूप	आप
	अन्य रूप	अपुनु, आपु, आपू
भूतकाल कर्ताकारक	मूल रूप	(आपने) अप्राप्त
	अन्य रूप	अपुनु, आपने; आपुने, आपुनै
कर्म और संप्रदान	मूल रूप	आपको
	अन्य रूप	अपुन, अपुनकौ, आपकू, आपको आपकौ, आपुकौ, आपूकौ
करण और अपादान	मूल रूप	(आपसे) अप्राप्त
	अन्य रूप	आपसु, आपसो, आपसौ
संबंध कारक	मूल रूप	आपका, आपके, आपकी
	अन्य रूप	आपको, आपकौ, अपनो, अपनौ आपरा, आपरी
अधिकरण	मूल रूप	(आपमें, आप पर) अप्राप्त
	अन्य रूप	"

आदर सूचक "आप" निष्कर्ष

(१) आदर सूचित करने के लिए मध्यम पुरुष में "आप" का प्रयोग किया गया है।

(२) आपके स्थान में अन्यत्र "आपु, आपू" का व्रजभाषा के सर्वनामों का प्रयोग मिलता है।

(३) आपके कारकीय रूपों का प्रयोग मिलता है जिनमें भिन्न भाषा तथा बोलियों के प्रयोग मिलते हैं। इनमें प्रधानतः ब्रज, राजस्थानी, बुंदेली भाषा में मिलने वाले रूप हैं।

(४) "आप" को संबंध कारक के कारक प्रत्यय लगकर होने वाले रूप आपको, आपणा, आपरा इत्यादि प्रधानत. विशेषण के स्थान में उपयोग में लाये गये हैं।

(५) आदर सूचित करने के लिए अन्य शब्द–हजूर, महाराज, साहिब, सरकार इत्यादि का प्रयोग किया गया है।

(६) आदर सूचक "आप" के अधिकरण कारक के रूप नहीं मिलते।

"आप" निजवाचक

निजवाचक "आप" पुरुषवाचक (आदर सूचक) "आप" से भिन्न है।

(१) पुरुष वाचक "आप" एक का वाचक होकर भी नित्य बहुवचन में आता है। परन्तु निजवाचक "आप" एक ही रूपों से दोनों वचनों में आता है।(क)

(२) पुरुष वाचक "आप" केवल मध्यम और अन्य पुरुष में आता है। पर निज वाचक "आप" का प्रयोग तीनों पुरुषों में होता है।(क)

(३) आदर सूचक "आप" वाक्य में अकेला आता है, निजवाचक "आप" दूसरे सर्वनामों के संबंध से आता है ।"(क)

प्रस्तुत पत्रों में निजवाचक आप का प्रयोग एक ही पत्र में मिलता है। वह "हम" के साथ प्रयुक्त किया गया है। उदा०—

"आपका कृपा पत्र आया करै सो हिंदवी लिखा जावै जो हम आप पढ़ लेवें।" (प. २०५)

अन्य किसी सर्वनाम के साथ आप (निजवाचक) का प्रयोग नहीं मिलता। अत: निजवाचक आप का प्रयोग उस समय अधिक प्रचलित नहीं था।

निजवाचक के अर्थ में आपका प्रयोग हिन्दी के समान अन्य मराठी, गुजराती इत्यादि भाषाओं में मिलता है। उदा०—

(क) हिन्दी व्याकरण पृ. ८२ :

(ख) महाराष्ट्र शब्द कोष विभाग १ पृ. २५२।

मराठी—

(१) "आप मुखी जग सुखी" (२) "आप मेले जुग बुडाले।" (ख)

गुजराती—

"बीजा सर्व वेडा पछी आप वेसे" (ग).

निज वाचक आपका प्रयोग करने की पद्धति अपेक्षाकृत आधुनिक है।

निश्चय वाचक सर्वनाम

"जिस सर्वनाम से वक्ता के पास अथवा दूर की किसी वस्तु का वोध होता है उसे निश्चय वाचक सर्वनाम कहते हैं। निश्चयवाचक सर्वनाम तीन हैं—यह, वह, सो।" (क)

निश्चयवाचक सर्वनाम – यह (निकटवर्ती)।

"यह" सर्वनाम का ए. व. में प्रयोग होता है तथा व. व. में "ये" का प्रयोग किया जाता है।

प्रस्तुत पत्रों में एक वचन में "यह" और वहु वचन में "ये" का प्रयोग मिलता है। उदा०—

"ई सौ यह कहि दई के अव ... " (प. ४)

"हमारे चित्त मैं तो यह हती कै काटिकाटनी।" (प. ५०)

"फाइदाकी चारि वाति ... कहिदीनी है सो ये जाहर करेंगे। (प. १६६)"

इन रूपों के अलावा इनके स्थान में प्रयुक्त अन्य रूप भी मिलते हैं। ए. व. में "या", "य्या" और "यो" ला प्रयोग मिलता है। उदा०—

"या वमुजिव हमेसा पाअै आऐ है।" (प. १६)

"यो खासा जान लिखेपर काइम रहकर ... ।" (प. २०२)

"तीनों सीतावसौ आवैगे य्या लिखा सौजाना।" (प. १७६)

(ख) महाराष्ट्र शब्द कोप विभाग १ पृ. २५३।

(ग) हिंटस् ऑन दिस्टडी ऑफ गुजराती पृ. ४०।

(क) हिन्दी व्याकरण पृ० ८४।

इनमें से "या" यह सर्वनाम डिंगल [ख] मेवाड़ी तथा रीवाई [ग] में मिलता है। यह रूप व्रजभाषा में भी प्राप्त है। [घ]

"यो" यह रूप राजस्थानी में मिलता है। [च]

"य्या" यह विशेष प्रकार का रूप है। यह अकारण द्वित्व-व्यंजन का उदाहरण है। एक ही स्थान में यह रूप मिलता हैं। लिखावट की असावधानी का ही यह अपवादात्मक रूप है।

वहुवचन में "थे" के सामने "ऐ" का भी प्रयोग किया गया है।

उदा०—"खबरि आई कि .... गंगा प्रसाद मिश्र, पंडित गोपालराव ऐ विदा करे है ते आगरे लो आई चुके।" (प. ५३)

यह रूप राजस्थानी में मिलता है। [छ]

एक स्थान पर "ये" का प्रयोग ए. वचन में किया गया है। उदा०—

"ये वीनती २४ मा जीहीज।" (प. १८) राजस्थानी में एक व. में ये का प्रयोग किया जाता हैं। [छ]

यह कारकीय प्रयोग—

भूतकाल कर्ताकारक	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	(इसने) (अप्राप्त)	(इनने, इन्होंने) अप्राप्त
अन्य रूप	"	(इनुने, ईनोने)

कर्ता कारक ए. व. में मिलने वाला "इसने" रूप इन पत्रों में अप्राप्त है। व. व. में उसके स्थान में भी किसी रूप का प्रयोग नहीं मिलता।

(ख) राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ. १६
(ग) "केलाग" हिन्दी लेंग्वेज पृ. १९६ चा. ३
(घ) व्रजभाषा पृ. ७३
(च) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. ५२
(छ) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. ५२

ब. व. में होने वाले "उनने" और "उन्होंने" ये दोनों रूप भी इन पत्रों में अप्राप्त हैं। उन रूपों के स्थान में मिलने वाले अन्य रूप " इनुने, ईनोने " हैं उदा०—

"परगने टोक की मामलत ... सिवाजी निसबत सिरकार ईनोने की है।" (प. १५२)

यह "इन्होंने" का उच्चरित रूप है।

"राजका कागद या सो इनुने माना नही।" (प. १६२)

यह रूप व्रजभाषा के अन्तर्गत मिलनेवाला रूप है। (ज)

यह कारकीय रूप

कर्म और संप्रदान	ए. व.	ब. व
मूल रूप	(इसे, इसको) अप्राप्त।	इनको (इन्हें) अप्राप्त
अन्य रूप	अप्राप्त	इनकुं, इनकु, ईनकुं, ईनको, इनकी, इन्हें, इनहे, याकुं

ए. व. में मिलने वाले इसे और इसको ये रूप अप्राप्त हैं। खड़ी बोली के ये रूप अपेक्षाकृत आधुनिक हैं। इनके स्थान पर अन्य रूप भी नहीं मिलते।

बहु वचन में होनेवाला "इनको" रूप मिलता है। उदा०—

" तुम इनको रुपीया पोहचाय दीयै छै नही। (प. १२५) दूसरा रूप "इन्हें" पत्रों में नहीं मिलता। किन्तु एक पत्र में "इनहे" रूप मिलता है। उदा०—

"इजत पासैं मीलाप कर इनहे साथ लेके साढ़ी रह आइ (प. ५६) प्राप्त रूप "इनहे" में मध्य व्यंजन "न" पूर्णाक्षर लिखा है। यहां संयुक्त व्यंजन "इन्हे" के स्थान में "इनहे" लिखा गया है। पत्र लेखक की यह अपनी विशेषता पत्र में भी लक्षित होती है जैसे हम है (हम्है) (प. ५६)

ह्रस्व-दीर्घ और अनुनासिकता की संदिग्धता को स्वीकृत करने पर इनकुं, इनकु ईनकुं ये रूप एक ही माने जायें। कर्म और संप्रदान कारक के ये रूप पत्रों में मिलते हैं। उदा०—

(ज) व्रजभाषा पृ. ७३

"इनकु' बचावरो की बात बोलोगे तो सुने नहीं। (प. १६२)

"इनकु' ब्र'दावन मे ... टीका दीया था।" (प. १५७) (कू) परसर्ग से युक्त ये रूप ब्रजभाषा (ट) तथा दक्खिनी हिन्दी के हैं।

कहीं कहीं इनकौं (इनको) यह रूप भी मिलता हैं। उदा०—

"ओरू इनकौं अपनैं पास न रष्यौ ...।" (प. ६४)

यह ब्रजभाषा का रूप है। (ठ)

एकाध स्थान में इन्हैं रूप भी मिलता है। उदा०—

"जो इन्हैं अपने पास पठै ते सो च पही वास्ते।" (प. ४)

यह रूप भी ब्रजभाषा में मिलता हैं। (ड)

एक स्थान में याकु यह रूप मिलता है। उदा०—

"दवलतराव सिंधे ... याकु ... सिरपाव दिया।" (प. २०३)

करण और अपादान	ए. व.	ब. व
मूल रूप	(इससे) अप्राप्त।	इनसे
अन्य रूप	अप्राप्त।	इनसैं, इनसै, इनिसौ इनौसे, यांसो, यासो

एक वचन में मिलनेवाला रूप

"इससे" इन पत्रों में नहीं मिलता।

ब. व. में मिलनेवाला "इनसे" रूप इन पत्रों में मिलता है। उदा०—

"अर चौधरी का "इनसे" ऐक सुत है।" (प. ५६)

इस रूप के स्थान में कुछ पत्रों में इनसे रूप मिलता है। उदा०— "इनसै महम कोइ नही।" (प. ३)

"ये वातै इनसैं कही हैं।" (प. १९६)

एकाध स्थान में इनिसौ रूप भी मिलता है। उदा०—

"इनिसौ यथाममा करि मुचलका लिषाइ लऐ हैं।" (प. ५०)

(ट) सूरपूर्व ब्रजभाषा पृ. २६०।

(ठ) सूर की भाषा पृ. २३५, २३७।

(ड) ब्रजभाषा पृ. ७४, सूरकी भाषा २३५।

सैं, सौं परसर्ग से युक्त ये रूप व्रजभाषा के रूप हैं। (ढ)

इन रूपों के अलावा यांसो यासो ये रूप भी मिलते हैं।

उदा०—"वा माफिक यांसौ बात कहेला।" (प. १६८)

यह रूप व्रजभाषा का माना जा सकता है।

एक स्थान पर इनौंसे यह रूप मिलता है। उदा०—

"च्यार दीन ड्रिनौंसे दार मदार कर सलाह करी।" (प. ५६)

यह संबंधकारक	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	अप्राप्त	इनका-इनके, इनकी, इनीका, इनीके, ईनके, ईनकैं, इनिकी, ईनकी, ईनीकी, इनको, ईनको, इनकौ, इनोंको

एक वचन में मिलनेवाले "इसका, इसके, इसकी" ये रूप इन पत्रों में अप्राप्त हैं। ब. व. में मिलने वाले खड़ी बोली के रूप "इनका -इनके, इनकी" अनेक स्थानों में मिलते हैं अतः उनके उदाहरण नहीं दिये गये हैं।

ह्रस्व दीर्घ की संदेहात्मकता को स्वीकार करने से "ईनके—ईनकी" ये रूप भी ह्रस्व के समान माने जायें।

कुछ रूपों में मध्य "न" के स्थान पर ह्रस्व या दीर्घ "नि" या "नी" का प्रयोग मिलता है। उदा०—

"हर तरह उठे ईनी का गोर करा वोळा" (प. १२७)

"पं. श्री गोपाल मनि कौ व ईनी के भाई भतीजे की कामदारी नं देई।" (प. १०४)

इन रूपों में कहीं सामान्य अर्थ तो कहीं बलात्मक प्रयोग का अर्थ लक्षित होता है।

एक रूप इनों को मिलता है। उदा०—

"तासे ड्रिनोंका यो मनसुबा थो।" (प. ५६) यह रूप इनका इस अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

एक विशेष रूप "इनोके" मिलता है। उदा०—

(ढ) व्रजभाषा पृ. ८५, ८८

"हिंदुस्थान प्रांत की मुखत्यारी जगनाथराम वा लक्ष्मन अनन्त इनौके तरफ दिये है।" (प. १४३)

यह रूप "इनके" के स्थान में उपयोग में आया है।

कुछ पत्रों में "इनको" और "इनकौ" रूप मिलते हैं।

उदा०—"तुम ईनको गौर ष समानी कीजौ।" (प. ३८)

"अरु ईनकौ गौर ष समानी करै रहिजौ।" (प. ६६)

ये रूप संबंध कारक के अर्थ में प्रयुक्त हैं। अतः "को" और "कौ" परसर्गों का प्रयोग कर्म-संप्रदान तथा संबंध कारक के अर्थ में किया जाता था।

इन रूपों के अलावा "याकी, यांके" ये रूप इन पत्रों में मिलते हैं। उदा०—

"यांकी चीजबस्त राजकी सरकार में छे।" (प. १५७)

"संताजी वाबलेयाके कबीले जयपूर मे रहने को आयें है।" (प. १८०)

संबंध कारक में मिलने वाले ये रूप सूरदास की रचना में मिलते हैं। (क) जो [ब्र]जभाषा के रूप मिलते हैं।

यह निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनामों के संबंध कारक के रूप में प्रायः [वि]शेषण के समान ही प्रयुक्त किये गये हैं।

[९] अधिकरण कारक

	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	इसमें	इनपै
अन्य रूप	ईसपरि, यामे	—

ए. व. में "इसमें" यह रूप मिलता है। उदा०—

"पैसा की सरबराई न करी इसमें अच्छा नहीं।" (प. ७७) यह खड़ी बोली [क]ा रूप इन पत्रों में मिलता है।

ए. व. में मिलने वाला दूसरा रूप है "ईसपरि"। उदा०—

"केताक मजकूर...सनेह व्रीधी का...जाहरि हूवा सो ईसपरि...खूसी [हु]ई।" (प. १७६)

"ईसपर दीलकी सफाई...अति वीसेस हुई।" (प. १७६)

दोनों स्थानों पर परि परसर्ग का प्रयोग अधिकरण कारक में किया गया है। [इस]का अर्थ करण कारक के समान भी होता है।

(क) सूर की भाषा पृ. २३४

व. व. में इनपै रूप का प्रयोग मिलता है। उदा०

"आपुके पास ये आये हैं इनपै कृपाई राषियैगी।" (प. ९४)

"पै" प्रत्यय का प्रयोग गद्य में किया गया है। व्रजभापा में "पै" का प्रयोग अधिकरण कारक में गद्य में मिलता है। (ख)

ए. व. में मिलनेवाला एक विशेप रूप "यामें" है उदा०—

"हकिकति गोपालराव बापुजी ने लिखा पठवाऐ यामें खुलासा लीखाज्यौ।" (प.१) यह रूप मराठी रूप "यांत" इस मराठी निकटवर्ती "हा" का अधिकरण कारक ए. व. के रूप के समान है। (ग) यह पत्र पेशवा के द्वारा लिखा गया है।

निश्चयवाचक सर्वनाम—निकटवर्ती यह कारकीय रूप –

कारक	ए. व.	व. व.
मूल रूप	यह	ये
अन्य रूप	या, य्या, यो,	ऐ
भूतकाल कर्ता कारक	(इसने) अप्राप्त	(इनने, इन्होंने) अप्राप्त।
अन्य रूप	—	इनुने, ईनोने
कर्म संप्रदान	(इसे, इसको) अप्राप्त	(इन्हें अप्राप्त इनको,
अन्य रूप	अप्राप्त	इनकु, इनक, ईनकु ईनको, इनकौ, इनहे, इन्है, याकु
करण और अपादान	(इससे) अप्राप्त	इनसे
अन्य रूप	अप्राप्त	इनसें, इनसैं, इनसो, इनोसैं, यांसो, यासो।

कारक	ए. व.	व. व.
संबंध	(इसका–के–की) अप्राप्त	इनसे इनका, इनके, इनकी, (इनीका, इनीके, ईनकैं,)
अन्य रूप	अप्राप्त	इनिकी, ईनकी, ईनीकी, इनको, इनकौ, ईनोंको, इनको

(ख) व्रजभापा पृ. ९० (ग) शास्त्रीय मराठी व्याकरण पृ.३९८

अधिकरण	इसमें	इनपै
अन्य रूप	ईसपरि, यामै	

निष्कर्ष—

(१) निश्चयवाचक निकटवर्ती सर्वनाम ए. व. "यह" का प्रयोग प्रस्तुत पत्रों में मिलता है। इसके साथ साथ "या" "यो" का प्रयोग किया गया है।

(२) व. व. में "ये" का प्रयोग मिलता है और अन्य रूपों में "ऐ" का प्रयोग है। सर्वनाम "ये" और "ऐ" का प्रयोग ए. व. में किया गया है।

(३) ए. व. विकृत रूप "इस" का प्रयोग कर्ताकारक भूतकाल में अप्राप्त है।

(४) कर्म-संप्रदान में ए. व. में होने वाले रूप "इसे, इसको" इन पत्रों में अप्राप्त हैं।

(५) व. व. में "इनको" यह रूप मिलता है और हिन्दी के "इन्हे" रूप के वदले "इन्हे" यह ऐकारान्त रूप मिलता है।

(६) करण, अपादान "इससे" यह ए. व. का रूप प्रस्तुत पत्रों में अप्राप्त हैं।'

(७) संवंध कारक में होने वाले ए. व. के "इसका—इसके—इसकी" रूप अप्राप्त हैं। इनके स्थान में व. व. के रूपों का ही प्रयोग किया गया है। व. व. में मूल तथा अन्य रूप भी मिलते हैं।

संवंध कारक में मिलनेवाले ये रूप विश्लेषण के अर्थ में प्रयुक्त किये गये हैं।

(८) अधिकरण कारक में इनके साथ "पै" का प्रयोग प्रस्तुत पत्रों में मिलता है।

(९) "यह" का ए. व. में होनेवाला विकृत रूप "इस" इन पत्रों में मिलता है। इसका प्रयोग सर्वनाम के कारकीय रूपों से भी अधिक परिमाण में संवंध सूचकों के साथ किया गया है।

निश्चयवाचक सर्वनाम: दूरवर्ती "वह"।

सर्वनाम "वह" को अन्य पुरुष वाचक सर्वनामों में गिना जाता है और उसका अध्ययन भी उसी में किया जाता है। विभाजन में उसे निश्चय वाचक सर्वनामों में लिया जाता है। अतः उसका अध्ययन निश्चयवाचक सर्वनामों के अन्तर्गत किया गया है।

सनर्वाम वह—	ए. व.	व. व.
मूल रूप	वह	वे
अन्य रूप	वो, वाँ	ते वै

एक वचन में मिलनेवाला "वह" रूप इन पत्रों में मिलता है। उदा०

"दुखसैं मेरा हवाल होइया है वह कहाँ तक लिखो।" (प. ३)

उसके स्थान में प्रयुक्त रूप "वो" मिलता है। उदा०—

"सो वो जीव बचाइ सीकस्त खाइ जातो रहो।" (प. ५६)

एक दूसरा रूप वौ मिलता है। उदा०—

"जद वौ जीव वचाइ . . . हमारे पास उठ आया।" (प. ५६)

ये दोनों सर्वनाम ब्रजभापा में मिलते हैं। (क)

व. व. में "वे" रूप मिलता है। उदा०—

"वे या जागा के खावंदही है।" (प. ५०)

उसके स्थान में "वै" का प्रयोग भी मिलता है। उदा०—

"जितने हाथ आवेंगे वै भेज देंगे।" (प. ३)

यह रूप ब्रज भापा(क), राजस्थानी में (ख) मिलता है। कनौजी (ग) में भी यह रूप प्राप्त है।

एक विशेष रूप "ते" मिलता है। उदा०—

"गंगा प्रसाद मिश्र पंडित गोपालराव ऐ विदा करे है ते आगरे लौ आइ चुके है।

यह मराठी भापा में मिलने वाला रूप है (घ) और गुजराती में भी (च)

वह सर्वनाम कारकीय प्रयोग—

विभक्ति प्रत्यय जोड़ने के पूर्व "वह" या "वे" के रूपों में परिवर्तन होता है। ए. व. में वह का "उस" रूप और व. व. में "वे" का "उन" रूप खड़ी बोली में मिलता है।

(क) ब्रजभापा पृ. ६६

(ख) राजस्थानी भापा और साहित्य पृ. ५३

(ग) ग्रामर आव हिन्दी लैंग्वेज "केलाग" चा. १० पृ. १६६

(घ) मराठी चे शास्त्रीय व्याकरण पृ. १०४

(च) गुजराती भापानु वृहद् व्याकरण पृ. १६६

ए. व. विकृत रूप में होनेवाला "उस" रूप कुछ पत्रों में मिलता है। किन्तु कितने ही अन्य पत्रों में "वा" का प्रयोग मिलता है। उदा०

"तोडा के अमलदार नैवा गाव का...अमलबंद करी।" (प. १९३)

उस समय "वा" यह रूप अधिक प्रचार में था। यह रूप ब्रजभाषा में मिलता है। (छ)

"उस" के स्थान में "उ" रूप मिलता है। उदा०—

"कोई सबब कर सेसकुं उं गादीपर दाखल कीया।" (प. १५७)

अनुनासिक्ता तथा ह्रस्व-दीर्घ की संदिग्धता को स्वीकार करने में यह रूप राजस्थानी (ज) या बुन्देल (ट) का होगा।

कहीं "उण" का प्रयोग भी मिलता है। उदा०—

"आवर दुर्गाबाई को खाणे पीणे को "उण" पास थी दीवाय दिजो।

(प. ३०)

यह रूप राजस्थानी भाषा में मिलने वाला है। (ठ)

ए. व. में और एक रूप "विस" मिलता है। उदा०—

"वकीली का कामकाज...इनके हाथ से होत आया था

विस माफक हाल राजेश्री...हाथसै...लेते जाना।" (प. १५५)

यह रूप ब्रजभाषा में मिलता है।

"उस" के स्थान में "ता" का प्रयोग मिलता है। उदा०—

"जवाब...पठायो हें ता परसे हकीकती जानियो।" (प. १४५)

एक स्थान में उस के स्थान पर ते का प्रयोग किया गया है। उदा०—

"सब समाचार उनने कहा ते पर मालम हुवा।" (१८४)

ये रूप मराठी प्रभाव के कारण प्रयुक्त हैं। कारण पत्र पूना से लिखे गये हैं।

(छ) ब्रजभाषा पृ. ७०।

(ज) "केलाग" हिन्दी ग्रामर टे. १० पृ. १९६

(ट) बुन्देली का भाषा शास्त्रीय अध्ययन पृ. ९६

ठ) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. ५३

विकृत रूप व. व. में मिलनेवाला रूप "उन" अनेक स्थानों में प्राप्त होता है
"उन" के स्थान में "उणा" का प्रयोग मिलता है। उदा०—
"उणामेथी ऐक गाम वाईजी कु दीलवाय जो।" (प. ३०)

यह प्रयोग राजस्थानी भाषा में मिलता है। (ड)
व. व. में एक रूप "वन" भी मिलता है। उदा०—
"हम इहा वन के घेरामे हैं।" (प. ५४)
यह "उन" रूप का विकृत रूप है।

वह कारकीय प्रयोग—

	ए. व.	व. व.
कर्ताकारक मूल रूप	(उसने) अप्राप्त	(उन्होंने) अप्राप्त
अन्य रूप...	ऊने, वाने	उनने, उननैं, उनोने

कर्ताकारक (भूतकाल) में ए. व. में मिलने वाला "उसने" तथा व. व. में मिलनेवाला "उन्होंने" ये रूप प्रस्तुत पत्रों में अप्राप्त हैं।

"उसने" के स्थान में ए. व. में "ऊने" और "वाने" का प्रयोग किया गया है। उदा०—

"कालपीको जिमो...वालाजू गोविन्द की है सु ऊने अस्वार सही करे।"
(प. ६६)

"नै" तथा "ने" को एक मानने पर यह रूप राजस्थानी का है। (ड) यह प्रयोग बुन्देली में भी मिलता है। (ढ)

"वानै कही कै...नाइक को परवानो कर देउ" (प. ७)

यह रूप ब्रजभाषा (ण) तथा बुन्देली में मिलता है। (ढ)
कर्ता कारक व. व. में उननें, उननैं, उनोने रूप मिलते हैं।
व. व. में उननें का प्रयोग मिलता है। उदा०—
"उहाका सब समाचार उननें कहा...।" (प. १८४)
"जब ये बाते "उननैं" सुनी तब...।" (प. ७)

(ड) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. ५३
(ढ) बुन्देली का भाषा शास्त्रीय अध्ययन पृ. ६६
(ण) ब्रजभाषा पृ. ८७

"पं. मलार रघुनाथ सु कहै थे उनोने हमको लिखा।" (प. ११६)

इन रूपों में से "उनने" और "उननै" ये रूप व्रजभाषा में मिलते हैं। (त)

कर्ताकारक व. व. में "उन्होंने" सर्वनाम के स्थान पर "ने" या "नै" परसर्ग रहित "उन" सर्वनाम का प्रयोग किया गया है। उदा०—

"जगह खखसीस के परगने की उन हमै बकसी है।" (प. ३५)

वह कारकीय रूप—

कर्म और सम्प्रदान	ए. व.	व. व.
मूल रूप	उसको	उनको
अन्य रूप	उसकु, वाको	उनकौ उनिकौ
		उनन, उन्है, वुनकु

ए. व. में होने वाला "उसको" रूप प्रस्तुत पत्रों में मिलता है। उदा०—

"नवाब के तरफ सु उसको लाय के श्रीमंत के त्रफ हाजर कर दीया।
(प. १५१)

उसके स्थान में प्रयुक्त अन्य रूपों में "उसकु" रूप मिलता है। उदा०—
"आप उसकु सेवट निभाओगे।" (प. १२२)
यह रूप मराठी मिश्रित दक्खिनी हिन्दी का है।
ए. व. में एक रूप "वाको" मिलता है। उदा०—
"वाको पचास हजार रुपीये उहां दीवाऐ... ।" (प. १८७)

यह रूप कनौजी (थ) और व्रजभाषा में मिलता है।
व. व. में मिलनेवाला "उनको" रूप इन पत्रों में मिलता है। उदा०
"जयनगर को गये हे उनको दो अढाई वर्स हुवै।" (प. १८१)
"उनको रहने को जगा दीजो।" (प. १८०)

उनको के स्थान पर कहीं कहीं "उनकौ" या "उनिकौ" का प्रयोग मिलता है। उदा० —"उनकौ रोवरी या तरह ताकीति होइ।" (प. १०)

"सु इनि सब ठाकुरनि उनिकौ काढि दऐ नाही।" (प. ५०)

(त) "सेलाग" हिन्दी ग्रामर पृ. १९६ टे. १०
(थ) " "

एक पत्र में "वुनकु" सर्वनाम का प्रयोग मिलता है। उदा०

"वहोतेरा "वुनकु" कहा पन कुछ खातर मु न लाये।" (प. ११)

यह रूप "उनको" का ही विकृत रूप है जो "वुनकु">"उनकू">"उनकूँ" >"उनको" इस प्रकार से विकसित हुआ है।

एक रूप "उन्हे" भी मिलता है। उदा०

"अब उन्हे जैसे तागीत पत्र आवैं।" (प. ४)

"हम उन्हे सजा दई।" (प. ५३)

यह रूप अवधी में मिलता है। (द)

वह कारकीय रूप—(करण और अपादान)

	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	(उससे) अप्राप्त	उनसे
अन्य रूप	वासु	उनिसौं, ऊसो

एक वचन में होने वाला "उससे" रूप इन पत्रों में अप्राप्त है। उसके स्थान में प्रयुक्त रूप "वासु" मिलता है। उदा०—

"तिसु "वासु" ताकिद हजुर कि पोहच्या।" (प. ११८)

इसमें "सु" अपादान का यह प्रत्यय लगाया गया है किन्तु उससे संप्रदान कारक का अर्थ लक्षित होता है।

ब. व. में होनेवाला "उनसे" रूप इन पत्रों में मिलता है। उदा०

"तुम उनसे रुजु होना।" (प. ३९)

ब. व. में "उनिसौं" रूप मिलता है। उदा०

"हरियेक तरह उनसौ अपने वनाउको भरोसौ राखत है।" (प. ८)

अन्य रूपों में मिलनेवाला एक विशेष रूप "ऊसो" है। उदा०

"साहिबराइ उहा हते ऊसो उनि हकीकति कही।" (प. ८)

यह बुन्देली भाषा में मिलनेवाला रूप है। (ध)

यह एक वचन का रूप ब. व. के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

(द) ब्रजभाषा पृ. ७१।

(ध) निमाड़ी और उसका साहित्य पृ. ८८ और ९१।

वह कारकीय प्रयोग ।

(संबंध कारक)	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	उसका, उसके, उसकी,	उनका, उनके, उनकी
अन्य रूप	वाका, वाके, वाकी ।	उनिकी, उनिके, उणाका, उणाके वनके, वनकै ।

संबंध—कारक में मिलनेवाले ये रूप विशेषण के समान प्रयुक्त किये गये हैं ।

संबंध कारक ए. व. में मिलने वाले खड़ीबोली के रूप उसका–उसके–उसकी इन पत्रों में अधिकता से और ब्यवस्थित रूप में मिलते हैं । अतः उनके उदाहरण नहीं दिये हैं ।

इन रूपों के स्थान में मिलनेवाले अन्य रूप हैं—

वाका, वाके, वाकी, । उदा०—

"सो वां का परिणाम देखता पुरा उतरेगा नही ।" (प. ११८)

"रोज दो वाके पास रहे ।" (प. ७)

"इनकी फीकर वाके करार होय ।" (प. ११)

"श्री जी के इछासु वाकी भी ततबीर अठासु सीताब ही होवेली ।" (प.१९४)

"वाका" रूप निमाड़ी और मालवी मिलता है । (न)

"वाके "तथा" वाकी" रूप ब्रजभाषा तथा बुंदेली में मिलते हैं । (न)

ए. व. में प्रयुक्त एक विशेष रूप "वेकी" है । उदा०—

"राजि यह अपनी दई आई जे में वेकी गौर हर तरह तै होई..." (प. ४)

"वे" का ए. व. में प्रयोग गढ़वाली तथा नेपाली में मिलता है । (क) यह रूप "उसकी" के अर्थ में है ।

ब. व. में होनेवाले "उनका—उनके, उनकी" ये रूप भी अनेक पत्रों में मिलते हैं । अत: उनके उदाहरण नहीं दिये हैं ।

इन रूपों के अलावा ब. व. में "उनिकी" "उनिके" ये रूप इन पत्रों में मिलते हैं । उदा०—

(न) निमाड़ी और उसका साहित्य पृ. ८८, ९१

(क) "केलाग" हिन्दी ग्रामर पृ. १९६ चा. १०

"राज्य की सजलिववै सो उनिकी व अपनी सव नजरिमै है। (प. ५०)

"उनिके सलूक की तरह वत्रिवे में आवै नाही।" (प. २)

ये रूप व्रजभाषा में मिलते हैं।(ख)

अन्य रूपों में "उणाका" "उणाके" ये रूप मिलते हैं। उदा०—

"उठारा पत्र प्रमाणे...रुपया का तगादा लगाया उणाका जवाब साफ कनीराम ने दिया" (प. ७७)

"दीवान कन्हीराम...को इहाँ भेज दियो उणाके आया ठहराय होय ते माफक अमलमै आवेगो।" (प. ११६)

ये रूप राजस्थानी भाषा में मिलते हैं। (ग)

इनके अलावा मिलनेवाले रूप "वनके" और वनकै हैं।" उदा०—

"सो अव वनके हम लाचार भये है।" (प. ५४)

"हम इहा वनके घेरा में हैं।" (प. ५४)

ये अवधी से प्रभावित रूप हैं।

वह अधिकरण कारक—

	ए. व.	व. व.
मूलरूप	उसमें, उसपर	(उनमें, उनपर) अप्राप्त
अन्य रूप	उसमें, उसपरि, उसमध्यें	उणामे

अधिकरण कारक ए. व. में होनेवाले "उसमें" "उसपर" ये रूप इन पत्रों में मिलते हैं। उदा०—

"आपके पास तुरकी आछे (घोडे) होय उसमेसे वा सवदागर के पास ते खरीदी कर...।" (प. १४७)

"राडी को इतीफाक पडो उसपर पटेलजी दरकुच ढीग पधारा गया।" (प. १६७)

"उसपर" का अर्थ इस बातपर है। अन्य अर्थ इसलिए भी हो सकता है।

अन्य रूपों में "उसपरि" रूप मिलता है। उदा०—

"तेहनामा...लिखनेमें आया है उसपरि मालूम होयगे।" (प. १७६)

अधिकरण कारक में "पर" के स्थान में "परि" का प्रयोग भोजपुरी तथा बैसवाड़ी में किया जाता है। किन्तु यह पत्र पूना से पेशवा की ओर से जयपुर नरेश को भेजा गया है अतः इसे भोजपुरी या बैसवाड़ी का प्रयोग नहीं कहा जा सकता। इस प्रयोग को विशेष प्रयोग मानना ठीक होगा।

(ख) "केलाग" हिन्दी ग्रामर पृ. १६६ चा. १०

(ग) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. ५३

अन्य एक रूप "उसमध्यें" मिलता है। उदा०—

"सांवरवोर हमारे सुकासदार सो खेचल करे हैं उसमध्यें आगे भी राज को लिखा है।" (प. १२९)

यहाँ उसमध्यें का अर्थ "इस संबंध में–इस बात में" यह है। मध्ये यह मराठी संबंध सूचक है जो अधिकरण का अर्थ प्रकट करता है।(ग) इस संबंध सूचक का प्रयोग यहाँ किया गया है।

ब. व. में "उन" के साथ कारक प्रत्ययों सहित होनेवाले "उनमें, उनपर" ये रूप इन पत्रों में अप्राप्त हैं।

अन्य रूपों में एक रूप "उणा में" भी मिलता है। उदा०—

"उणामें थी ऐक गाम बाईजी कु दीलवाय जो।" (प. ३०)

यह रूप राजस्थानी भाषा में मिलता है।(घ)

निश्चय वाचक सर्वनाम—दूरवर्ती—वह कारकीय रूप—

कारक	ए. व.	ब. व.
मूलरूप	वह	वे
अन्य रूप	वो, वौ	वे, ते
भूतकाल कर्ताकारक	(उसने) अप्राप्त	(उन्होंने) अप्राप्त
अन्य रूप	ऊने, वाने	उनने, उननैं, उनोने
कर्म और संप्रदान	उसको	उनको
अन्यरूप	उसकु, वाको	उनकौ, उनिकौ, उनन, उन्है, वुनकु
करण और अपादान	(उससे) अप्राप्त	उनसे
अन्य रूप	वासु	उनिसौ, ऊसौं,
संबध मूल रूप	उसका–उसके–उसकी	उनका–उनके–उनकी
अन्य रूप	वाका-वाके-वाकी वैकी	उनिके, उनिकी उणाका-उणाके, वनके, वनकै,
अधिकरण मूल रूप	उसमें, उसपर	अप्राप्त (उनमें, उनपर)
अन्य रूप	उसमै, उसपरि, उसमध्ये	उणामे

(ग) मराठी चे शास्त्रीय व्याकरण पृ. ३९०

(घ) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. ५४

निष्कर्ष—

(१) दूरवर्ती सर्वनाम "वह" का प्रयोग इन पत्रों में मिलता है। उसके स्थान में अन्य रूपों में "वो" और "वौ" ये ब्रजभाषा के सर्वनाम प्रयुक्त किये गये हैं।

(२) व. व. में "वे" का प्रयोग मिलता है। और अन्य रूपों में "वै" का प्रयोग किया गया है।

एक स्थान में "वे" के स्थान पर में मराठी सर्वनाम "ते" का प्रयोग भी मिलता है।

(३) ए. व. के विकृत रूपों में होनेवाले "उस" रूप की अपेक्षा—"वा" का ही प्रयोग अधिकता से और अनेक पत्रों में मिलता है।

(४) कर्ताकारक भूतकाल में ए. व. में मिलनेवाला "उसने" तथा व. व. का उन्होंने ये रूप प्रस्तुत पत्रों में अप्राप्त हैं।

(५) कर्म और संप्रदान में मूल रूप होनेवाले "उसको," "उनको" ये रूप पत्रों में मिलते हैं।

(६) संबंध कारक में मिलने वाले मूल रूप तथा अन्य रूप विशेषण के अर्थ में प्रयुक्त सर्वनाम—सार्वनामिक विशेषण—हैं।

(७) ए. व. में मूल रूपों के साथ साथ "वाका—वाके—वाकी" ये ब्रजभाषा और बुंदेली के प्रयोग भी मिलते हैं।

(८) व. व. में होनेवाले मूलरूप अनेक पत्रों मे मिलते हैं। अन्य रूपों में ब्रज भाषा, राजस्थानी और अवधी के रूप मिलते हैं।

(९) अधिकरण कारक के ए. व. के रूप मिलते हैं, किन्तु व. व. में होनेवाले "उनमें," "उनपर" ये रूप प्रस्तुत पत्रों में अप्राप्त हैं।

(१०) एक स्थान में अधिकरण का अर्थ द्योतक मराठी शब्द "मध्ये" सर्वनाम "उस" के साथ प्रयुक्त किया गया है।

संबंध वाचक सर्वनाम " जो "

"हिन्दी में संबंधवाचक सर्वनाम एक ही है।" (क) "संबंध-वाचक सर्वनाम और नित्य-संबंधी सर्वनाम एक ही संज्ञा के बदले आते हैं। यह संज्ञा बहुधा पहले वाक्य में आती है और संबंध वाचक सर्वनाम दूसरे वाक्य में आता है।" (क) पत्रों

(क) हिन्दी व्याकरण पृ. ९०

में कहीं "जौन" रूप भी मिलता हैं किन्तु यहाँ कारकीय रूपों में मिलने वाले रूप "जो" के कारकीय रूप ही मानकर विवेचन किया गया है।

ए. व. में "जो" सर्वनाम का प्रयोग कतिपय पत्रों में मिलता है।

उदा०—" जौ हमारे ओंगे की लिखी सौ हम चाहते ही थे।"

संबंध वाचक सर्वनाम "जो" अनेक भाषाओं में मिलता है। जैसे नेपाली, (ख) व्रज (ग) राजस्थानी (घ)। यह सर्वनाम मराठी में भी मिलता है। (च)

"जो" के स्थान में कुछ अन्य सर्वनाम वाचक शब्दों का प्रयोग इन पत्रों में मिलता हैं। उदा०—"जु"

"हमसै जु बनि आउति है सौ करत ही है।" (प. ५०)

संबंध–वाचक सर्वनाम के अर्थ में "जु" का प्रयोग व्रज (ग) जौर राजस्थानी में (घ) मिलता है। पुरानी गुजराती में उसका प्रयोग किया जाता है। (छ)

ब. व. में भी जो का प्रयोग मिलता है उदा०—

"जो भाग के आवेंगे ... तो भेज देंगे।" (प. ३)

जो के स्थान में बहु वचन जौ का प्रयोग मिलता हैं। उदा०—

"न वे सरदारई अब आपुके पास रहे जौ वाकिफु करते।" (प. ३५) यह रूप व्रजभाषा में मिलता है। (ज)

"जो" कारकीय रूप कर्ता कारक	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	जिसने (अप्राप्त)	जिनने, जिन्होंने (अप्राप्त)
अन्य रूप	—	जिनि, जीनौने।

कर्ताकारक के ए. व. और ब. व. में मिलने वाले जिसने, जिनने, जिन्होंने ये रूप इन पत्रों में अप्राप्त हैं।

(ख) "केलाग" हिन्दी ग्रामर पृ. १६६ टे. ११
(ग) सूर की भाषा पृ. २४०
(घ) राजस्थानी भाषा और व्याकरण पृ. ५४
(च) मराठीचे शास्त्रीय व्याकरण पृ. ११५
(छ) गुजराती भाषानु बृहद् व्याकरण पृ. १७१ (ज) व्रजभाषा पृ. ७४।

ए. व. में अन्य रूप भी नहीं मिलता।

व. व. में "जिनि" और "जीनौने" ये रूप मिलते हैं। उदा०—

(क) "वीसाजी क्रस्न वैसे वड़े सिरदार हैं जिनि पातसाहन के सलतन बाधे दिल्ली बैठारे।" (प. ८)

(ख) "जिनौने सीर उठाया है सो तों नतीजा कों पोहचे।" (प. ५६)

उदाहरण (क) में मिलने वाला रूप "जिनि" व्रजभाषा में मिलता हैं। (ट)

उदा०—(ख) में मिलने वाला रूप जिनौने खड़ी बोली के "जिन्होंने" का ही विकृत रूप माना जाये।

"जो" कर्म और संप्रदान कारक	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	जिसे, जिसको (अप्राप्त)	जिन्हें, जिनको (अप्राप्त)
	जाकौ, जीने।	

ए. व. तथा व. व. में मिलने वाले मूल रूप इन पत्रों में अप्राप्त हैं।

अन्य रूपोंमें ए. व. में जाकौ, जीने ये रूप मिलते हैं। उदा०— (क) "जो जगह नानासाहिबने जाकौ वकसी है ...।" (प. ३६)

यह रूप व्रजभाषा में मिलता है। (ठ)

(ख) गूजरमल याको वकील अठै छै जीने भी व्हत्रह को वातां ... लिखी छै।" (प. ७८) यह रूप जीनें के समान माना जाये जो राजस्थानी में मिलता है। (ड)

"जो" करण और संप्रदान कारक	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	जिससे (अप्राप्त)	जिनसे (अप्राप्त)
अन्य रूप	जासी, जीसूं	—

एक व. तथा ब. ब. में होने वाले मूल रूप जिससे और जिनसे इन पत्रों में नहीं मिलते।

एक वचन में एक रूप जासी मिलता है। उदा०—

"महाराज के समाचार भले चाहीये जासौ मो ...... मन परम सुख हो।" (प. ६)

(ट) सूरकी भाषा पृ. २४० (ठ) सूरकी भाषा पृ. २४२

(ड) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. ५४।

यह रूप व्रजभाषा में मिलता है। (ढ)

कहीं "जीसूं" यह रूप मिलता है। उदा०—

"केताक समाचार कह्या जीसूं राजका वंदोबस्त की ... ।" (प. १३२)

यह रूप राजस्थानी में मिलता है। (ण)

व. व. में कोई रूप नही मिलता।

"जो" संवंध कारक	ए. व	ब. व.
मूल रूप	जिसका–जिसके–जिसकी (अप्राप्त)	जिनका–के–की (अप्राप्त)
अन्य रूप	जींको, जीको	—

ए. व. और ब. व. में मिलने वाले मूल रूप पत्रों में अप्राप्त हैं। ए. व. में जींको, जीको ये रूप मिलते हैं। अनुनासिकता की संदेहात्मकता को स्वीकार कर ये रूप एक ही हैं। जीको रूप का प्रयोग—

"जाटने ... वे मरजाद कीइ थी जींको फल आछौ पायौ।" (प. १७४)

यह रूप राजस्थानी मे मिलता है। (त)

ब. व. में अन्य रूप भी कोई प्राप्त नहीं है।

जो अधिकरण कारक	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	जिसमें, जिसपर (अप्राप्त)	जिनमें जिनपर (अप्राप्त)
अन्य रूप	जामे, जामै, जींसमे	

ए. व. और ब. व. में मिलने वाले रूप इन पत्रों में अप्राप्त हैं। ए. व में कहीं "जीसमें" रूप मिलता हैं। उदा०—

"जिसमें सनेह रहे सोही गजनें विचारणो जोग छै।" (प. १३२) ह्रस्व-दीर्घ की संदेहात्मकता को स्वीकार कर यह खड़ी बोली के जिसमें के समान माना जाये।

ए. व. में जामे और जामै ये रूप मिलते हैं। उदा०—

"असफेर लुहालाही मची है तातै "जामे" हम हजुर पोहुच है ... ।" (प ५१)

(ढ) सूर की भाषा पृ. २८२

(ण) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ- ५४

(त) राजस्थानी भाषा और सा. पृ. ५४

"जामे हमको आगा मिलेसु आपुको करनो कर्त्तव्य है।" (प. ५१)
ये दोनों रूप समान ही माने जायें।

ये रूप ब्रज और कनौजी में मिलते हैं। (थ)
एक रूप जिहमै मिलता है। उदा०—
"जिहमै राज्यको सुधार होइ सो कीवी" (प. १०२)

संबंध वाचक सर्वनाम "जो" कारकीय रूप

कारक	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	जो	—
अन्य रूप	जु	—

कारक	ए. व.	ब. व.
भूतकाल कर्ता कारक	(जिसने) अप्राप्त	(जिनने, जिन्होंने) अप्राप्त
अन्य रूप	जीने	जिनि, जीनीने
कर्म और संप्रदान	(जिसे, जिसको) अप्राप्त	(जिन्हें, जिनको) अप्राप्त
अन्य रूप	जाको, जीने	—
करण और अपादान	(जिससे) अप्राप्त	(जिनसे) अप्राप्त
अन्य रूप	जासो, जीसू	—
संबंध	(जिसका-जिसके-की) अप्राप्त	(जिनका—के—की) अप्राप्त
अन्य रूप	जींको, जीको	—
अधिकरण	(जिसमें, जिसपर) अप्राप्त	(जिनमें, जिनपर) अप्राप्त
	जामें, जामै, जीसमे	—

निष्कर्ष

(१) इन पत्रों में "जो" सर्वनाम का प्रयोग मिलता है और कतिपय स्थानों में "जु" का प्रयोग मिलता है।
(२) कर्ता कारक भूतकाल के ए. व. तथा ब. व. के रूप इन पत्रो में अप्राप्त हैं।
(३) कर्म और संप्रदान में मिलने वाले "जिसे, जिसको" और "जिन्हें, जिनको" ये रूप प्रस्तुत पत्रों में अप्राप्त हैं।

(थ) "केलाग हिन्दी ग्रामर पृ. १२० चा. २, पृ. १९६ चा. ११।

(४) ए. व में होने वाले "जिस" इस विकृत रूप की अपेक्षा "जा" इस रूप का अधिक प्रयोग पत्रों में मिलता है।

(५) "जो" इस सर्वनाम के रूपों का अधिकतर प्रयोग सार्वनामिक विशेषण के अर्थ में किया गया है।

संवंध वाचक सर्वनाम "जौन"—

इस सर्वनाम का प्रयोग भी इन पत्रों में कहीं मिला है। किन्तु ये प्रयोग सर्वनाम की अपेक्षा सार्वनामिक विशेषण के रूप में ही मिले हैं। उदा०—

(क) छैतीस गाव में जोन गढी होय तीनको .... ।" (प. ६०)

(ख) "अरु जौन भांति उहाकी मरजी तुम जानत होउ ... ।" (प. ७६)

ये दोनों रूप "जोन" "जौन" समान ही माने जा सकते हैं। ये रूप सम्बन्ध वाचक सर्वनाम जो के रूपों में कनौजी के अन्तर्गत स्वीकृत किये गये हैं। (द)

सर्वनाम "जौन" के रूपों का स्वतन्त्र अध्ययन नहीं किया गया है।

निश्चय वाचक सर्वनाम "सो"—

निश्चय-वाचक सर्वनाम "सो" का प्रयोग इन पत्रों में मिलता है। यह "सो" वहुधा संवंध वाचक सर्वनाम जो के साथ आता है। कभी-कभी सम्बन्ध वाचक सर्वनाम "जो" अध्याहृत रहता है। सम्बन्ध वाचक के अनुसार सो ए. व. या व. व. के अर्थ में होता है। प्रस्तुत पत्रों में सर्वनाम "सो" का प्रयोग दोनो वचनों में मिलता है। उदा०—

(क) "सरंजाम पागोटे वगैरे का ... भेजा है सो पोहचेगा।" (प. १७७)

(ख) "आपके पत्र तीर्थरूप कैलासवासी दादा को भेजे सो पोहचे।" प. १७७

उदाहरण (क) में सो ए. व. में प्रयुक्त है।

उदाहरण (ख) में वह व. व. में प्रयुक्त है।

"सो" के स्थान में कहीं औकारान्त "सौ" का प्रयोग मिलता है। उदा०—

"राजका कागद ... व्यंकटराव मोरेश्वर के साथि भेज्य सौ पोहाच्या।"

(प. १७६)

यह लेखन का दोष माना जा सकता है।

(द) "केलाग" हिन्दी ग्रामर पृ. १९६ टे. ११।

"सो" कारकीय प्रयोग—

सो के भिन्न कारक प्रत्ययों सहित होनेवाले रूप दोनों वचनों में एक होते हैं। अत: उन्हें एकत्र ही लिया गया है।

कर्ता कारक (भूतकाल) में ने प्रत्यय सहित होनेवाला रूप "सोने" इन पत्रों में अप्राप्त है।

"सो" कर्म और संप्रदान— "सोकुं"

कर्म संप्रदान कारक में "सोकुं" का प्रयोग मिलता है। उदा०—

"सरकार को ठांना ... हैं सोकुं खीचल न होय।" (प. ११५)

करण और अपादान कारक का कोई रूप इन पत्रों में नहीं मिलता।

"सो" संबंध कारक— सोकी

संबंध कारक में "सोकी" यह रूप मिलता है। उदा०—

"आगोंहीसो स्नेह छै सोकी ही वृध्धी करना।" (प. ११३)

सो अधिकरण कारक— सोमो

"सोकुं खीचल न होये. सो करीयो सोमो संतौष छै।" (प. ११५)

बलयुक्त प्रयोग में "सो" के साथ ऊ का प्रयोग मिलता है। उदा०

"एक गाउ सहबाजपुर करि दवो सोऊ ... छूटि गवो है।" (प. ६०)

"हमारी हकीकति है सोउ अपुन को सब मालुम है।" (प. ६७)

निश्चयवाचक सर्वनाम "सो" कारकीय रूप—

कारक	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	सो	सो
अन्य रूप	सौ	—
भूतकाल कर्ताकारक	अप्राप्त	—
कर्म और संप्रदान	अप्राप्त	—
अन्य रूप	सोकुं	—
करण और अपादान	अप्राप्त	—
अन्य रूप	,,	—
संबंध	,,	—
अन्य रूप	सोकी	—
अधिकरण	अप्राप्त	—
अन्य रूप	सोमो	—

निश्चय वाचक सर्वनाम "सो" और "तौन"

"यह सर्वनाम बहुधा सम्बन्ध वाचक सर्वनाम "जो" के साथ आता है, और इसका अर्थ संज्ञा के वचन के अनुसार "वह" अथवा "वे" होता है। (प)

निश्चय वाचक सर्वनामों में एक सर्वनाम "तौन" है। आज की प्रचलित हिन्दी भाषा में "तौन" और उसके कारकीय रूप प्रचलित नहीं हैं अतः तौन के ये रूप "सो" के रूप माने जाने लगे हैं। "तौन" पुरानी भाषा में "जौन" का नित्य संबंधी हैं। "तौन" अब प्रचलित नहीं है, परन्तु उसके कोई कोई रूप "सो" बदले और कभी कभी "जिस" के साथ आते हैं। (फ)

"अ ग्रामर आप हिन्दी लैंग्वेज में (प. १९९ चार्ट ११ में) भी "तौन" के रूप सो के अन्तर्गत रखे गये हैं। (ब)

प्रस्तुत पत्रों में "तौन" के रूप बहुतायत से और विभिन्न कारकों में मिलते हैं अत. उन्हें "सो" के रूपों से अलग माने गये हैं। उन्हें अलग मानकर ही उनका अध्ययन किया गया है।

निश्चय वाचक सर्वनाम "तौन"—

प्रस्तुत पत्रों में से अनेक पत्रों में "तौन" के भिन्न भिन्न कारकों में होने वाले रूप मिलते हैं। ये रूप सभी कारकीय प्रत्ययों सहित होने वाले रूप हैं और विपुलता से मिलते हैं। अतः इन रूपों का अध्ययन "वह" या "सो" के रूपों के साथ नहीं बल्कि स्वतन्त्र रीति से किया गया है।

तोन—

एक वचन में तोन का प्रयोग मिलता है तथा ब. व. में "ते" का प्रयोग है। ए. व. में कहीं "ते" के स्थान पर "तै" रूप भी मिलता है। उदा०—

"जिहमै राज्य कौ सुधार होइ तोन आतुकौ करनौ है।" (प. १०२)

यह रूप बुन्देली, ब्रज (भ) तथा अवधि और भोजपुरी में मिलता है। (म)

(प) हिन्दी व्याकरण पृ. ८७।
(फ) हिन्दी व्याकरण पृ. २४३–४४।
(ब) "केलाग" हिन्दी ग्रामर पृ. १९९ चा. ११।
(भ) बुन्देली का भाषा शास्त्रीय अध्ययन पृ. ९६।
(म) "केलाग" हिन्दी ग्रामर चार्ट १९।

कहीं ते के स्थान पर तैं का प्रयोग मिलता है। उदा०—

"खंडी के पैसा जे है "तैं" देनी है ही।" (प. ७६)

वलयुक्त प्रयोग में तौनऊ का प्रयोग मिलता है। उदा०—

"हम तौ तौनऊ तरह समुझै है।" (प. १०२)

तीन— कारकीय प्रयोग

कर्म और संप्रदान	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	तिसे, तिसको (अप्राप्त)	तिनको (अप्राप्त)
अन्य रूप	ताकौ, ताकु	तिनकौ, तिनिकौ।

एक वचन में होनेवाले "तिसे" या "तिसको" ये रूप पत्रों में अप्राप्त हैं। अन्य रूपों में मिलनेवाले रूपों में एक रूप ताकौ है।

उदा०—

"जो हकीकति अपनी जाहिर करै "ताकौ" तुम इनको गोर पसमानो कीजो।" (प. ३८)

यह रूप ब्रजभाषा में मिलता है। (य)

कहीं "ताकु" यह रूप मिलता है। उदा०

"पत्री वाचु सुनावे ताकु भागीरथी सदा साइयै।" (प. ४८)

बहु वचन में "तिनकौ" रूप मिलता है। उदा०

"श्री पंडित दीवान जू है तिनकौ कछु वा अत्यारही नाही।" (प. ३५)

यह रूप बुन्देली भाषा का है। (र)

कहीं तिनिकौ यह रूप मिलता है। उदा०-

"श्री वीसाजी कृस्न अैसे बडे सिरदार है जिनि .... तिनिकौ यह हमारा कामु सावारन ई है। प. ८)

यह रूप ब्रज भाषा में मिलता है। (ल.)

(य) "केलाग" हिन्दी ग्रामर पृ. १९६ चा. ११

(र) बुन्देली का भाषा शास्त्रीय अध्ययन पृ. ६१-८३

(ल) केलाग हिन्दी ग्रामर पृ. १९६ चा. ११

करण और अपादान कारक—

	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	तिससे (अप्राप्त)	तिनसे (अप्राप्त)
अन्य रूप	तासूं. तासों, तासौ	
	तिसु, तिहितै, तीथी	

अन्य रूपों में एक रूप "तासूं" मिलता है। उदा०—

(क) "उनोने हमको लिषा तासूं मालुम हुये।" (प. ११६)

कहीं "तासों", "तासौ" ये रूप मिलते हैं। उदा०—

(ख) "जो हमकों द्रव्य दीनी तासों ... कन्याको विवाह भयौ।" (प. ६४)

"कृपा महैरवानगी आगै है तासौ विसेष रहै।" (प. ५८)

उदाहरण (क) में ह्रस्वदीर्घ तथा अनुनासिकता की संदेहात्मकता को स्वीकार करने से यह रूप—"तासु" ब्रजभाषा में मिलता है।[व]

(ख) में मिलने वाले रूप "तासों" और "तासौ" ये रूप ब्रज भाषा में मिलते हैं।[श]

"तौनका" विकृत रूप कहीं "ती" होकर उसके आगे प्रत्यय जोड़े गये हैं। उदा०—

(क) "कृपा मेहरवानगी फुरमावो छो तिंसु विसेष ज्यादा फुरमावोगा।" (प ११८)

यह रूप राजस्थानी में मिलता है।[ष]

(ख) "अब लिखाई पठैबी तिहितै षुशहाली होइ।" (प. ५) यह रूप ब्रजभाषा में मिलता है।[श]

एक रूप "ती" भी मिलता है। उदा०—

"हेत इषलास राषो छो तीथी बीसेष रषावजो।" (प. १५६)

इस रूप में ती इस विकृत रूप में "थी" यह गुजराती भाषा में मिलने वाला

(व) ब्रजभाषा पृ. ७५, "केलाग" हिंदी ग्रामर, पृ. १९६ चा. ११

(श) सूर की भाषा, पृ. २५२

(ष) राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. ५३

अपादान कारक का प्रत्यय जोड़ा गया है। (स) अतः यह रूप एक विशेष रूप है। कारण गुजराती में ए. व. में च छे "तेथी" रूप मिलता है। (ह)

ब. व. में "तिनिसौ" रूप मिलता है। उदा०-

"वा गादी पै अब आपु ही तिनिसौं जुदे नाही।" (प. ३५)

यह रूप व्रज भाषा में मिलता है। (अ)

"मातबर आदमी भेजीने "तीर्णास्यो' सलुप हगी भांत करीने।" (प. ११५)

यह रूप राजस्थानी का होगा कारण एक तो यह पत्र राजस्थान में जयपुर के राजा को भेजा गया है और दूसरे तिणां यह विकृत रूप राजस्थानी में ही मिलता है। (इ)

तीन संबंध कारक	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	तिसका – की – के (अप्राप्त)	तिनके (अन्य अप्राप्त)
	तीसकी, ताके, ताकी	तीनको

ए. व. में मिलनेवाले पुल्लिंग रूप तिसका, तिसके इन पत्रों में अप्राप्त हैं। स्त्रीलिंग का तिसकी यह रूप मूल रूप में नहीं मिलता। उसके स्थान में दीर्घता से युक्त रूप मिलता है। उदा०

"तीन पीढ़ी को स्नेह चलता आया तीसकी अभिवृधि करना। (प. १२२)

यह खड़ी बोली का ही रूप है।

अन्य रूपों में एक रूप "ताके" मिलता है। उदा०-

"जो कोई साहिब फौज हिन्दुस्तान को जाइ ताके नाउ लिपाउनो।" (प. ३८)

स्त्रीलिंग ए. व में ताकी यह रूप मिलता है। उदा०

"उधार लये रुपेया अठ हजार ताकी बीदी।" (प. ३१)

संबंध कारक ए. व. में मिलने वाले रूप व्रजभाषा में मिलते हैं। (उ)

(स) गुजराती भाषानु बृहद व्याकरण, पृ. १४७

(ह) ,, ,, पृ. १६८

(अ) "केलाग" हिन्दी ग्रामर पृ. १९६ धा. ११., व्रजभाषा, पृ. ८५

(इ) ,, ,, ,,

(उ) सूर की भाषा, पृ. २५२।

ये रूप प्रधानतया सार्वनामिक विशेषण के स्थान में प्रयुक्त किये गये हैं।

ब. व. के मूल रूप में "तिनके" यह रूप मिलता है। उदा०—

"प्रोहत बिजेराम हरद्वार के तिनके आसीर्बाद बचने।" (प. ६)

अन्य रूपों में तीनकौ, तिनिकी (स्त्रीलिंग) ये रूप मिलते हैं। उदा०—

(क) "जोन गढी होय तीनकौ सब षरच सीबंदी को तुम देख लीजौ।" (प. ६१)

(ख) "जे पैमा...ठाढे भऐ हौ तिनिकी हजूर में कबुलति लिखिदेआवै।" (प.५३)

ये रूप भी ब्रजभाषा में मिलते हैं।

"तीन" अधिकरण कारक	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	तिसपर	—
अन्य रूप	तीसमे, तामै, तापर, तिहिमे, तिहिपर 'तेहीपै' त्वाम	

ए. व. में तिसपर यह रूप मिलता है। उदा०—

"सरकार में बोल राखी तिसपर फीरंग्या के साथ फौज देकर–)"(प. १३१)

अन्य रूपों में ए. व. में तीसमें 'तामे' तापर ये रूप मिलते हैं।

उदा०—(क) "नवाब की दोस्ती कदीम से चली आई तीसमे ... कारभारी ने खलसकीया।" (प. १५१) ह्रस्व दीर्घ की संदिग्धता को स्वीकार करके यह रूप तिसमें के समान ही माना जाये।

(ख) "...जागीर दई... लाष पांचकी तामै पटीलीलाष .. दई।" (प.१२)

(ग) "दर जबाब ईहोते पठाये हैं तापरसे हकीकती जानियो।" (प. १४५)

उदा०—(ख) में मिलने वाला रूप "तामै" ब्रजभाषा में मिलता है। (क)

(ग) में मिलने वाला तापर रूप भी ब्रजभाषा का हैं।

अन्य रूपों में "तिहि मे," तिहिपर "तेहीपै" ये रूप मिलते हैं।

उदा०—"अपुन कर दवो है तिहिमै जो बीच परि है।" (प. ४)

"हकीकति . . आई कही तिहिपर मुहैं करने हती ..।" (प. ४)

"द्वारिका कैमी छाप हे तेहीपे नजरि राखे रहिबी।" (प. १०)

ये सभी रूप बैसवाड़ी में मिलते हैं। (ख)

(ख) "केलाग" हिन्दी ग्रामर पृ. १६६ चा. ११ और पृ. १२० टे २।

(क) सूरकी भाषा पृ. २५२।

एक रूप "त्यामे" मिलता है। उदा०

"तुर्तकी कीस्तनंदी कीयीछे त्यामे ऐक लक्ष नवहजार रुपीये रहे छे।"
(प. १२५)

यह रूप "बुंदेली" भाषा में मिलता है।

ब. व. में दो रूप "तीणमे" और "तीनमे" मिलते हैं। उदा०

"विलायत से घोड़े जैपुर में सवदागर ले आए है तीणमे तुरकी घोड़े है।"
(प. १४७)

"घोड़े विलायत से आए है तीन मे घोड़े ... तुरकी, चालाख ...।"
(प. १४७)

ये दोनों रूप एक ही पत्र में मिलते हैं। एक रूप में मूर्द्धन्य अनुनासिक 'ण" का प्रयोग है और दूसरे में वत्स्र्य अनुनासिक "न" का। यह पत्र "माधौरावजी" सिंधिया के द्वारा जयपुर के राजा सवाई प्रताप सिंघ को लिखा है। पत्र में प्राप्त भाषा शैली को देखते हुए "तीणमे" रूप स्वीकृत किया गया है। यह रूप राजस्थानी का है। राजस्थानी में अधिकरण कारक ए. व. में "तिणमे" रूप मिलता है।

(ग) यहाँ यह ब. व. में प्रयुक्त किया गया है।

संबंध वाचक सर्वनाम "तीन" कारकीय रूप

कारक	ए. व.	ब. व.
मूल रूप	तीन	ते
अन्य रूप	—	तैं
भूतकाल कर्ताकारक	अप्राप्त	अप्राप्त
कर्म और संप्रदान	(तिसे, तिसको) अप्राप्त	(तिनको) अप्राप्त
अन्य रूप	ताको, ताकु	तिनको, तिनिको
करण और अपादान	(तिससे) अप्राप्त	(तिनसे) अप्राप्त।
अन्य रूप	तासूं तासों, तासो तिसूं, तिहिते, तीथी	तिनिसो, तीणास्यो
संबंध	(तिसका-के-की) अप्राप्त	(तिनके) अप्राप्त
अन्य रूप	ताके-ताकी, तीसकी	तीनको

(ग) राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. ५४।

अधिकरण	तिसपर	(तिनमे) अप्राप्त
अन्य रूप	तामे, तापर, तिहिमे तिहिपर, तीसमें, तेंही पै, त्यामे	तीनमे, तीएगे

निष्कर्ष

(१) इन पत्रों में निश्चय वाचक सर्वनाम "तौन" के कारकीय रूप प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

(२) मूल रूप "तौन" और "ते" का प्रयोग प्रस्तुत पत्रों में मिलता है।

(३) मूल रूप में होने वाले "तौन" के कारकीय रूप अप्राप्त से हैं किन्तु उनके स्थान में अन्य रूप सभी कारकों में मिलते हैं।

(४) इन रूपों में "ता" इस एक व. के विकृत रूप के साथ परसर्ग जोड़कर बने रूप अधिक मात्रा में मिलते हैं।

(५) अतः " तौन " के विकृत रूप " तिस " की अपेक्षा " ता " रूप अधिक प्रचलित था।

प्रश्नवाचक सर्वनाम "कौन" और "क्या"

इन सर्वनामों का प्रयोग प्रस्तुत पत्रों में अत्यन्त कम मात्रा में मिलता है।

कौन — इस सर्वनाम का प्रयोग मूल रूप में विशेषण के अर्थ में किया गया है।

उदा०—(क) "बालाजी ताकीदि कौन सब्ब लिखाई।" (प. १३)

(ख) "तोफोकी वात कौन बड़ी है।" (प. ३)

पहले उदाहरण में कौन का प्रयोग "किस" के अर्थ में किया गया है। द्वितीय उदाहरण में कौन शब्द द्वारा परिमाण की मात्रा सूचित की गयी है।

दोनों ही उदाहरणों में " कौन " सर्वनाम द्वारा अचेतन का अर्थ वोध होता है।

एक स्थान में प्रश्न वाचक "कौन" के स्थान में "कौ" का प्रयोग मिलता है।

उदा०—

"अपनी उत्तनपर कौ नाही लरतु भिरतु।" (प. ५३)

यह सर्वनाम चेतन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह रूप व्रजभाषा में मिलता है। (क)

(क) "केलाग" हिन्दो ग्रामर, पृ. १९६ टे. १२

क्या—

प्रश्नवाचक सर्वनाम क्या तथा उसके समानार्थी प्रयुक्त शब्दों का प्रयोग भी प्रस्तुत पत्रों में अत्यंत कम मात्रा में मिलता है।

"क्या" ठीक प्रयोग मिलता है। उदा०—

"भौत रोज से मीलने की इच्छा थी परन्तु क्या करें।" (प. ३)

"क्या" सर्वनाम के स्थान में "का" का प्रयोग कुछ पत्रों में मिलता है।" उदा०—

"वहुत का लीखे" (प. १०६, १०७)

"क्या" के स्थान "का" का प्रयोग व्रज, अवधी, भोजपुरी में मिलता है। (ख)

अनिश्चयवाचक सर्वनाम "कोई" और कुछ

कोई :

प्रस्तुत पत्रों में स्वतंत्र रीति से अनिश्चयवाचक सर्वनाम "कोई" का प्रयोग नहीं मिलता। "कोई" का प्रयोग सार्वनामिक विशेषण के रूप में मिलता है। उदा०—

"अब भी कोई प्रकार जुदाई नही।" (प. ६५)

कोई के स्थान में प्रयुक्त अन्य सर्वनाम "कोउ", "काहू" इत्यादि भी सार्वनामिक विशेषण के रूप में ही प्रयुक्त किये गये हैं।

कुछ :

प्रस्तुत पत्रों में "कुछ" सर्वनाम का प्रयोग कहीं कहीं मिलता है। उदा०—

(ख) अब कुछ दिनन ते मंगलपुर मो...वास है। (प. ६०)

(क) हमारो करो कुछ होत नाही। (प. ६०)

उदाहरण (क) में कुछ का प्रयोग एक वचन में किया गया है।

,, (ख) में उसका प्रयोग वहु वचन में किया गया है।

कुछ के स्थान में मिलनेवाले अन्य रूप "कछु", "कुछु", ये हैं।

उदा०—"हम ... संकोच सो कछु कहत नाही।" (प. ५३)

"कछु" यह रूप व्रज, कनोजी इत्यादि भाषाओं में मिलता है (ग)

कहीं कुछु का प्रयोग भी मिलता है। उदा०—

"कुछु इटावो फफूद मो कुछु सफूरावाद मो या तरह निर्वाह विद्यार्थिन को और कुटुम्ब को होत रहै।" (प. ६०)

(ख) "केलाग" हिन्दी ग्रामर, पृ. १६६ चा. १२

(ग) "केलाग" हिन्दी ग्रामर, पृ. १६६ चा. ११

यह रूप मगही तथा मैथिली बोलियों में मिलता है। (ग)

"कछु" तथा अन्य रूपों का प्रयोग सार्वनामिक विशेषण के अर्थ में हुआ है।

कारक प्रत्यय

प्रत्येक भाषाकी जो विशेषताएँ अन्य भाषाओं से भिन्न लक्षित होती हैं उनमें "शब्दों के रूप" विकारी शब्द प्रमुख स्थान रखते हैं। शब्दों के रूप बनाते समय इनमें जोड़े गये उपसर्ग, परसर्ग और प्रत्यय भी हैं। परसर्गों के अन्तर्गत कारकीय रूपों में लगने वाली विभक्तियाँ हैं जिन्हें कारक प्रत्यय कहा जाता है।

मराठी में इन कारकों को विभक्ति कहा जाता है। (क) और इन के प्रत्ययों को विभक्ति प्रत्यय कहा जाता है। (ख)

राजस्थानी भाषा में भी आठ कारक हैं और उनके नाम भी हिन्दी के समान ही हैं। (ग)

गुजराती में इन कारकों को "विभक्ति" कहा जाता है और कारक प्रत्ययों को विभक्ति प्रत्यय कहा जाता है। (घ)

प्रत्येक भाषा के अपने कारक-प्रत्यय या विभक्तियाँ भिन्न भिन्न है और इनसे ही भाषा भिन्नता का रूप स्पष्ट होता है।

संस्कृत में छः ही कारक माने जाते हैं इन कारकों में संबंध कारक का स्थान नहीं है। संबोधन कारक को भी अलग कारक नहीं माना गया है।

हिन्दी वैयाकरणों में कारक संबंध में होने वाले विभिन्न मतों को देखते हुए हम हिन्दी व्याकरण के निष्कर्ष को स्वीकृत कर सकते हैं।

हिन्दी में कारकों की संख्या आठ मानी गयी है। हिन्दी की निकटवर्ती भाषाओं में भी इनकी संख्या लगभग उतनी ही हैं। इन कारकों के नामाभिधान भी भिन्न भाषाओं में भिन्न प्रकार हैं। उदा०—

(ग) केलाग : हिन्दी ग्रामर, पृ. १९६ चा. ११।
(क) मराठी शास्त्रीय व्याकरण, पृ ३३३।
(ख) म. शा. व्याकरण, पृ. ३५४।
(ग) राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. ४९।
(घ) गुजराती भाषानु बृहद व्याकरण, पृ. १२९।

(१) हिन्दी में आठ कारक है उनके नाम हैं—कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, संबंध, अधिकरण, संबोधन। (च)

(२) व्रजभापा में कारकों की यही संख्या है और उनके नाम भी यही हैं। (छ)

(३) राजस्थानी भापा में आठ कारक होते हैं—वे हिन्दी के समान ही हैं। (ज)

(४) मराठी में सात कारक (विभक्तियाँ) माने गये हैं उनके नाम हैं—

प्रथमा, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, पष्ठी, सप्तमी और संबोधन। (ट) इसमें द्वितीया को स्थान नहीं किन्तु कुछ अन्य वैयाकरण "द्वितीया" विभक्ति को अंतर्भूत करके आठ विभक्तियाँ (कारक) मानते हैं।

(५) गुतराती में सात कारक माने जाते हैं, उनके नाम– पहैली, बीजी, त्रीजी, चोथो, पांचमी, छठी, सातमी। (झ)

गुजराती में संवोधन को प्रथमा का विशेप अर्थ से प्रयुक्त कारक माना जाता है। एक अलग कारक नहीं। (झ)

हिन्दी में "कारक" शब्द से जो अर्थ प्रकट होता है वही अर्थ मराठी-गुजराती इत्यादि भापाओं में "विभक्ति" शब्द से होता है। हिन्दी में होने वाले "विभक्ति" शब्द का अर्थ मराठी, गुजराती आदि भापाओं में "विभक्ति–प्रत्यय" या "परसर्ग" शब्द के द्वारा प्रकट किया जाता है। (ठ)

सुविधा के लिये इस अध्ययन मे "परसर्ग" शब्द प्रयुक्त किया गया है।

इन विभिन्न परसर्गों का संबंध प्रधानता संज्ञा सर्वनाम और विशेपण से रहता है और इन परसर्गों को जोड़कर ही शब्दों का कारकीय रूप बन जाता है।

(च) हिन्दी व्याकरण, पृ. २२०।
(छ) सूरकी भापा, पृ. १५५।
(ज) राजस्थानी भापा और साहित्य, पृ. ४६।
(ट) मराठी शास्त्रीय व्याकरण, पृ. ३५४, ३५५।
(झ) गुजराती भापानु बृहद व्याकरण, पृ. १२२।
(ठ) ,, ,, पृ. १२१।

प्रस्तुत पत्रों में भिन्न भाषाओं के परसर्ग मिलते हैं। हिन्दी, व्रज, राजस्थानी इत्यादि भाषाओं के परसर्ग अधिकता से मिलते हैं और मराठी गुजराती इत्यादि भाषाओं के परसर्ग अल्प परिमाण में प्राप्त हैं। इस विभाग में परिसर्ग या विभक्तियों का अध्ययन प्रस्तुत है।

कारकों का अर्थ दो रीतियों से प्रकट किया जाता है। प्रथम परसर्ग सहित, द्वितीय परसर्ग रहित, द्वितीय परसर्ग रहित कारकीय प्रयोगों की अपेक्षा परसर्ग सहित रूप भाषा अध्ययन की दृष्टि से अधिक महत्व पूर्ण है अत: मुख्यतया उनका ही अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

इस अध्ययन में हिन्दी के परसर्ग मूल रूप में ले लिये हैं। और अन्य भाषाओं से प्राप्त परसर्ग "अन्य रूप" माने गये हैं। कुछ परसर्ग अधिकता से मिलते हैं। फिर भी उनके एक या दो उदाहरण दिये गये हैं।

कारकों के प्रयोग—

कर्ताकारक :	मूल परसर्ग	ने
	अन्य,,	ने, न,

हिन्दी में कर्ताकारक बोधक परसर्ग "ने" है। यह परसर्ग पश्चिमी हिन्दी में मिलता है। थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ यह परसर्ग हिन्दी की कुछ बोलियों तथा अन्य भारतीय आर्य भाषाओं में भी मिलता है। प्रस्तुत पत्रों में "ने" परसर्ग का प्रयोग अनेक पत्रों में प्राप्त है। उदा०—

(क) गोपाल राव बापुजी ने हकीकत लिखा पठवाए। (प. १)

(ख) सभाने...सदर की खाना खोदी करके लाखों रुपैया पैदा करे।" (५६)

यह परसर्ग हिन्दी और उसकी अन्य उपभाषाएँ बुन्देली, कनौजी में (ड) तथा व्रजभाषा में भी मिलता है। (ढ)

कर्ताकारक "ने" के स्थान में प्रयुक्त अन्य मुख्यतय: "नै" है। उदा०—

"हमनै...पंडित की मदद करनै कों...कूच किया।" (प. ५६)

"गनेस संभानै मुकासदार कों अचानक आंड़ि घेरा।" (प. ५६)

यह परसर्ग व्रजभाषा, बुन्देली में मिलता है। (ड) तथा मरवा मिलता है। (ण)

(ड) हिन्दी कारकों का विकास, पृ. २३

(ढ) सूर की भाषा, पृ. १५६

(ण) निमाणी और साहित्य, पृ. ७७

"एक स्थान में "न" का प्रयोग मिलता है, उदा०—

"श्री बावासाहिब न फुरमाया की हम पहला जाते हैं। (प. १८)

यह अशुद्ध लेखन का प्रयोग है।

कर्मकारक—

मूल परसर्ग — को

अन्य,, — कुं, कु, कूं, कू, कों, को, कौं, कौ, ने

हिन्दी कर्म–कारक बोधक परसर्ग "को" अनेक पत्रों में मिलता है।

उदा०—"गोपालराव आपुजी को लिखा पठवाए हैं।" (प. १)

"हमको प्रम आनन्द होइ।" (प. ५६)

इस "को" परसर्ग के स्थान में प्रयुक्त अन्य परसर्गों कों, कोँ हैं जो सानुनासिक हैं। उदा०—

"हमने...मनसुवा की पेसबंदी कौं वा पंडीत की मदत करने को...कूच किया। (प. ५६)

"जो सरकार का तशरीफ ल्यावना हिंदुस्तान कोँ जदल होय...करैं (प.१०८)

"हमारे लोगों कोँ...करौली ताँई पहुँचाय देवें। (प. २०५)

ये दोनों रूप समान ही माने जा सकते हैं। यह रूप व्रजभाषा में मिलता है।(त)

दक्खिनी हिंदी में "को" परसर्ग का प्रयोग अधिक होता है। (थ)

अन्य परसर्गों में औकारान्त परसर्ग कौं, कौ है। उदा०—

"मतलब सब तुमकौं मालुम है। (प. ३)

"...सो आपकौ जाहिर करेंगे।" (प. १)

"गुमास्ता जौहरी कौ मेल्याँ है। (प. २)

अनुनासिकता की संदेहात्मकता से ये दोनों परसर्ग भी समान हो सकते हैं। यह परसर्ग व्रजभाषा और मैथिली में मिलता है। (द)

कहीं परसर्ग "कुं, कु और कूं, कू" मिलते हैं।

(त) व्रजभाषा, पृ. ८५

(थ) दक्खिनी हिन्दी, पृ. ५४

(द) "केलाग" हिन्दी ग्रामर पृ. १२० चार्ट २ और व्रजभाषा, पृ. ८५

उदा०—"तुमकु बुलाय भेजते हैं।" (प. १८)
"आप उसकु सेवट निभावोगे।" (प. १२२)
"सकल सभाकू गंगाजी सहाय।" (प. ६)
"पंडत मलार कूं लिषे है।" (प. ११०)

ये भिन्न रूप समान माने जायें। यह परसर्ग ब्रजभाषा (त) राजस्थानी (ध)
आग्रा की बोली (न) तथा दक्खिनी हिन्दी में मिलता है। (

विशेष प्रयोग—

(अ) इन परसर्गों के अलावा एक विशेष "नें" या "ने" कर्मवाचक के अर्थ में पत्रों में मिलता है, उदा०—
"आपकी तरफ सों हरलाल खानसामानें भेजो छै।" (प. १२३)
"राजने मालुम हो यों वास्तें लिष्यौ है।" (प. १३१)

यह परसर्ग कर्मकारक के अर्थ में राजस्थानी (ब) और गुजराती में (भ) प्रयुक्त होता है।

(आ) एक परसर्ग "हें" भी मिलता है, उदा०—
"म्हाहें तो म्हाराजकि प्रसन्नता राखणि।" (प. ११८)
यह परसर्ग राजस्थानी के वैकल्पिक रूप में मिलनेवाला प्रत्यय है। जैसे "हमें"

करण-कारक

मूल परसर्ग	से
अन्य परसर्ग	सां, सी, सुं, सु, सू, सूं, सें, सैं, सै, सों, सों, सौ, स्यौं, तें, ते, तैं, तें, ।

हिन्दी का करण-कारक का परसर्ग "से" कतिपय पत्रों में मिलता है—

(त) ब्रजभाषा, पृ. ८५
(ध) राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. ५०
(न) आग्रा जिले की बोली, पृ. ५१
(फ) दक्खिनी का गद्य और पद्य, पृ. १३६
(ब) राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. ५०

उदा०—"हमेंशा कृपापन्न से याद फरमाया कीजियेगा। (प. १०८)
"से" के स्थान में प्रयुक्त अन्य परसर्गों में "सु, सूँ" है उदा०—
"ईठांका समाचार श्री......जी री कृपासुं मला छै।" (प. ११६)
"पंडत मलार रघुनाथ सूं कहै थे। (प. ११६)
"राज्य का लिख्या सू मालु हुवा।" (प. १२२)
—ह्रस्व दीर्घ तथा अनुनासिकता का संदेह स्वीकार कर ये रूप एक ही माने जा सकते हैं। ये रूप व्रजभाषा में मिलते हैं। (म) और राजस्थानी भाषा में भी मिलते हैं। (य)

कहीं सानुनासिक "सें" प्रयोग मिलता है। उदा०—
"महाराज का भरोसा हमको सब सूरत सें है।" (प. १०६)
इसके अतिरिक्त "सैं सें" परसर्गों का प्रयोग भी मिलता है। उदा०—
" जो कुछ दुखसें मेरा हवाल होइया है।" (प. ४७)
"हमारी तो भलौ खावंदो के भले सें हैं।" (प. ५६)

ये परसर्ग व्रजभाषा राजस्थानी और बुंदेली में (र) मिलते हैं।
कहीं कहीं "सौं, सों, सो" का प्रयोग मिलता है। उदा०—
"अपने मुनसद्दिव सों कहिदीवाँ जु......।" (प. २८)
"श्री बालाजी गंगाधर जू के प्रेरणा सौं आपको लिखो है।" (प. ६०)
"आपुके तेजप्रताप सौ ईहां के समाचार भले है।" (प. २६)

ये परसर्ग एक ही मानना चाहिए। ये व्रजभाषा (ल) में मिलते हैं।
कहीं "सों" परसर्ग भी प्रयुक्त किया गया है। उदा०

"केतेक स्नेह सों लिपो थी। (प. ११३) यह व्रजभाषा में मिलता है। (ल)

(भ) हिंटस् ऑन दि स्टडी ऑफ गुजराती, पृ. ७७
(म) व्रज भाषा पृ. ८८, सूर की भाषा, पृ. १५६
(य) राजस्थानी भा. औ. सा., पृ. ५०
(र) बुंदेली का भाषा शा. अध्ययन, पृ. ८४
(ल) व्रजभाषा पृ. ८८, और सूरकी भाषा, पृ. १५६

एक पत्र में "सौ" परसर्ग मिलता है। उदा०—

"आफत सीरकार सौ दीवाबें।" (प. ३४)

यह परसर्ग राजस्थानी (व) में मिलता है। इनके अलावा दो विशेष परसर्ग "स्यो" तथा "सी" (नसी) मिलते हैं, उदा०—

"तीगास्यो सलूख हरीमांत करीने।" (प. ११५)। यह परसर्ग राजस्थानी भाषा में मिलनेवाले "स्यउ" का रूपांतर मानना चाहिए।

द्वितीय परसर्ग "सी" है। उदा०—

"तहनमा श्रीमंत ... के मोहरन सी आपने तरफ ले आते है। (प. ७७) यह परसर्ग "सी" मराठी करण-कारक परसर्ग "शीं" का रूपान्तर मानना ठीक होगा। (यह पत्र पूना से चिटनीस द्वारा लिखा है।)

संप्रदान कारक

कर्म तथा संप्रदान कारक के परसर्ग एक ही हैं किन्तु प्रस्तुत पत्रों में संप्रदान कारक में प्रयुक्त परसर्गों की संख्या सीमित है। निम्न लिखित संप्रदान के परसर्ग हैं।

मूल परसर्ग — को

अन्य परसर्ग — कुं, कु, कों, कौं, कौ

मूल परसर्ग को इन पत्रों में प्रयुक्त किया गया है, उदा०—

"बलवंतसीघ को ... रामराम वंचणाजी।" (प. १८)

"दुर्गाबाई को खाणे पीणे को ... दींवाय दीजो।" (प. ३०)

इस परसर्ग के स्थान में प्रयुक्त परसर्ग कुं, कु हैं, उदा०—

"असवार भेज है इनकुं रु. ५० पचास दीजो।" (प. २५)

"हमकु येक ताड पीछोड़ी बतावते हैं।" (प. २०)

ये परसर्ग ब्रजभाषा तथा (क) दक्खिनी हिन्दी (ख) में मिलनेवाले "कूं, कू" दीर्घ परसर्ग मानने चाहिये।

कहीं आनुनासिक "कों" परसर्ग मिलता है। उदा०—

"हमने ... मनसुबा की पेसबन्दी कों वा ... मदत करने कों"

(व) राजस्थानी भा. और सा., पृ. ५०

(क) ब्रजभाषा, पृ. ८५

(ख) दक्खिनी का पद्य और गद्य, पृ. १४५

सीरोज से कुच किया ।" (प. ५६) यह परसर्ग भी व्रजभाषा में मिलता है।[क]

कहीं कौं, को, परसर्ग प्रयुक्त किये गये हैं। उदा०—

"हम पैसा देवे कौं त्यार है ।" (प. ३६)

"तुमको चाकर राखे ।" (प. ५२)

"राजा मानसिंघजू कौं ... तागीति लिखी ।" (प. ४५)

ये परसर्ग व्रजभाषा में मिलते हैं। [क]

अपादान कारक—

करण और अपादान कारक के परसर्ग एक ही हैं। किन्तु प्रयोग के कारण उसमें कारक भिन्नता आ जाती है। प्रस्तुत पत्रों में अपादान कारक में प्राप्त परसर्ग निम्नलिखित हैं—

मूल परसर्ग — से

अन्य परसर्ग — ते, तैं, तै, थी, सु, सूं, सें, सैं, सै, सां।

मूल परसर्ग "से" का प्रयोग। उदा०—

"हमारे बाप ताता ... ईहासे बीदा होय ... ।" (प. २०)

इसके अलावा "ते, तें, तै," परसर्ग भी पत्रों में मिलते हैं। उदा०—

"इहांते राजश्री अंबाजी इंगले ... भेजा है।" (प. १३६)

"इहातें पं. श्री ... गोपालमनि पठवाये हैं।" (प. २३)

"अधिक दिननि तैं अपनै पाती सुभ समाचार नाही आये ।" (प. ५)

एक परसर्ग "थी" मिलता है। उदा०—

"हेत इखला स राखो तो थी विसेष रखावजो जी ।" (प. १५८)

"उणा मे भी ऐक गाम वाईजीकु दीलावाय जो। (प. ३०)

यह परसर्ग राजस्थानी और गुजराती में मिलता है। [ग] और उसी के प्रभाव से यहां आया है क्योंकि ये पत्र उसी प्रदेश से सम्बन्धित हैं।

अन्य परसर्गों में "सु, सू" परसर्ग हैं जिनका प्रयोग अपादान कारक में किया गया है। उदा०—

(क) व्रजभाषा, पृ. ८५

(ग) राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. ५० और गुजराती भाषानु बृ. व्या. पृ. १८७।

"अैलामु मातबर आदिमी ... की साथि पाछाही सू सिताव भेजा छा।
(प. १२२)

ये परसर्ग राजस्थानी भाषा [घ] में मिलने वाले "सू" के ही रूप मानना चाहिए।

इनके अलावा अपादान कारक में सें, सौ परसर्ग भी प्रयुक्त किये गये हैं।
उदा०—

"सौ आप जयपूर सें ईनके लार प्यादे देके...पोहचाय देवाला ओ।" (प. १२७)

"पूने से दस कोस आया।" (प. १३१)

"परौरीया सौ राजिश्री...कैनि रामराम अंच्ये।" (प. १६)

ये परसर्ग व्रजभाषा में मिलने वाले हैं। [च]

सम्बन्ध कारक—

मूल परसर्ग का – के – की

अन्य परसर्ग कों, को, कौ, कें, कै, चे, नो, नी, रा।

हिन्दी में मिलने वाले पुल्लिग के "का, के" और स्त्रीलिंग का "की" परसर्ग अनेक पत्रों में मिलते हैं। उदा०—

"कागद का जवाब हम दैइगे।" (प. ७)

"सब चीनौर की राह चले।" (प. ७)

"दीछीत के पुत्र तथा पोताकुं ताकीद करके।" (प. ३०)

पु. ए. व. "का" परसर्ग के स्थान में "कों या को" प्रयोग मिलता है। उदा०

"इनोंकों यो मनसुवा थो।" (प. ५६)

"भगवानु आपको मनोरथु पूरन करि है।" (प. ४६)

"आपुको कृपा पत्र आयो...ताके दर्सन ते...।" (प. ४६)

इसी प्रकार "कौ, का" प्रयोग भी मिलता है। उदा०—

चीनौर तें मेघ सिघ कौ (का) कागद लै कै आयौ। (प. ७)

ये व्रजभाषा में मिलने वाले परसर्ग हैं। [छ] कहीं कहीं एक पत्र में

(घ) राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. ५०

(च) व्रजभाषा, पृ. ८८।

(छ) सूर की भाषा, पृ. १५६

पु. ए. व. संबंध कारक परसर्ग "का" और व्रजभापा का परसर्ग "कौ" का प्रयोग मिलता है। उदा०

"माधौसिंघ राजाकौ अमल सामहूर तैं उठादे यौ।" (प. ७)

कागद का जवाव हम देइगे। (प. ७)

"आपका सदा आरोगि चाहिज्ये।" (प. २२)

"ऐठ हुकम आपकौ जाणोला।" (प. २२)

एक पत्र में "कौ" परसर्ग कर्म, संप्रदान और संवंध कारक में किया गया है। उदा०

(क) "चीनोरवारे वंजारे कौ लै जाई।"

यह मुतसदी सिरकार कौ मिलौ।

"...राजा कौ अमल...उठा देयो।" (प. ७)

कहीं राजस्थानी भापा के संवंध कारक के परसर्ग "नो नी" पत्रों में मिलते हैं। उदा०

"तुम्हारे परगनानो अमल...कुसाजी पंडत कु फरमाया है।" (प. ३३)

"तुम्हारे गामनी खडणी होणे की हे। (प. ३३)

कहीं "रा" परसर्ग का भी प्रयोग मिलता है। उदा०—

"आठारा समाचार भला छै तमारा सदा भलाचाहिजे। (प. ७७)

यह राजस्थानी में मिलनेवाला परसर्ग है। (ज)

दो पत्रों में "चे" परसर्ग मिलता है। उदा०—

"मसरूचे ४ पान।" (प. २०)

"आपु साहिवजी स्वामी चे सेवेसे।" (प. ५१)

यह परसर्ग मराठी भापा का सम्वन्ध-कारक में मिलनेवाला है। (झ) यह प्रयोग एक विशेप प्रयोग है।

अधिकरण कारक—

मूल परसर्ग	में, पर, पै
अन्य परसर्ग	में, मै, मों, मां, मो, मी, मु, मा आंत, मध्यें, पैंकी।

(ज) राजस्थानी भापा और साहित्य, पृ. ५०

(झ) शास्त्रीय (मराठी) व्याकरण, पृ. ३६२

हिन्दी के अधिकरण कारक के परसर्ग "में" (मै) और "पर" कतिपय पत्रों में मिलते हैं। उदा०—

"पैसा की सरबराई न करी इसमें आछा नही।" (प. ७७)

खरखसी राज्य पर हरितरह तै भडाएँ रहत है।" (प. ७)

"पै" परसर्ग भी कतिपय पत्रों में मिलता है। उदा०—

',यह राज्य पै हम मरि है, मारि है।" (प. ४)

"जवाहर सिघ जाट वा बिजैसिघ सौ सामहर पैं मिलाप भयौ।" (प. ७)

वस्तुतः यह काव्य में मिलनेवाला परसर्ग है: प्रस्तुत पत्रों में "पै" का प्रयोग अत्यधिक परिमाण में मिलता है। अतः उस समय गद्य में भी यह परसर्ग प्रयुक्त होता था।

अन्य परसर्गों में "में, मै" का प्रयोग मिलता है। उदा०—

"वे पटधरि सलूक की तरह बाधि वे में आइ है।" (प. २)

"गाउनिमै प्यादे तुम्हारे इते।" (प. २)

ये परसर्ग ब्रज और राजस्थानी में मिलते हैं। (ट) "माँ, मों, मो" ये परसर्ग भी प्रस्तुत पत्रों में मिलते हैं। उदा०

"खरीता सरकार मों भेजा है।" (प. १०८)

"तु मंढलेसम मों बैठ।" (प. १८)

"जमा सीपकार मो रुपया।" (प. १७)

ये परसर्ग एक ही प्रकार के माने जायें। ये परसर्ग हिन्दी की अनेक बोलियाँ तथा उपभाषाओं में मिलते हैं। (ट) जैसे—कनौजी, कुमायुनी, भोजपुरी, मागधी, मैथिली इत्यादि।

एक परसर्ग 'मां" पत्रों में प्रयुक्त है। उदा०—

"खास असवारी हिन्दुस्थान मां आवती है।" (प. ७७)

यह राजस्थानी (ड) और गुजराती में (ढ) मिलनेवाला परसर्ग है।

कहीं "मु" परसर्ग मिलता है, उदा०—

"येते कपड़े मु येक पीछोड़ी देणे लगे।" (प. २०)

(ट) सूर की भाष, पृ. १५६ और राजस्थानी भाषा और सा, पृ. ५०

(ठ) "केलाग" हिन्दी ग्रामर, पृ. १२० टे. २।

(ड) राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. ५०

(ढ) गुजराती भाषानु बृहद व्याकरण, पृ. १६१

"कछु खातर मु न लाये।" (प. ११)

यह परसर्ग विशेष रूप से मारवाड़ी में मिलता है। (ण)

"आत, मध्यें, पैंकी" के शब्द परसर्ग के समान प्रयुक्त किये गये हैं, उदा०—

"ता माफक अमलात आवेगे ...। (प. ८)

"उन मध्ये आंगेभीराजको लिखा है।" (प. १३८)

"परगणे मजकूर पैंकी ... गाव।" (प. ७८)

ये मराठी के संबंध-सूचक (शब्दयोगी) अव्यय (त) हैं जो अधिकरण कारक के अर्थ में प्रयुक्त है।

कारक-परसर्ग—

कारक	मूल परसर्ग	अन्य परसर्ग
कर्ताकारक (भूतकाल)	ने	ने, न
कर्म कारक	को	कुं, कुं, कूं, कू, कों, कों, कोँ, कौ, ने।
करण कारक	से	माँ, सी, सुं, सु. सूं, सू सें, सैं, से, साँ, सौं, सो स्यो, तें, ते, तैं, तै, ।
संप्रदान-कारक	को	कुं, कु, कों, कौं, कौ ।
अपादान-कारक	से	सुं, सूं, सें, सैं, सै, सो, ते, तें, तैं, थी, ।
संबंध-कारक	का, के की,	कें, के, कों, को, कौ चे, नी, नो, रा।
अधिकरण-कारक	में, पर, पै	मु, मैं, मै, मों, मों, मो मो, मां आत, मध्यें, पैंकी।

(ण) निमाडी और उसका साहित्य, पृ. ८८

(त) व्यावहारिक मराठी व्याकरण, पृ. ३९०

निष्कर्ष—

(१) कर्ता कारक—बोधक परसर्ग "ने" है, उसका प्रयोग प्रस्तुत पत्रों में मिलता है। यह प्रयोग भूतकाल द्योतक क्रियाओं में मिलता है। यह प्रयोग सकर्म क्रियाओं के कर्ता में प्रयुक्त किया गया है। इसके स्थान में "ने" का प्रयोग मिलता है।

(२) कर्मकारक में प्रयुक्त परसर्ग "को" प्रस्तुत पत्रों में मिलता है। अन्य रूपों कों, कौ, कूं परसर्ग मिलते हैं। राजस्थानी में मिलनेवाला "ने" यह कर्म कारक परसर्ग कतिपय पत्रों में मिलता है। अन्य परसर्गों में "कूं, को, कौ, सानुनासिक अथवा अनुनासिक मिलते हैं।

(३) करण कारक का मूल परसर्ग अनेक पत्रों में मिलता है। अन्य रूपों में सुं, सूं, सें, सैं, सौं," आदि ब्रजभाषा तथा राजस्थानी भाषा के प्रयोग मिलते हैं। साथ साथ तें, तैं आदि सानुनासिक अथवा अनुनासिक प्रयोग मिलते हैं।

(४) संप्रदान–कारक में को का प्रयोग मिलता है। इसके स्थान में प्रयुक्त अन्य परसर्ग "कुं, कु, कौं, कौं" हैं।

(५) अपादान कारक में मूल परसर्ग "से" के साथ "सुं, सूं, सैं और सें, सैं, सै सो का प्रयोग मिलता है। राजस्थानी, गुजराती में प्रयुक्त "थी" परसर्ग का प्रयोग भी कुछ पत्रों में मिलता है।

(६) सबन्ध कारक के "का, के, की" परसर्गों का प्रयोग अधिकता से मिलता है। इनके साथ "कें, कै, को, कौ" का प्रयोग भी प्राप्त है। राजस्थानी भाषा में मिलनेवाले "नी, नो, गा" परसर्गों का प्रयोग भी मिलता है। मराठी परसर्ग "चे" का प्रयोग मिला है।

(७) अधिकरण–कारक "में, पर, पैं" का प्रयोग मिलता है। इनके साथ "मैं, मो, मों" का प्रयोग भी मिलता है। राजस्थानी और गुजराती में मिलनेवाले मा परसर्ग का प्रयोग कहीं मिलता है। मराठी के "आत" मध्यें "पैकी संबंध-सूचकों का प्रयोग अधिकरण कारक के परसर्गों के स्थान में किया गया है।

विशेषण

"जिस विकारी शब्द से संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित होती है उसे विशेषण कहते है। (क)

(क) हिन्दी व्याकरण पृ. ८६

विशेषण की मुख्य तीन कोटियाँ हैं...(१) सार्वनामिक विशेषण ।
(२) गुणवाचक विशेषण ।
(३) संख्यावाचक विशेषण ।

इस अध्याय में विशेषणों का अध्ययन इसी क्रम से प्रस्तुत किया गया है ।

सार्वनामिक विशेषण—"पुरुषवाचक और निजवाचक सर्वनामों को छोड़ कर शेष सर्वनामों का प्रयोग विशेषण के समान होता है । जब ये शब्द अकेले आते हैं तब सर्वनाम होते हैं और जब इनके साथ संज्ञा आती है तब ये विशेषण होते हैं ।[ख]

"सार्वनामिक विशेषण व्युत्पत्ति के अनुसार दो प्रकार के होते हैं—

(१) मूल सार्वनामिक विशेषण (२) यौगिक सार्वनामिक विशेषण ।[ग]

(क) मूल सार्वनामिक विशेषण—जो सर्वनाम विना किसी रूपांतर के संज्ञा के साथ आते हैं, उन्हें मूल सार्वनामिक विशेषण कहते हैं । प्रस्तुत पत्रों में निम्न लिखित मूल सार्वनामिक विशेषण मिलते हैं ।—

निश्चय वाचक—ऐ, यह, या, ये, यँ, यौ, वह, वे, वै ।

प्रयोग—ऐ—"ऐ बात कैसी पेम जाईन को देंगे ।', (प. १)

"सौ ऐ बात आछी छे नहीं ।" (प. १२५)

यह:—"यह बात हम चाहते इथे ।" (प. ३)

इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं ।

या:—"या खबर मुने बड़ी खुसी भई ।" (प. ८)

ये:—"ये बाम मयेपर ......पत्राइत कराइलेइ ।" (प. ८)

"ये बाकी के रुपैया भरिके ... पहुचत हैं ।" (प. ४०)

यँ:—"हमारी ये जिमीदारी छुड़ावत है ।" (प. ६६)

यौ:—"यों मूकादमा राज्यको है ।" (प. १)

वह:—"वह मुतसदी मुजलिम होके ... गयां ।" (प. ७)

वे:—"वे दो आदमी ... छिपे बैठे थे ।" (प. ७)

वे के स्थान में कहीं "वे" का प्रयोग भी मिलता है उदा०—

(ख) हिन्दी व्याकरण, पृ. १०२

(ग) हिन्दी व्याकरण, पृ. १०१, १०२

वे:—"वै वरकंदाज काबुमें आये।" (प. ५)
"ताहीमे वैं गाव है।" (प. ३५)

(२) संवंध वाचक सर्वनामों का प्रयोग भी मूल सार्वनामिक विशेषण के समान किया गया है। ये सर्वनाम है "जो", जो, "जोन".

उदा०—जौ "जौ जगह नानासाहिव ने वाको वकसी है।" (प. ३६)
जौ "जौ स्मांचार अठा की त्रफका......।" (प. २२)
जोन "छेतीस गाव मे जोन गढी होय ...।" (प. ६१)

(३) नित्य संवंधी सर्वनाम "सों" का प्रयोग भी मिलता हैं। उदा०–पंचम तिवारी जा भाति अर्ज करै सो विनती कबूल परे।" (प. ३५)

(४) अनिश्चयवाचक सर्वनाम "कोइ", "कोई", "कोउ" का प्रयोग मूल सार्वनामिक विशेषण के समान किया गया है। उदा०—
कोइ:—"कोइ वातका संदेह न जानोगे।" (प. १७०)
कोई:—"अवभी कोई प्रकार जुदाई नहीं।" (प. ८५)
कोउ:—"म्हाकी तरफ से कोउ वातको उसवास न जाएा जो।" (प. ११७)

इन विशेषणों के प्रयोग को देखते समय यह लक्षित होता है कि यदि इनका रूप मूल सर्वनाम के समान है फिर भी अर्थ को देखने से ये योगिक सार्वनामिक विशेषण प्रतीत होते हैं।

अनिश्चय वाचक सर्वनाम "कुछ" तथा उसके अर्थ —

अन्य रूप "कुछ, कछु, कछुक" का प्रयोग भी मूल सार्वनामिक विशेषण के समान किया गया है। उदा०—

(१) कुछ—"कुछ कपड़ा होवे जीसमुसे...तुमने लेणा।" (प. २०)
(२) कछु—"अपुन को कछु इहांकी हकीकति छिपी नाही।" (प. ५०)
(३) कुछु—"नवे पंडित आऐ न कुछु उनकी लषि पढ़ी आई।" (प. ४)
(४) कछुक—"अव कछुक दिननमें हमारो उआड़वो ... होतु है।" (प. ६)
(५) प्रश्नवाचक सर्वनाम "को" और "कौन" का प्रयोग मूल सार्वनामिक विशेषण के स्थान में किया गया हैं। उदा०—

को—"अपनी उतनपर कौ नाही लरतु भिरतु।" (प. ४)
कौन—"वालाजी ताकीदि कौन संवव लिपाई।" (प. १३)

(आ) यौगिक सार्वनामिक विशेषण :

मूल सर्वनामों में प्रत्यय लगाने से होने वाले जो रूप संज्ञा के साथ प्रयुक्त होते हैं उन्हें यौगिक सार्वनामिक विशेषण कहते हैं।

प्रस्तुत पत्रों में यौगिक सार्वनामिक विशेषण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(१) निश्चय वाचक सर्वनाम

इ : "इं बात सुं घणोही आचरज हुवो।" (प. १६४)

इन:—"इन दिननि में खबरि सुनिवे में आई हि।" (प. ८)

इस:—"फेर इस ज्मीन सों खेचल न करे।" (प. १५०)

ईस:—"ईस घरके और उस घरके ... कोई जुदाई नहीं। (प. १६२)

"उ, उन, उस" का प्रयोग भी यौगिक सार्वनामिक विशेषणों के समान किया गया है। उदा०—

उ:—"उ जागा मे ते तो तुम्हारी रजावंदी करवे को है।" (प. ६)

उस:—"ईस घरके और उस घरके ...।" (१६२)

उन:—'हम सो वा उन आदमीयन बरोधाई घाटडाग मे कजीया भ्यो।"
(प. ७)

ऐ—का प्रयोग भी कहीं यौगिक सार्वनामिक विशेषण के समान मिलता है।

उदा०—"ऐ बात का मजकूर लिखने है।" (प. १)

"यह', तथा "या" का प्रयोग भी यौगिक सार्वनामिक विशेषण के समान मिलता है, उदा०—

"यह लोक में कीर्ति वा परलोक मे सुखोत्पत्ति।" (प. ११६)

"तुरत मेरे ऊपर या तरह सकती भई।" (प. १०)

"वा" सर्वनाम का प्रयोग अनेक पत्रोंमें यौगिक सार्वनामिक विशेषण के समान मिलता हैं, उदा०—

"अरु वा साल तुम ... जागा अमलि लह हती।" (प. ९)

"अैसी, अैसे, अैयसे, ऐसे, अैसो, अैसो" रूपों का प्रयोग भी यौगिक सार्वनामिक विशेषणों के समान किया गया है।

एक दो उदाहरण इस प्रकार हैं—

"तुमको अैसी ततबीर करनो है।" (प. ९)

"जब उन्हें अैसे तागीत पत्र आवे।" (प. ४)

(२) संबंध वाचक सर्वनामों से—"जा, जे, ज्या" का प्रयोग भी यौगिक सार्वनामिक विशेषण के रूप में प्रस्तुत पत्रों में मिलता है, उदा०—

"खलास राविता जा भांति ... चल्यौ आयौ है।" (प. ५)

"आरू जै गाउनि वाबति ... सनदे व पत्र करि दए हते।" (प. १०)

"ज्या वात री पंडीत प्रधान जी की खुसी।" (प. १५६)

एक पत्र में "कुछ" के स्थान में मराठी सर्वनाम "काही" का प्रयोग मिलता है, उदा०—

"याहा काही ढील नही।" (प. १७२)

(३) प्रश्नवाचक सर्वनामों में "किस," कीस, "केउ, "केसी," "कैसी, कैसो" रूपों का प्रयोग भी योगिक सार्वनामिक विशेषणों के समान किया गया है, उदा०—

"कीस वातकी फकीर करो मती।" (प. ३३)

"केउ तरह सलतंत करवे की धमकै सुनी जाती है।" (प. २१)

"द्वारिका कैसी छाप है तेही वै नजरि राखै रहिवी।" (प. १०)

इनके अलावा मूल सर्वनाम या सर्वनामों के विकृत रूप को संबंध कारक के प्रत्यय जोड़कर यौगिक सार्वनामिक विशेषण बनते हैं। ऐसे विशेषणों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक रहती है। प्रस्तुत पत्रोंमें इस प्रकार के अनेक यौगिक सार्वनामिक विशेषण मिलते हैं तथा इनका प्रयोग भी कम अधिक परिमाण में बार बार किया गया हैं। उदाहरण इस प्रकार हैं:—

उत्तम पुरुष सर्वनाम "मैं" और "हम" से बने विशेषण—

(१) मेरा, मेरी, मेरे, मुझ, मां।

(२) हमारा, हमारि, हमारी, हमारे, हमारो, हमारौ।

मध्यम पुरुष सर्वनाम—तुम और आदरार्थी आप से बने—

(१) तुमारा, तुमारी, तुमारे, तुम्हारा, तुम्हारी, तुम्हारे, तुम्हारो।

(२) आपका, आपकी, आपके, आपणा, आपरा,
आपुकी, आपुके, आपुको।

निश्चय वाचक सर्वनामों से बने—

यह— इनकी, ईनकी, ईनके।

(छ) आदर, सम्मान या महानता द्योतक शब्द जो विशेषण के समान तथा विशेषण के स्थान में प्रयुक्त किये गये हैं–

(१) कुंवर (प. ६८) (२) देऊजू (प. १५)
(३) देव (प. १०) (४) पं (पण्डित) (प. १६)
(५) पं. श्री (प. ४) (६) पं. श्री पंडित (प. ६)
(७) पंडीत–प्रधान (प. ३९) (८) महाराइ (प. १५)
(९) महाराज (प. ३) (१०) महाराज कोमार (प. ५२)
(११) महाराजा (प. १) (१२) महाराजाधिराज (प. १)
(१३) राइजू (प. २१) (१४) राउजू (प. ४२)
(१५) राऊ (प. २१) (१६) राए (प. १०८)
(१७) राजकाज–धुरधर (प. १५) (१८) राजकार्य धुरंधर (प. १०)
(१९) राजमान्य राजराउ (प.२६) (२०) राजश्रिया विरजित (प. ५१)
(२१) राजश्री (प. २) (२२) राजश्रीमंत (प. ६३, ६९)
(२३) राजश्री पडित दीवान (प. ५०) (२४) राजा (३१) (२५) राजंश्री(प.१६)
(२६) राजेश्री (प. ४१) (२७) राज्जश्री (प. ४३)
(२९) राज्यश्री (प. १७९) (३०) रानि महारानि (प. १२६)
(३१) राव (प. २८) (३२) साहिब (प. १०)
(३३) साहिबजी (प. २९) (३४) साहेब (प. १९८)
(३५) सिधिश्री (प. ३५) (३६) सीधी श्री (प. ४६)
(३७) श्री (प. १) (३८) श्रीजी (प. २२)
(३९) श्री पंडीत (प. १२) (४०) श्री परमेसुर (प. ४७)
(४१) श्री प्रधान (प. ३२) (४२) श्रीमंत (प. ७)
(४३) श्रीमंतपडित (प. ४) (४४) श्री महाराजा (प. १९)
(४५) श्री महाराजाधिराज (प. ९) (४६) श्री महाराजाधिराज श्री महाराज (प. ६)
(४७) श्री. महाराजाधिराज श्री महाराज श्रीराजा (प. ८)
(४८) श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री सवाई राजा (प. ९)
(४९) श्री मुसाहिब (प. ६७)
(५०) श्री राउ (प. २३) (५१) श्रीराऊ (प. १२)
(५२) श्री राउराजा (प. ५०) (५३) श्रीराव (प. १९०)
(५४) श्री श्री श्री (प. ६५) (५४) श्री राज राजेन्द्र (प. १०९)

(५६) श्री सर्व गुणगन।लिंकृत...(प. ७४)

(५७) सर्व उपमा महालाथक (प. ५८) सर्वोपमा वीराजमान (प. ३५)

इनके अलावा प्राप्त अन्य गुणवाचक विशेषणों को भाषा के आधार पर निम्न-लिखित प्रकार से विभाजित किया गया है ।

(क) अरबी भाषा स्रोत से प्राप्त विशेषण—

(१) असल-पत्र (प. ७३) (२) ईनाम-बाग (प. १५०)
(३) काइम (प. १०२) (४) खराब (प. ६०)
(५) खास-हुकुम (प. १०) (६) खासा-सवारी (प. १३३)
(७) खाली-मैदान (प. ५६) (८) गरीब (प. ५०)
खुफिया (प. ७)
(९) नकद-रुपया (प. १७) मजकूर=(उल्लेखित)
(१०) मजकूर-कीले (प. ११५) (११) मजकूर-साहुकार (प. १८)
(१२) मातबर-मानस (प. ८) (१३) मुकरर-जाबता (प. ८)
(१४) मुजाहिम (प. १९, २८ इ) (१५) मुनासिब (प. ६९)
(१६) मुफसल (प. ११४) (१७) मुफसिल (प. १४५)
(१८) वाकिफ (प. ३५, ५०) (१९) वाजबी रुपैया (प. ३०, १३७)
(२०) साफ-जवाब (प. ७७) (२१) साबक (५६)
(२२) साविक (प. १९)

(ख) फ़ारसी भाषा स्रोत से गृहीत विशेषण—

(१) कोतह अन्देस (प. ५६) (२) खानगी (प. १५८)
(३) गुदस्ते-साल (प. ६८) (४) जुदे (प. ३५)
(५) ताजो (प. ६६) (६) दुरअंदेसी-विचार (प. २०८)
(७) दुरंदाजी-विचार (प. १३३) (८) नादर-जगह (प. १३७)
(९) नेक (प. २२) (१०) पायमाल (प. १७६)
(११) फीदवी (प. १८) (१२) सक्तनरम-जवाबस्वाल (प. ५३)
(१३) सालीना (प. १९)

(ग) अरबी फ़ारसी स्रोतों के संयोग से बने—

(१) वेजपत (प. ५४)
(२) वेउतन (प. ५९)
(३) वेउजर (प. ५२)

(ङ) संस्कृत स्रोत से प्राप्त विशेषण—

१ आग्याकारी-सेवक (प. ४०) २ आछे (प. १४७)
३ आछे (प. ६२) ४ आश्रित (प. ६४)
५ कृत्रिम-ठाकर (१६६) ६ छिपी (प. ६७)
७ जेठे-वेटे (प. १) ८ नई-गढी (प. ५३)
६ धर्ममूर्ति (प. ६७) १० धर्मनीक (प. ६७)
११ धर्मशील (प. ६०) १२ धर्मावतार (प. ६७)
१३ नवा-परवाना (प. ६६) १४ नीकी
१५ पकी-निसा (पक्की) (प. १४२) १६ पको (प. ६२)
१७ टेढी-आँख (प. ७) १८ तुछन (प. ६४)
१६ धर्मात्मा (प. ६४) २० पुनित-नगरी (प. ६४)
२१ बलवान (प. ३) २२ बुरो (प. ३५)
२३ बुरीऊ (प. ५३) २४ भल (प. ४१)
२५ भले अनेक पत्रों में प्राप्त २६ भलो (प. ५६)
२७ भळा (प. १७२) २८ विसेष (प. १०६)
२६ शर्करामुक्त-तिल (प. १०७) ३० शुभचिंतक (प. ११४)
३१ शुभस्यान-पूना (प. ६) ३२ सनातन-वोहार (प. १६७)
३३ स्नातन (प. २०८) ३४ स्मरण-बोधन
३५ सु-नजरि (प. १४) ३६ सुभ-समाचार (अनेक पत्रों में प्राप्त)
३७ पुनि-(पुनीत) स्याने (प. ६६) ३८ रोक-रुपया
३६ रोकड़-पैसा (प. ७७)

(च) कुछ शेष विशेष विशेषण—

१ उगाह-जागा (प. ६) २ उधारा-रुपीया (प. १३४)
३ छडी-असवारी (प. १६३) ४ बना-ऐवज (प. ६२)
५ बये-सरदारा (प. १५१) ६ सरे आदमी (प. ६)
७ भुटी-मोहर (प.१३५) भूटे (प. ६१) भुठी (प. २०२)
८ मातबर-मानस ६ दरोबस्त बद मामली (प. १४०)
१० लाचार, चलाख (१४७) ११ मुदामन, नादर-जगा (१३७)

(छ) संख्यावाचक विशेषण—

"संख्यावाचक विशेषण के मुख्य तीन भेद हैं—(१) निश्चित संख्यावाचक

(२) अनिश्चित संख्यावाचक और (३) परिमाण बोधक।" (च)

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त संख्यावाचक विशेषणों का अध्ययन-विभाजन तथा अध्ययन की इसी पद्धति के अनुसार किया गया है।

(क) निश्चित संख्यावाचक विशेषण—"निश्चित संख्यावाचक विशेषणों के पाँच भेद हैं। (१) गण वाचक (२) क्रमवाचक, (३) आवृत्ति वाचक (४) समुदाय वाचक और (५) प्रत्येक-बोधक।" (च)

(१) गणवाचक विशेषणों के दो भेद हैं—(अ) पूर्णांक बोधक (आ) अपूर्णांक बोधक। गणवाचक विशेषण दो प्रकार से लिखे जाते हैं। (१) अक्षरों में (२) अंकों में।

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त गणवाचक विशेषण भी दोनों प्रकार से लिखे गये हैं। प्रथमतः अक्षरों में लिखे गये गणवाचक विशेषणों का अध्ययन किया गया है और द्वितीय अंकों में लिखे गये विशेषणों का।

(अ) गणवाचक पूर्णांक तथा अपूर्णांक बोधक विशेषण—एक से सौ तक।

एक (प. ६०) एकु (प. ६४) ऐक (प. ५६) ऐकु (प. ५२) येक (प. २६७)
दो (प. १२७) दोइ (प. ४५) दोई (प. ४०) दोन (प. १७९) दोय (प. २०) दोइ (प. ८१)
तीन (प. ६५)
चार (प. ७, २०) चारि (प. ६४) चारु (प.) च्यार (प. ५६)
पांच (प. ६९)
छ (प. २०, २७) छह (प. ८५) छै (प. ८७)
सात (प. ७०)
आठ (प. ५६) अठ (प. ३१)
नव (प. ६६)
दस (प. ६६, २४, २५)
ग्यारह (प. ७०) गेरा (प. २७) ग्यारा (प. ६)
बारे (प. ४८)
तेरह (प. ५२) तेरा (प.)
चौदह (प. ८) चौदा (प. ३७)

(च) हिन्दी व्याकरण, पृ. १०७।

पंदरह (प. ८१) पंधरा (प. १७६) पंद्रा (प. ४३)
अठारा (प. १०५) येगुणीस (प. १७)
वीस (प. १५०)
इकस (प. ५१) इकइस (प. ७५)
पचीस (प. ६६)
उनतीस
वत्तीस (प. २)
पैंतीस (प. ६१)
छैंत्तीस (प. ६१)
चालीस (प. ६) साडे चालीस (प. २७)
व्यालीस (प. ६६)
चवालीस (प. ६८)
पचास (प. १६)
इक्यावन (प. २)
उनसठि
साठी (प. १०४) सठि (प. १४)
छाछट (प. ८५)
सरसठि (प. ३७) सतसट (प. १७).
छैंहत्तर (प. ६१)
नवै (प. ८१)
सो (प. ५३) सौ (प. १८५) सै (प. ८४)

(आ) एकसौ एक से एक हजार तक—

सवासै (प. ५०)
एक सै सत्रासताईस (प. ८५)
दोइ से इक्यावन (प. ८१) सवाचार सै (प., ७२) स्वाचार सै (प. ७२)
चारीसै सरसठि (प. ३७)
पांचसो (प. १८५) पांन सै (प. ८४)
सात सै सात (प. ७०)
साढे सात सै (प. ७०)
नव छै पचातर (प. ९६) नव सौ पचातर।

दस सौ (प.५६६) हजार (प. २१) हजार एकु (प. १०५)
हजार ऐक (प. ४४)

एक सौ एक से एक हजार अंकों की गिनती में पचीस के लिये सवा या स्वा तथा पचास के लिये साढे का प्रयोग किया गया है ।

सौ शब्द के लिए "से" (मराठी "शें" का परिवर्तित रूप) "से" तथा "सो" शब्द का प्रयोग मिलता है ।

(इ) एक हजार एक से एक लाख तक—

गेरा सौ साडे चालीस (प. २७) तेरहसैं (प. ५२)
दोइ हजार (प. ८६) पंद्रह सै (प. ६६)
अढाई हजार (प. ६५)
पाच हजार (प. ५६)
छे हजार (प. ८७) द्वि सहस्र (प. ६०)
सरिसठि से उनतीस आना दस (प. ८५)
अठ हजार (प. ३१) आठ हजार (प. ५६)
नवैं से चवालीस (प. ८१)
दस हजार (प. १३३)
सोरह हजार पोने दोह सै (प. ८५)
हजार अठारा (१८००)
हजार इकइस (२१०००)
बत्तीस हजार (प. २)
पचास हजार (प. १४), (प. १८७) पच्यास हजार (प. १४६)
हजार उनसठी (५६,०००)
हजार साठी (प. १०४)
सठि हजार एक (प. १४), (प. १४१)
सतसट हजार छे सौ येगुणीस (प. १७)

(१) एक हजार एक से एक लाख तक के अंकों को लिखते समय सौ (सैं) की गिनती तथा हजार की गिनती दोनों का ही प्रयोग किया गया है उदा०— नवैसैंचवालीस (प. ७६) अढाई हजार (प. ४११)
(२) हजार अंक के लिए सहस्र का प्रयोग भी प्राप्त है ।

(३) पूर्ण हजार की गिनती में होने वाली संख्या लिखते समय दो पद्धतियों का प्रयोग किया गया है प्रथम अंक लिखकर उसके आगे हजार शब्द लिखकर जैसे—पांच हजार, बत्तीस हजार और द्वितीय- हजार शब्द लिखकर अनन्तर उसकी संख्या द्योतक अक्षर लिखकर जैसे हजार इकइस, हजार साठी इत्यादि।

(इ) एक लाख एक से आगे लाखों की संख्या में—

दो लाख (प. ११७)
लाख सवा दोई (प. १२)
आढाइ लाख (प. ११७)
लाख पौने तीन (प. १२)
साडे चार लाख (प. ११७)
पांच लाख (प. १४६) लाख पांच (प. १२)
छ लाख (प. ११७ , १६८)

लाखों की गणना द्योतक संख्या लिखते समय भी दोनों रीतियों का प्रयोग किया गया है, उदा०—दो लाख और लाख सवादोई।

(२) निश्चित क्रम वाचक संख्या विशेषण—

पहिली (प. १२) पहील्ले (प. ६८)
दुसरी (प. १५) दुसरै (प.५३) दुसरो (प. १७६) दुसरौ (प. ५१)
दुसरे (प. १०)
दूसरो (प. ४) वियाही—(दूसरा) (प. २८)
तीसरी (प. ६)

(३) समुदाय वाचक—

नीगे (प. ६६)
उभय (प. १२०)
दोनु (प. ७) दोनों (प. ७) दोई, दोन्यु (प. १३४)
तीनो (प.१६२) तीनु (प. १७६) चारो (प. १३६)
सौकरा=सौ (प. १०५)
लाखों की (प. १६८)

(५) प्रत्येक बोध—

दर—जवाब (प. १७०) दर—मजल (प. १५१)

प्रति घरी (प. १०) घरी घरी
हर—तरह (प. ४) हर—दू (प. १८७) हर—दो (प. ७३)
हरि—तरह (प. ४), (प. ५७)
हरियेक (प. ८) । हार—तरे (प. १८०)

अनिश्चित संख्या वाचक विशेषण—

"जिस संख्या वाचक विशेषण से किसी निश्चित संख्या का बोध नहीं होता उसे अनिश्चित संख्या वाचक विशेषण कहते हैं। (क)

अनिश्चित संख्या वाचक विशेषण—

(१) अधिक (प. ५) अनंत (प. ५१) अनेक (प. ६४)
अेनग (प. २६) आन-अन्य (प. ७६) ईतरा-अन्य (प. २)
ओर (प. १२०) और (प. ५,७) कमी (प. ८५)
काफ-काफी (प.१६४) थोरे (प.) बहु-बहुत (प. ६०)
वहुत (प. १४५) वहोत (प. १) वहौत (प. १७६)
वहोतु (प. ४६) वोहत (प. ६) वोहोत (प. १५३)
वौहत (प. २६ वौहौत (प. ४७) वौहोतु (प. ६४)
भौत (प. ३) बाकि (प. १२६) बाकी (प. ७८)
सकल (प. ६) सिवाई (प. १६) सगळो (प. १०६)
सब (प. २०) सबु (प. ४०, १७३) समस्त (प. ६)
सरब (प. १३३) सर्व (प. ५१) सारो (प. ११८)

(२) कभी दो पूर्णांक-बोधक विशेषण साथ साथ आनेसे अनिश्चितता का बोध कराते हैं और ये विशेषण अनिश्चित संख्या वाचक विशेषण बनते हैं। प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त इस प्रकार के अनिश्चित संख्या वाचक विशेषण—

येक-दो (प. १५३) दो चार (प. १०) दो-अढाई (प. १८१)
दोय-चार (प. २०५) तीन-च्यार (प. १६३)
चार-छै (प. ७) छ-सात (प. २०५)
सात-आठ (प.) पांच-सात (प. ५०)
दस-ग्यारे (प. १२८) दस-पंद्रह (प. ७)

(क) हिन्दी व्याकरण, पृ. ११५।

दस-पंद्रा (प. ४३) चौदह पंद्रह (प. ८)
दस-वीस (प. ३) पचीस-तीस (प. २१)
असी-नवे (प. ७) चार-पाच (हजार) (प. ७)
(हजार) दस, बारा (प.) (हजार) पचीस-तीस (प.)

शब्दों के अंत में एक अर्थ-द्योतक "एक" शब्द जोड़ने से बने अनिश्चित संख्या वाचक विशेषण—

केताक (प. १, १८) केतेक (प. ११०)
केतीयक (प. १११) कंक (प. ४)
बहुतक (प. ५५) केताऐक (प. १८६)
केतीक (प. २०२)

अंकों में लिखे गये संख्या वाचक विशेषण—

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त इन विशेषणों को संख्या की दृष्टि से विभाजित किया गया है। प्रथम पूर्णांक बोधक अंक दिये हैं और उसके अनन्तर अपूर्णांक द्योतक अंक हैं।

(अ) एक से सौ तक के पूर्णांक तथा अपूर्णांक द्योतक विशेषण—

पूर्णांक—

१	६	११	२०	२८
२	७	१२	२४	३०
३	८	१३	२५	४०
४	९	१४	२६	५०
५	१०	१५	२७	७६

इन में पंद्रह तक के अंक प्रमुखतः तिथि दर्शाते हैं।

अपूर्णांक— ४।। (प. २०) १२।।। (प. १७) १३। (प. १७)
१३।। (प. १७), २७। ; ४२ ।। ≡ (प. ७१)

ये अपूर्णांक द्योतक (अंक) रुपयों के लिए प्रयुक्त किये गये हैं।

(आ) १०१ से १००० तक के अंक द्योतक विशेषण—

पूर्णांक—

१००, ११०, १५०, १५१, २००, २२६, २५०, २५१

३०१, ३२३, ३२५, ४२४, ४५०, ५००, ७०७, ७५०, ७५१, ८०८, ९७५, ९९९, १०००

अपूर्णांक—

११४॥ (प. २७) १२७। (प. ८५) २८४। = (पं. ८५) ३२१॥= (प. ८५) ४६७॥= (प. ३७) ५७२॥ (पं. २७) ९११॥ (प. २७)

ये अंक भी रुपयों के लिए प्रयुक्त किये गये हैं।

(इ) १००१ से २०० तक—

पूर्णाङ्क—

१११४, ११२३, १२००, १३००, १५००, १६७५, ११६९।

अंक १११४ और ११६९ हिजरी सन् के लिए प्रयुक्त हैं, शेष सभी अंक रुपयों के लिए प्रयुक्त हैं।

१७३६	१८०१	१८१६	१८३२	१८४८
१७६१	१८०२	१८१९	१८३५	१८४९
१७८९	१८०३	१८२०	१८३७	१८५०
१७९०	१८०४	१८२१	१८३८	१८५१
१७९१	१८०७	१८२२	१८३९	१८५२
१७९३	१८०८	१८२३	१८४०	१८५३
१७९५	१८०९	१८२४	१८४१	१८५४
१७९६	१८१०	१८२५	१८४२	१८५५
१७९८	१८११	१८२६	१८४३	१८५६
	१८१२	१८२७	१८४४	१८५७
	१८१३	१८२८	१८४५	
	१८१४	१८२९	१८४६	
	१८१५	१८३०	१८४७	

ये सारे अंक पत्रों में लिखी संवत् की संख्या–द्योतक हैं। इनके सिवा १८००, २००० ये रुपयों के लिये प्रयुक्त अंक हैं।

अपूर्णांक—

११४०।। (प. २७) १३२१ ॥= (प. ८५) ११८४। = (प. ८५)

ये अंक भी रुपयों की संख्या का निर्देश करते हैं।

(ई) २००१ से १००,००० तक के अंक—

पूर्णांक—

२०४१	४६२२	६०००	१८,००	५६,०००
२०४३	५४०८	८०००	२१,०००	६०००१
४६००	५४१२	६२४४	४३२०५	६७६१६

अपूर्णांक—

४११८। (प. १७) ६०६३ ॥ (प. १७) ६६०२।–(प. ८५)
१४८७६ ।।।) (प. ११७)

एक लाख रुपये के ऊपर—२००, ०००; २५०, ०००; ४५०, ००० ।

ये सारे अंक रुपयों के लिए प्रयुक्त हैं ।

अंकों में लिखे गये उपरोक्त संख्यावाचक विशेषणों की कुछ वातें उल्लेखनीय हैं ।

(१) जहाँ मिति, तिथि, सन, शक या सवंत् का निर्देश किया गया है। वहाँ केवल अंकों का प्रयोग मिलता है ।

(२) जहाँ रुपयों में मूल्य या संख्या का निर्देश करना है वहाँ बहुधा अंक और अक्षर दोनों का प्रयोग किया गया है ।

(३) कहीं रुपयों के द्वारा मूल्य वताते समय सिर्फ अक्षरों का प्रयोग किया गया है, उदा०—लाख पाच, लाख सवा दोई (प. १२) ।

(४) अक्षरों में संख्या लिखते समय प्रथम बड़ी संख्या लिखी जाती है और वाद में क्रमशः छोटी संख्या, जैसे—

सोरह हजार पौने दोइसै (प.   )
सरिसठि सै उनतीस आना दस (प. ८५)
सतसट हजार छै सौ येगुणीस रुपया (प. १७)

(ज) परिमाण बोधक संख्या विशेषण—

अधिक (प. ५)

काडीमात्र (प. ७३)   कौन वड़ी (प. ३)
घणा (प. १७०)   घणी (प. १७४)   घणों (प. १६७)
घनें (प. ५६)   घनी (प. ५६)

जादा (प. ४३)	ज्यादा (प. ११८)	जुजवी–वाकी (प.८०)
थोरी थोरई (प. ४६)	थोउ (प. ४८)	परम (प. १६०)
प्रम (प. १६)	वड़ा (प. ११)	वड़ी (प. ८)
वड़े (प. १७१)	वड़ौ (प. ४६)	वड़ो (प. ७)
वहुत (प· १४५)	वहुत (प. ५५)	वहोत (प. १)
भारी (प.१७३)	वौहत (प.१६०)	भौत (प. ३) बोत(प.४८)
इतनौ (प. ५१)	अत्यन्त (प. १०६)	अति बीसेस (प.१६१

—०—

* चौथा अध्याय *

चौथा अध्याय

क्रिया एवं अव्यय

इस अध्याय के अन्तर्गत दो बातें हैं। एक क्रिया और दूसरी अव्यय। क्रिया के अध्ययन में भिन्न कालों वर्तमान–भूत–भविष्यत् के अनुसार तथा लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार मिलनेवाले भिन्न रूपों का अध्ययन किया गया है। इन रूपों में प्राप्त व्रज भाषा, खड़ी बोली, राजस्थानी भाषा में प्राप्त रूपों की ओर संकेत किया गया है।

क्रिया के इन रूपों के अध्ययन के पश्चात् क्रियार्थक संज्ञा, प्रेरणार्थक क्रिया, कृदन्त और संयुक्त क्रियाओं का अध्ययन किया गया है। क्रिया के अध्ययन के अन्त में पत्रों में प्राप्त क्रियाओं की एक सूची दी गई है।

अव्ययों के अध्ययन में क्रिया विशेषण, संबंध-सूचक, समुच्च्य बोधक अव्ययों का अध्ययन किया गया हैं। क्रिया विशेषण अव्ययों के अध्ययन में मूल और अव्यय क्रिया विशेषणों का अध्ययन प्रमुखता से किया गया है।

क्रिया

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त क्रियाओं के रूप कई दृष्टियों से अध्ययन के लिये बहुत महत्वपूर्ण हैं। ये रूप एक तरफ व्रज, राजस्थानी इत्यादि भाषाओं से प्रभावित हैं तो दूसरी तरफ खड़ी बोली से। चूँकि पत्रों की भाषा न तो एक विशिष्ट स्थान की है और न एक व्यक्ति की। इसलिये इनमें विभिन्न बोलियों और भाषाओं के रूप मिलते हैं। क्रियाओं के प्रयोग में तो और भी विभिन्नताएँ है। हिन्दीं क्रियाओं में लिंग, वचन, पुरुष और काल को प्रकट करनेवाले संबंध तत्व जोड़ते हैं परन्तु पत्रों की भाषा में ये नियम सभी स्थानों पर पूर्ण रूप से नहीं दिखलाई पडते। स्त्री लिंग, पुरुष तथा वहुवचन को द्योतित करने वाले संवंध तत्वों का प्राय. अभाव-सा है। अधिकतर क्रियाएँ एक वचन में ही हैं। वहुवचन को प्रकट करनेवाली क्रियाओं की संख्या वहुत थोड़ी हैं। कर्ता के सन्दर्भ में ही वहुवचन रूप निरूपित किया गया है।

उसी प्रकार सहायक क्रिया के वर्तमान काल का रूप भी कर्ता के संदर्भ में अलग किया गया हैं।

पत्रों में प्राप्त सहायक क्रियाओं के रूप निम्नलिखित हैं।

वर्तमान काल—

वर्तमान काल के रूपों में लिंग भेद के कारण कोई भेद नहीं होता।

उत्तम पुरुष एक वचन

हुं (प. १८, १४६) हूं (प. १८) हौ (प. ४१) हौं (प. ९)

एक ही व्यक्ति के लिए आदरार्थ में प्रयुक्त वहु वचन के रूप—है (प. ४१) हैं (प. १) हुये (प. ६८)

राजस्थानी भाषा से प्रभावित रूप—छै (प. २२) छौ (प. ९१)

उत्तम पुरुष वहु वचन

हैं (प. ६) हैं (९) हैं (प. १०७)

मध्यम पुरुष एक वचन

"तू" के साथ प्रयुक्त कोई रूप नहीं मिलता। आदरार्थ एक ही व्यक्ति के लिए तुम, आप, आपु, का प्रयोग किया गया । इन सर्वनामों के साथ प्रयुक्त रूप हैं (प. २९) हो (प. ४८) हौ (प. १५) हों (प. ९)

अन्य पुरुष एक वचन

हे (प. ४६) है (प. २,१०) हैं (प. ३) हय (प. ९४)

राजस्थानी भाषा से प्रभावित—छै (प. १०९) छै (प. ४७)

अन्य पुरुष वहु वचन

हे (प. ३०) है (प. ५) हैं (प. ३) हुये (प. ६८)

(क) वर्तमान कालिक इन रूपों में वचन तथा पुरुष भेद के कारण होने वाला अन्तर स्पष्ट नहीं है।

(ख) इन रूपों में ब्रजभाषा के रूप, हौं इत्यादि तथा राजस्थानी भाषा से प्रभावित-छे, छै इत्यादि रूप मिलते हैं।

(ग) प्राप्त रूपों में खड़ी बोली के रूप अधिकता से मिलते हैं।

भूतकाल—

भूतकाल की क्रिया के रूपों में पुरुष भेद के कारण कोई फर्क नहीं होता। लिंग भेद के कारण अवश्य फर्क मिलता है। अतः क्रिया रूपों को पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग में विभक्त किया है।

पुल्लिग एक वचन—

एक वचन के रूपों के चार प्रकार मिलते हैं—

(१) हते (प.६१) हतै (प.५३) हतो (प.६४) हुये (प.९३) हुता (प.१८९)

(२) हुये (प.१२०) हुवा (प.२०) हुवै (प.५७) हुवै (प.५८) हुवो (प.११३) हुवौ (प. ९१)।

(३) भया (प. ३९) भये (प. ६०) भयो (प. ४६) भयो (प. ७) भ्यो (प. ७)

भऐ (प. ५३) भवो (प. ६०) भवी प. ४६)

(४) था (प. २०) थे (प. १३१) थो (प. ५६)

(जु–म = जुर्म) भई।

पुल्लिग बहु वचन

(१) हते (प. २)

(२) हुए (प. १०६) हुये (प. २०) हुवे (प. ५६)

(३) भऐ (प. ५०) भये (प. ६३)

(४) थे (प. ७) थौ (प. ५६)

स्त्रीलिंग एक वचन

हती (प. १०)

हुइ (प. ५६) हुई (प. १०६) हुवी (प. १२६)

भइ (प. ५०) भई (प. ८)

थी (प. १३१)

स्त्रीलिंग बहु वचन में कोई रूप प्राप्त नहीं।

(क) इन रूपों में खड़ी बोली के था, थी थे ये रूप मिलते हैं। थौ रूप एक विशेष रूप है। "हुआ–हुए" के स्थान पर "हुवा–हुवे" रूप प्राप्त हैं।

(ख) ब्रजभाषा में मिलने वाले "भये, भयी" इत्यादि "हते,हतो" इत्यादि रूप मिलते हैं। मिलने वाला "भ्यौ" रूप एक विशेष रूप है जो लिखावट की अशुद्धता के कारण मिलता है।

(ग) जु–म के साथ भई स्त्रीलिंग रूप का प्रयोग किया गया है।

भविष्यत् काल

भविष्यत् काल के रूपों में दो भेद स्पष्ट लक्षित होते हैं। एक "ग" प्रत्यय रहित और दूसरा "ग" प्रत्यय सहित। प्रथम भेद के रूपों में लिंग भेद के कारण कोई फ़र्क लक्षित नहीं होता किन्तु द्वितीय ("ग" प्रत्यय सहित रूपों) में वह स्पष्ट रूप से लक्षित है।

(अ) "ग" प्रत्यय रहित प्राप्त रूप

उत्तम पुरुष बहु वचन हौंइ (प. ८)

अन्य पुरुष एक वचन

हुहै (प. १) हो (प. ५०) होइ (प. ५१) होई (प. ४०) हौइ (प. ५८) होय (प. १४६) होयँ (प. ४८) होवै (प. २०)

राजस्थानी प्रभाव से प्राप्त रूप—होसी (प. ६२)

अन्य पुरुष बहु वचन

हुहै (प. १६) हुहैं (प. ६३) होय (प. १४७)

(आ) "ग" प्रत्यय सहित प्राप्त रूप—

पुल्लिग

मध्यम पुरुष एक वचन होहुगे (प. १६१) होयगा (प. २२)

अन्य पुरुष एक वचन

हुवेगा (प. १२६) होईगा (प. १२६) होंगे (प. १५६)
होविगा (प. १५८) होयगा (प. १०८) होयगे (प. १६२)

अन्य पुरुष एक वचन

होईगे (प. १३५) होइंगे (प. ५८)

स्त्रीलिंग

अन्य पुरुष एक वचन

होइगी (प. ४६) होईगी (प. ८०) होगी (प. १४६) होयगी (प. १४७)
होवेगी (प. १३३)

(क) दोनों भेदों के रूपों में अनेक प्रकार की विशेषताएँ एवम् विविधताएँ लक्षित होती है। ये विशेषताएँ पत्र-लेखकों की भाषागत विविधता के कारण हैं। यह भी हो सकता है कि पत्र-लेखकों ने पत्रों में भाषा के शुद्ध प्रयोगों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया हो।

(ख) "ग" प्रत्यय के पूर्व "इ" "य" और "वे" का आगम उल्लेखनीय है।

सामान्य वर्तमान काल

वर्तमानकाल के जो रूप पत्रों में मिलते हैं वे दो प्रकार के हैं। पहले प्रकार के रूप कृदन्तों से बने हुए हैं और दूसरे प्रकार के रूप कृदन्त रहित हैं। प्रथम प्रकार के रूपों के अन्त में " त , ता , ती , तु , त " इत्यादि प्रत्यय जुड़ेहैं और इन रूपों में पुरुष वचन तथा लिंग स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं।

पुल्लिग

उत्तम पुरुष एक वचन

करत हो (प. ६) खात हुं (प. १६) आवत है (प. ४६) आवत है (प. ४६) करत है (प. १५) जानत है देत है (प.४०) पहुचत है (प. ४०)

पोहचत है (प. ७५) रहत है (प. ७६) राखत है (प. ८) लिखत हैं (प. ६६) आवते हैं (प. १६६) आवते हैं(प. १२६)आते है (प. १७७) करते है (प. ११४) कहते हैं (प. १४६) जाते है(प. १८) देते है(प. ४८) भेजते है (प. १८) भेजते हैं (प. १७६) रहते हैं (प. १०८) करतु है (प. ४६) आवे छे (प. ६२) इत्यादि।

उत्तम पुरुष वहु वचन

आवत है (प. ४६) करत है (प. ७६) पोहचत है (प. २०२) राखत हैं (प. ८) जाते हैं (प. २०५) देते है (प. १३६)

मध्यम पुरुष एक वचन:— जात है (प. ७)

मध्यम पुरुष बहु वचन :

आदर प्रकट करने के लिए बहु वचन का रूप प्रयुक्त हुआ है। जावे है (प. १८) (आपु) जानत है। (प. ६०) (आप) रखते हो (प. ६८) इत्यादि।

अन्य पुरुष एक वचन :

आवत हैं (प.१८२) करता है (प.१६२) देता (प.१५६) लगता है (प.२०१) रहता है (प. १०८) आत है (प. १८३) डुवत है (प. ७) देत है (प. ४०) मांगत है (प. १३८) लगत हैं (प. ७) लेत है (प. १४१) होत है (प. ४७) करत है (प. ४१) छुड़ावत है (प. ३६)पोहचत है (प. ३६)

आवते हैं (प. १२६) आवते हैं (प. १५६) कहते हैं (प. १४६) पीते हैं (प. २०) वतावते हैं (प. २०)

करतु है (प. ७६) चलतु है (प. ५३) जानतु है (प. १०) होतु है (प. १५६)

अन्य पुरुष वहु वचन :

करत है (प. ५०) मांगत है (प. १३८)

देते हैं (प. १३६) मानते (प. १६८) लिखते हैं (प. ५०)

स्त्रीलिग

उत्तम पुरुष एक वचन देखते हैं (प. २०) लीखते हैं (प. २०)

उच्च घराने की या विदुषि स्त्रियों की प्रवृति सर्वदा से अपने कथन को पुल्लिग में रखने की रही है वही प्रवृत्ति उपर्युक्त उदाहरणों में लक्षित होती है। यद्यपि कर्ता स्त्रीलिग है, फिर भी क्रिया के रूप पुल्लिग के प्रयुक्त हुए हैं।

अन्य पुरुष एक वचन :

आवत है (प. १३६) होत है (प. ५४)

आउति है (प. ५०) आवती है (प. ७७) जाती है (प. १५३) सकती है (प. ५०)होति है (प. ६)

अन्य पुरुष बहु वचन आवती हे (प. २०२) आवती है (प. ५४) आवती हैं (प. ७६ जाती है (प. २१)

(क) प्राप्त रूपों में ब्रजभाषा में मिलने वाले–कृदन्त के "त" तथा "तु" प्रत्यय लगाकर बनने वाले रूप मिलते हैं जैसे—
आवत है, जानत है, राखत है, करतु है, होतु है इत्यादि ।

(ख) खड़ी बोली में मिलने वाले "ता" तथा "ते" प्रत्यय लगाकर होने वाले रूप मिलते हैं, जैसे—
करता है, लगता है, रहता है, कहते हैं, पीते हैं इत्यादि ।

(ग) सहायक क्रिया रूपों के विना होने वाले कुछ रूप भी मिलते हैं—
उदा०—देता, मानते ।

(घ) आना क्रिया के रूपों में कृदन्त प्रत्यय जोड़ने के पूर्व "उ" या "व" का आगम एक विशेष बात है । जैसे आउति है, आवते हैं इ०

(ङ) स्त्रीलिंग के रूप अल्प मात्रा में मिलते हैं।

दूसरे प्रकार के रूप जो कृदन्त रहित हैं, उनमें लिंग, वचन तथा पुरुष का भेद लक्षित नहीं होता । ये रूप बहुत ही थोड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं ।

कुछ उदाहरण ये हैं—

आवे (प. २) करे (प. ८०) करै (प. ६४) जाने (प. ५३) पावै (प. ६) रहै (प. ६) संघे (प. ४) सुझै (प. ५७) इत्यादि ।

अपूर्ण वर्तमान काल

पुल्लिंग-अन्य पुरुष एक वचन

जाता रहा (प. ११) जात रहे (प.२१) जातो रहो (प. ५६) होत रहे (प. ६०)

अन्य पुरुष बहु वचन

जात रहे (प. ५६) पाइ रहे है (प. ५७) राखत रहे हैं (प. ३५)

स्त्रीलिंग : अन्य पुरुष एक वचन

जाती रही (प. ५६) बिगड़ी रही है (प. ६७) लग रहो है (प. ५६) करै रहे (प.६८)

(क) अपूर्ण क्रिया द्योतक रूप थोड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं ।

(ग) फिकर (फ़िक्र) स्त्रीलिंग शब्द के साथ पुल्लिग क्रिया रूपों का प्रयोग किया गया है ।

(ग) "करै रहे" उल्लेखनीय रूप है।

पूर्ण वर्तमान काल

पूर्व वर्तमान काल के रूपों में पुरुष, वचन और लिंग के कारण भेद लक्षित होते हैं।

पुल्लिग—

उत्तम पुरुष एक वचन

वंठा हुं (प.१८) भेजा है (प.१३६) भेज्या है (प.३)करहैं (प.५३) बैठे है (प.१५) बैठे हैं (प.५४) वैठै है (प.४७) पड़े है (प.४७) परै है (प.५६) भऐ है (प.५४) क–यो हैं (प.४६) लिखौ है (प.६०) इत्यादि।

उत्तम पुरुष बहु वचन—

आए है (प.७) करि है (प.५०) दीये है (प.१६) पठवाए हैं (प.८) लऐ है (प.५०) इत्यादि।

मध्यम पुरुष एक वचन—

आदरार्थ में प्रयुक्त-बनाये हो (प.६०) करो छो (प.१२५)

अन्य पुरुष एक वचन—

आया है (प.२४) दिया है (प.७३) फरमाया है (प.३६) राखा है (प.११२) लिया है (प.१४६)

खायौ है (प.६) गयौ है (प.७) गवौ है (प ६०)गु जरौ है (प.५६) देवो है (प.४) भयौ है (प.६३) होइया है (प.३) भई है (प.१०) आया छा(प.६१)

नाखौ छो (प.६१)भेज्या छै (प.१६) हुवा छै (प.१२५)

अन्य पुरुष वहु वचन

आए हैं (प.६४) आऐ है (प.१५) आये हैं (प.३) कीये हैं (प.१०७) गऐ है (प.७) गये है (प.१३) बैठे हैं (प.८०) वैठारै है (प.५०) भऐ है (प.३२) राखे है (प.७) लिखे हैं (प.१२०)

स्त्रीलिंग—

अन्य पुरुष एक वचन

उठाई है (प.५४) करी है (प.३८) गई है (प.८) गयी है (प.८) ठेहरी है (प.७) पकरी है (प.६५) वनी है (प.५३) रही है (प.१०१) लगी है (प.२)

हुई छै (प.६२)

अन्य पुरुष एक वचन

कीयौं है (प.१६२)

(क) ए. व. के रूपों में खड़ी बोली के कतिपय अकारान्त रूप मिलते हैं। उदा०—बैठा हुं, आया है, फरमाया है इत्यादि।

(ख) ब्रजभाषा में मिलनेवाले "ओ" तथा "यो" कारान्त रूप भी मिलते जैसे,—गुजरो है, भयो है इत्यदि।

(ग) राजस्थानी प्रभाव से युक्त क्रियाओं के रूप भी मिलते हैं। जैसे नाखो छो।

(घ) उ–म के साथ स्त्री लिंग रूप "भई है" प्रयुक्त किया गया है।

(ङ) "होइया है" यह रूप विशेष रूप है।

भूतकाल सामान्य

भूतकाल के रूपों में लिंग और वचन लक्षित होते हैं, पुरुष नहीं। इन रूपों में तीन प्रकार के रूप—"आ" कारान्त, "ए" "ऐ" कारान्त और "ओ" या "औ" कारान्त—मिलते हैं।

पुल्लिग एक वचन

आया (प.३) उठाया (प.१७६) कन्या (प.३) कीया (प.७) घेरा (प.५६)
दीया (प.११) पोहचा (प.१०) फसाया (प.१६६) बतलाया (प.११)
भागा (प.११) मारा (प.१४६) रखा (प.५६) रह्या (प.१५१)
लिखा (प.१) लीया (प.११) इत्यादि।
आए (प.१०) गये (प.१०) पाए (प.१०) मिले (प.७) रहे (प.७)
आयो (प.१६) आवो (प.३६) गयो (प.७) गयौ (प.७)
देख्यो (प.३५) लिख्यो (प.३५) सुन्यो (प.३५)
कीनों (प.६४) दीनी (प.६४) इत्यादि।

पुल्लिग बहु वचन

आए (प.४) आये (प.३) उठे (प.२) कीनैं (प.६४) कीनों (प.६४)
गए (प.७) दए (प.७) पाये (प.१६) इत्यादि।

स्त्रीलिंग—

एक वचन—

आई (प.४) गीरी (प.१५१) परी (प.४) पाई (प.४) भई (८) ली (प.१०)

हु वचन—

आई (प.१०) दई (प.६२)

(क) भूतकाल के रूपों में खड़ीबोली में मिलनेवाले "आ" कारान्त रूप अधिक मात्रा में मिलते हैं ।

(ख) व्रजभाषा में मिलनेवाले "औ" कारान्त रूप मिलते हैं ।

"नो" और "नौ" जोड़ने से मिलनेवाले व्रज के रूप भी प्राप्त होते है ।

(ग) स्त्रीलिंग के रूपों की मात्रा अल्प है ।

अपूर्ण भूतकाल

अपूर्ण भूतकालीन क्रिया द्योतक रूपों में लिंग और वचन भेद लक्षित होता पुरुष भेद नहीं ।

लिंग एक वचन—

आये हुते (प.१३) आवत्त हते (प.४९) आवते हते (प.६८) चलता आया (प.१२२)

ता रहा (प.११) रहत हतो (प.४) होत रहे (प.६०) होत हतो (प.६०) । इत्यादि

हु वचन—

आवते थे (प.११) जाते रहे (प.५६) बनावत हते (प.५३) होत आए (प.६०) इत्यादि

त्रीलिंग एक वचन—

जाती रही (प.५६)

(क) इन रूपों की संख्या थोड़ी है ।

(ख) स्त्रीलिंग के रूपों का अभाव-सा लक्षित होता है ।

पूर्णभूत काल

पूर्ण भूतकाल के रूपों में लिंग और वचन लक्षित होते हैं ।

लिंग एक वचन—

आइ गये (प.५६) आऐ हते (प.१०२) आया था (प.१६३) आयो थो (प.११३)
आये थे (प.६८) आयो हतौ (प.१०) कीया था (प.१५१) दयौ हतौ (प.६५)
बैठा था (प.५६) बुलाऐ हते (प.४९) लीखो थो (प.११३) छुटो हतौ (प.४०)
रहा था (प.५६) लगे ते (प.६५)

हु वचन—

आइ चुके (प.५३) गऐ थे (प.५६) दऐ ते (प.४) दऐ हते (प.६१)
दये हते (प.६०)भेजे थे (प.११) मीले तैं (प.६५)

स्त्रीलिंग एक वचन—

करी ती (प.६५) करी हती (प.५०) दई हती (प.१३) पठई हती (प.१०३)

मारी गई (प.१२४) भगाइ दई (प.८०) राखी थी (प.१७३)

लगी थी (प.११) लगी हाती (प.८०) लिखीहती (प.२१) लीखी थी (प.६१)

(क) पूर्ण भूतकाल के रूपों में "होना" सहायक क्रिया के रूप जोड़कर बने हुए रूप अधिक मात्रा में मिलते हैं।

(ख) खड़ी बोली और ब्रजभाषा के रूप ही अधिक संख्या में प्राप्त हैं।

(ग) "थे" के स्थान पर "ते" सहायक क्रिया के रूपों का प्रयोग कहीं मिलता है, जो उल्लेखनीय है।

सामान्य भविष्य काल

भविष्यत् काल के रूपों में पुरुष, लिंग तथा वचन के कारण परिवर्तन होते हैं अतः इन्हीं तीनों के अनुसार प्राप्त रूप दिये गये हैं। भविष्यत् काल के इन रूपों में दो भेद स्पष्ट लक्षित होते हैं। प्रथम "ग" प्रत्यय सहित रूप और द्वितीय "ग" प्रत्यय रहित रूप। 'ग' प्रत्यय सहित रूप अधिक संख्या में मिलते हैं और "ग" प्रत्यय रहित रूपों की संख्या अल्प है।

"ग" प्रत्यय सहित प्राप्त रूप—

पुल्लिंग उत्तम पुरुष एक वचन

करैंगे (प.३) करेगे (प.१५, ३२) कहेंगे (प.११६) जायेंगे (प.२०७)

देंगे (प.३) देइगें (प.७) देइगे (प.५६) लवेंगे (प.१२६)

उत्तम पुरुष बहु वचन—

करेंगे (प.६८) करेंगे (प.८४) कहेंगे (प.११८) चलेंगे (प.७)

देवगे (प.११) रहेंगे (प.५६) लगेंगे (प.५६)

मध्यम पुरुष एक वचन और बहु वचन

ये प्राप्त रूप "तुम" या आदरार्थ में "आप—आपु" के साथ प्रयुक्त किये गये हैं अतः उन्हें बहु वचन के रूपों के अन्तर्गत रखा है।

करोगे (प.११८) करोगे (प.१५) करोइंगे (प.६२) कहोगे (प.३) फुरवेंगे (प.५६)

फुरमावेंगे (प.५६) बीसारोगे (प.२८) भेजोगे (प.८७) मानोगे (प.१८८)

दोगे (प.१८५) निभावोगे (प.१२२) रखोगे (प.१८८) रहोगे (प.३)

रहोंगे (प.१८८) रहोगी (प.२६) राखोगे (प.२८) लवोगे (प.१७)

जानोगे (प.१७०) बोलोगे (प.१६२)

अन्य पुरुष एक वचन

आवेगो (प. ११६) आवेगा (प. ५६) उतरेगा (प. ११८) करेगा (प. १०८) करेंगा (प. ३) करेंगे (प. १) करेगे (प. १६२) कहेंगे (प. २०७) पड़ेंगे (प.१) परेगा (प. ९७) पोहचेगा (प. १७७) होगा (प. १७५) होवेगा (प. ६८)

अन्य पुरुष बहु वचन

आवेगे (प. १) आवैगे (प. १७६) आवेंगे (प. ३) करेगे (प. १७९) करेगा (प. १७९) देगें (प. १) देवेंगे (प. १७९) पोंहचेंगें (प. ११३) पीहचावेगे (प. १८२) होंगे (प. १) होईगे (प. १३५) होईगे (प. ५८)

सामान्य भविष्यत काल

इन "ग" प्रत्यय सहित रूपों के सिवा भविष्यत् काल में राजस्थानी भाषा के प्रभाव से प्राप्त रूप मिलते हैं। ये रूप दो प्रकार के हैं। एक "सी" प्रत्यय जोड़कर बने हुए और दूसरे "ला" वा "ळा" प्रत्यय जोड़कर बने हुए। जैसे—

आवसी (प. ७४) करसी (प. ११०) देसी (प. १४७) पड़सी (प. १३२) होसी (प.११७) जाणेला (प. १२२) जाणोला (प. ७४) भेजोळा (प. १८३) रहोळा (प. १२७) इत्यादि।

"ग" प्रत्यय रहित प्राप्त होने वाले रूप निम्नलिखित हैं।

कर हैं (प. ४७) कै है (प. २३) दे है (प. ७) लिख है (प. ९३) पठै हैं (प. ९३) इत्यादि।

"ग" प्रत्यय सहित रूप:—

स्त्रीलिंग अन्य पुरुष एक वचन

आवेगी (प. ९४) आवैगी (प. ९४) करैगी (प. ९७) रहैगी (प. ६८) होइगी (प. ५८) होयगी (प. १४७) होवैंगी (प. १३३) आवसी (प. १४७)

(क) प्राप्त रूपों में खड़ी बोली के ए. व. में "आ" कारान्त और व. व. के "ए" कारान्त रूप मिलते हैं।

(ख) ब्रजभाषा में मिलने वाले "ऍं" "और" औगे प्रत्यय से युक्त कतिपय रूप मिलते हैं।

(ग) लेना और देना क्रिया के रूपों में "व" का आगम लक्षित होता है, जो विशेष बात है।

(घ) राजस्थानी भाषा में मिलने वाले "सी" और "ला—ळा" प्रयत्यय से युक्त रूप मिलते हैं।

(ङ) म. पु. ए. व. के साथ प्रयुक्त रूप का अभाव है।

(च) स्त्रीलिंग के रूप अल्प मात्रा में मिलते हैं।

संभाव्य भविष्यत् काल

इस काळ के क्रिया-रूपों में पुरुष और वचन के कारण भेद लक्षित होता है, लिंग के कारण नही।

उत्तम पुरुष एक वचन

देषु (प. १८) भेजू (प. ६) लिखू (प. ६)
आवै (प. १०) करैं (प. ३) पावै (प. १०) लिखै (प. ४६) लिखैं (प. ६४)
लिखै (प. १०) लीखै (प. ४६) लिखों (प. ३) लेवैं (प. २०५)
होवै (प. २०) होवैं (प. १०८) इत्यादि।

उत्तम पुरुष बहु वचन

उठावै (प. ५६) चलै (प. ७) लीखै (प. २६)

मध्यम पुरुष—

मध्यम पुरुष में प्रयुक्त क्रिया रूपों का कर्ता राज, साहेब, सिरकार और कहीं "आपु" है। जैसे—आपु—करै (प.४) राज—करै (प.२०६) साहेब—करै (प. ६८) सिरकार—जानै (प. ५३) इत्यादि।

अन्य पुरुष एक वचन

आवे (प. १८८) आवै (प. १०२) करै (प. ३) करावै (प. ३४) उटे (उठेगा) (प. २०४) चाहै (प. ८) देवे (प. १२८) देवैं (प. २०५) दीपै (प. ५६) दीवावै (प.३४) पावै (प.१३५) परै (प.३५) वसावै (प.८४) रहै (प १२३) लगे (प. १२) होवैं (प. २०५) होवै (प. २०) इत्यादि।

अन्य पुरुष बहु वचन

आवे (प.१४८) आवै (प. ४) करैं (प. १५२) करै (प. ४) पीहचे (प. ५६) बतावै (प. २०२) रहै (प. १५२) इत्यादि।

(क) उत्तम पुरुष एक वचन में कुछ "उ" वा "ऊ" कारान्त रूप मिलते हैं।

(ख) मध्यम पुरुष में मिलने वाले रूपों की संख्या थोड़ी है।

(ग) कुछ रूपों में अनुस्वार के स्थान पर चन्द्रबिन्दु का प्रयोग लक्षित होता है।

विधि काल

विधिकाल के दो भेद होते हैं (१) प्रत्यक्ष विधि (२) परोक्ष विधि। पत्रों में प्राप्त विधिकाल के क्रिया रूपों का अध्ययन दोनों भेदों के अनुसार किया गया है। प्रथम प्रत्यक्ष विधि के रूप लिये गये हैं और उसके पश्चात् परोक्ष विधि के रूप।

प्रत्यक्ष विधि

इस काल के निम्न लिखित अर्थ मिलते हैं (१) अनुमति, प्रश्न (२) संमति–धमकी, (३) प्रार्थना (४) आग्रह (५) आज्ञा और उपदेश। इन अर्थों में से प्रधानतः "आज्ञा और उपदेश" का अर्थ प्रकट करने वाली क्रियाएँ रहती हैं। अतः यहाँ प्रधानतया उसका ही अध्ययन प्रस्तुत है। इन क्रिया रूपों में पुरुष और वचन के भेद लक्षित होते हैं, लिंग के नहीं। प्राप्त रूपों को देखने पर यह लक्षित होता है कि आज्ञा या उपदेश के अर्थ में प्रमुख रूप से मध्यम पुरुष के रूप ही मिलते हैं।

मध्यम पुरुष एक वचन

(तू) वैठ (प. १८)

"तुम" के साथ प्रयुक्त रूप—

आवजो (प. २५) कीजौ (प. २१) कीजो (प. १२५) दिजौ (प. ८९) दिजो (प. ३०) दीजो (प. २४) दीजौ (प. ३७) देवौ (प. ११) दवौ (प.२) दीवौ (प. २८) बुलाइयौ (प. २) लीजो (प. १८६) लीजौ (प. ४८) इत्यादि।

"आप-आपु" के साथ प्रयुक्त रूप—

किजिये (प. २०५) कीज्ये (प. २२) देजो (प. ९) दीजिये (प. २०५) दीजीये (प. १५७) रोकिये (प. ६९) लीजो (प. ६)

मध्यम पुरुष एक वचन

चलौ (प. ७) आइ (प. १२) होई (प. १२)।

परोक्ष विधि काल

"परोक्ष विधि से आज्ञा, उपदेश, प्रार्थना आदि के साथ भविष्यत् काल का अर्थ पाया जाता है।"

इस काल के रूपों में प्रधानतया मध्यम पुरुष के रूप ही लक्षित होते हैं। ये रूप भिन्न प्रत्ययों के योग से बने हैं। अतः इन रूपों का अध्ययन इन प्रत्ययों के अनुसार किया गया है। मध्यम पुरुष एक वचन "तू" के साथ एक ही रूप मिलता है। अन्य सभी रूप "तुम" या "आप" आपुके साथ प्रयुक्त है, किन्तु इनमें फर्क किसी प्रकार लक्षित

नहीं होता। अतः रूपों को प्रत्ययों के अनुसार विभक्त किया है, न कि तुम और आप सर्वनामों के आधार पर।

मध्यम पुरुष एक वचन—(तू) रहणा (प. ३)।

प्रत्ययों से बने रूप—

ना:—आवना (प. ३६) चुकावना (प. ३६) जाना (प. ७३) देना (प. १३८) देना (प. १७६) करना (प. ७३) होना (प. ६२) राखना (प. १६६) इत्यादि।

णा:—आवणा (प. ३३) करणा (प. १५६) दीखावणा (प. ७७) दीलवाणा (प. ३०) दैणा (प. १६१) पोहचावणा (प. ६६) रहणा (प. २०७) लेणा (प. १७६)

नें-नो-नौ—जानने (प. १०३) रहनें (प. १०३) दैनौ (प. १७६) करनौ (प. ६६) देनौ (प. १२२) जाननौ (प. ४१) रहनौ (प. ४१) इत्यादि।

णो—करणो (प. १३३) वंचणो (प. १८)

वी—कीवी (प. ८) कराइवी (प. ८) पटेवी (प. ५१) देसवी (प. ५०) रहिवी (प. ४) लीवी (प. ४) जानिवी (प. ५३) इत्यादि।

वौ—पेठे वौ (प. ६७) रहिवौ (प. ६६) इत्यादि।

गा—कीजियेगा (प. १०७) फरमाईयेगा (प. १०७) इत्यादि।

गे—करोईगे (प. ६२) दीलावोगे (प.१३०) लीखावोगे (प. १३०) इत्यादि।

गौ : कीजियौगौ (प. ६४) जानियैगौ (प.६४) भेजवाइयैगौ (प.६४) लिखियैगौ (प. ६४) कीजियैगौ (प. १६६) लीजैगौ (प. १६६) दीजियैगौ (प. ६४) रहीयैगौ (प. १६६) इत्यादि।

गी—कीज्यैगी (प.२२) भिजवाइयैगी (प.६४) राखियैगी (प.६४) इत्यादि।

वोला—वोळा—करावोला (प.१८६) करवा वोळा (प.११५) देवोळा (प.१२७) बुलावोला (प. ११५) फरमा वोळा (प. १६८) पोहचावोळा (प. १८६) रखावोला (प. १०६) इत्यादि।

(क) इन रूपों में अनेक प्रत्ययों से बने रूप प्राप्त होते हैं।

(ख) ये भिन्न रूप प्रधानतया खड़ी बोली, ब्रजभाषा और राजस्थानी भाषाओं के प्रभाव के कारण बने हुए हैं। इनमें "ना" "गा" आदि प्रत्ययों से युक्त खड़ी बोली के रूप हैं। ब्रजभाषा में मिलने वाले "गौ", "वौ" "नौ" प्रत्ययों से

युक्त रूप हैं, और "गा" तथा "वोजा" प्रत्ययों से युक्त राजस्थानी भाषा में मिलने वाले रूप भी हैं ।

"वी" परसर्ग से युक्त "केवी", रहिवी, पठेवी इ० बुंदेली में मिलने वाले रूप भी प्राप्त होते हैं ।

(ग) क्रिया रूपों की इतनी विविधता अन्य किसी काल में लक्षित नहीं होती ।

क्रियार्थक संज्ञा

धातु के अन्त में "ना, ने, नौ, रणा, रणे, बा, बौ" इ० परसर्ग जोड़ने से क्रिया का जो रूप बनता है, उसका प्रयोग क्रियावत् न होकर प्रायः संज्ञा के समान किया जाता है । इसी को क्रियार्थक संज्ञा कहते हैं । (क)

"क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग साधारणतः भाववाचक संज्ञा के समान होता है । (ख)

"इस संज्ञा का रूपांतर अकारान्त संज्ञा के समान होता है, और जब इसका उपयोग विशेषण के समान होता है तब इसमें कभी कभी लिंग और वचन के कारण विकार होता है ।" (ख)

"संज्ञा के समान क्रियार्थक संज्ञा के पूर्व विशेषण और पश्चात् संबंध सूचक अव्यय आ सकता है ।" (ख)

प्रस्तुत पत्रों में तीन प्रकार के क्रियार्थक संज्ञा के रूप मिलते हैं । (१) "न" वाले, दूसरे "रण" वाले और तीसरे "व" वाले ।

पत्रों में प्राप्त कुछ क्रियार्थक संज्ञा का अध्ययन इसी क्रम से किया गया है ।

मूल संज्ञा के समान प्रयुक्त—

"न" जाना (प.३८)

आवना (प.६८) करना (प.६४) करने (प.४) करनो

करनौ (प.२) चलना (प.१, ७) देना (प.१३८) देने (प.७९)

दैनै (प.१०३) पालना (प.१५) फिरनौ (प.७) होना (प.१२४)

(क) सूर की भाषा पृ. ३०७

(ख) हिन्दी व्याकरण पृ. ४७२

"ण"

देणा (प.१५८, १६६) पधारणो (प १५६) विचारणो (प.१३२)
लेणा (प.११७) राखणी (प.१६६)

"ब" आइबो (प.२, ५०) करिबो (प.६०) वहबो (प.१२३) भेजबो (प.१५६)
मीलबा (प.७७) पधारबो (प.१५६) राखबो (प.७४)
लिखबो (प.१५६ १७६)

"विभिन्न प्रकार के संबंध व्यक्त करने के लिए अन्य संज्ञाओं में लगाए गए परसर्ग को क्रियार्थक संज्ञा के विकृत रूपों में भी परसर्ग जोड़े जाते हैं । (क)

प्रस्तुत पत्रों में परसर्ग सहित प्राप्त क्रियार्थक संज्ञाए ।

"न"

अवने को (प.५६) आवने से (प.१०८) आवने में (प.५६)
देने का (प.५६) निकलने का (प.१७२) पूजने कु (प.६७) बाँचने से (प.१६८)
बीचारने की (प.१६६) बैठने को (प.१०) रहने को (प.१८०)
लड़ने को (प.५६) लिखने में (प.१४६) लिखने मो (प ६८) लीखने मे (प.१७६) लेने का (प.१८६) होने का (प.१८३) मीलने कु (प.३६) इ० ।

"ण"

आवणे की (प.२०३) औणे की (प.३) करणे की (प.१३३, २०३)
करणे कु (प.२०६) खाणकु (प.३०) देणकु (प.१७६)
देणे में (प.१४६) देणामे (प.१६६) बनावणे की (प.१६२)
मीलणे कु (प.३३) लीखणे में (प.१५०) होणे की (प.३३) इ० ।

"ब"

करिबे की (प.२१) करिबे को (प.६) छुड़ाबे (वे) के (प ४)
पठैबे की (प.६६) लिखिबे की (प.५) लिखिबैकी (प.४१) लिखिबैकी (प.१६)
लिखबामे (७४) लिखबे में (प.७) लिवाइबे को (प.१०३) लेवा को (प.१०७)सुनिबे मे (प.८) राखबामे (प.१०६) भेजबा को (प.१२३)
सुनबामे (प.१७३) खैबेको (खानेको) (प.४०)

संबंध सूचक सहित प्रयुक्त क्रियार्थक संज्ञाए—

करने वास्ते (प १०८) करने खातिर (प.१३७) आवा वासते (प.१६८)

(क) ब्रजभाषा पृ. १०३

विचारणी जोग (प.१३२) होणा लाईक (प.१५९) होवा वास्ते (प.१७४)
करवा लाईक (प.१५९) इ०

प्रस्तुत पत्रों में कुछ विशेष क्रियार्थक संज्ञाएँ मिलती हैं जो निम्न लिखित हैं।

(१) उतरे—"उतरने" के अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है।
उदा०—उतरे की खबर (प.१७४)

(२) चले—चले की खबर न आई (प.५६)

(३) आया—आना के स्थान में इसका प्रयोग किया गया है।
उदा०—ऐठें आया हुवा (प.१२३) आया ठहराया होय (प.११६)

(४) आवे—जैवे—आने-जाने के स्थान में इनका प्रयोग किया गया है, उदा०—
आवें-जैवें की राह—(प.५४)

(५) हुए—हुआ—इनका प्रयोग होना के स्थान में किया गया है उदा०—
"आराम हुए की सुनकै खुसी हुआ है।" (प.१४२)
"राजकु मालूम हुवा वास्ते ।" (प.१५१)

(६) ल्यावना—लाना के अर्थ में ल्यावना का प्रयोग किया हैं,
उदा०—सरकार का तशरीकल्यावना हिंदुस्तान कों जलद होय (प.१०८)

प्रेरणार्थक क्रियाएं

"दूसरे शब्दों से बनी हुई धातुओं के, जो विकृत रूप वाक्य में कर्ता का किसी कार्य या व्यापार की ओर प्रेरित किया जाना सूचित करते हैं, वे प्रेरणार्थक धातु कहलाते हैं।" (अ) इसी से प्रेरणार्थक क्रिया बनती हैं। (अ)

मूल धातु के जिस विकृत रूप से क्रिया के व्यापार में कर्ता पर किसी की प्रेरणा समझी जाती है।" उसे प्रेरणार्थ धातु कहते हैं। (आ)

"आना, जान, सकना, होना, रुचना, पाना" आदि धातुओं से अन्य प्रकार की धातु नहीं बनती हैं। शेष सब धातुओं से दो दो प्रकार की प्रेरणार्थक बनतीं हैं। जिनका पहला रूप बहुधा सकर्मक क्रिया ही के अर्थ में आता है। और दूसरे रूप से यथार्थ प्रेरणा समझी जाती हैं, जैसे गिरता है, गिराता है, गिरवाता है। (इ)

(अ) सूर की भाषा पृ ३०४।
(आ) हिन्दी व्याकरण पृ. १२८
(इ) हिन्दी व्याकरण पृ. १२९

प्रस्तुत पत्रों में क्रियाओं के प्रेरणार्थक रूप मिलते हैं—ये रूप दो प्रकार के हैं, पहला रूप प्रथम प्रेरणार्थक या सकर्मक क्रिया के अर्थ में प्राप्त होने वाला और द्वितीय यथार्थ प्रेरणार्थक। प्राप्त प्रेरणार्थक रूप प्रायः दो प्रधान नियमों से बने हैं।

(१) "मूल धातु के अंत में "आ" जोड़ने से पहला प्रेरणार्थक और "वा" जोड़ने से दूसरा प्रेरणार्थक रूप बनता है।" (३)

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त प्रेरणार्थक रूप निम्नलिखित हैं—

उठना—उठाया (प.११५)

करना—कराया (प.५६) कराऐ (प.७) करवाए (प.१४७) करवायकें (प.१३६) करायकें (प.१४१) करावौगे (प.१३४)—करवा वोला (प.११५)

चलना — चलायकें (प. १५१) चलावनौ (प. १५५)

छोडना — छुड़वाए (प. १४६)

देखना — दिखावणा (प. ७७)

निकालना— निकाल (प. १४६)

पहुंचना — पोहचावणा (प. ६६)

बचना — बचावणा (प. १६६)

बताना — बतलाये (प. ११)

बुलाना — बुलावायो (प. ६४)

बैठना — बैठाये (प. ११५) बीठलाई (प. २०१)

भागना — भजाई (प. ८०)

भेजना — भिजवाइयेगी (प. ६४)

मरना — मारा (प. १४६) मारि (प. ४) मारी (प. ११५)

रखना — रखावोगे (प. ५६) रखावजो (प. १५६)

लगना — लगायो (प. १७४) लगवायो (प. १४६)

लिखना — लिखाइत (प. ६५) लिखावते (प. १८५) लिखवाए (प. १४६)

लूटना लुटवाई (प. ११५) लुटवायो (प. ११५)

पठवना — पठवाइवी (प. ८) पठवाइयो (प. ७६)

(२) "एकाक्षरी धातु के अंत में "ला" और "लवा" लगाते हैं।" (३) कभी "धातु

(३) हिन्दी व्याकरण, पृ. १३०

को "इ" कारान्त करके और उसके अन्त में "वा" जोडकर (ऊ) प्रेरणाथक रूप बनाते हैं।

देना — दिलावोगे (प. १३०) दिलवावो (प. १६६) दिलवायजो (प. ३०)

देना — दीवाऐ (प. ४४) दीवावोगे (प. १३०)

पत्रों में प्रप्त प्रेरणार्थक रूपों में प्रथम प्रेरणार्थक रूपों की संख्या अधिक है।

—कृदन्त—

प्रस्तुत पत्रों में क्रिया की रूप रचना में कृदन्ती रूप अधिक मात्रा में मिलते हैं। रूपान्तर के आधार पर कृदन्त दो प्रकार के होते हैं (१) विकारी (२) अविकारी। (१) विकारी कृदन्तों के भेदों में वर्तमान-कालिक कृदन्त और भूतकालिक कृदन्त तथा (२) अविकारी कृदन्तों में से "पूर्वकालिक" और "तात्कालिक" कृदन्त अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। अतः इस अध्ययन में इन्हीं भेदों का अध्ययन किया गया है।

इन कृदन्तों में से वर्तमान-कालिक कृदन्तों का प्रयोग सामान्य वर्तमान काल और अपूर्ण भूतकालीन क्रियाओं की रचना में किया गया है। भूतकालिक कृदन्तों का प्रयोग सामान्य भूतकाल और पूर्ण भूतकालीन क्रियाओं की रचना में किया गया है। अतः उनका अध्ययन यहाँ नहीं किया गया। इस अध्ययन में केवल "पूर्वकालिक" और "तात्कालिक" कृदन्तों का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

पूर्व कालिक कृदन्त—

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त पूर्वकालिक कृदन्तों के निम्नलिखित रूप मिलते हैं।

(अ) क्रिया का मूल रूप पूर्व-कालिक कृदन्त के समान प्रयुक्त हुआ है। उदा०
उठ (प. ५६) उत्तर (प. १७१) छोड़ (प.५६) जान (प.२०१) देख (प.५६) भेज (प,२०१) रह (प. २०४) राख (प. १७१) लिख (प. ६) ले (प. १४७) सुन (प. २)

(आ) क्रिया के मूल रूप में "इ" या "ई" परसर्ग जोड़कर जैसे—
आइ (प. २१) अुठि (प. ४) करि (प. २) कहि (प. ६) काटि (प. ५०) खाई (प. ५६) छोड़ि (प. ४६) तोरि (प. ५७) पाई (प. ५४) लीखी (प.६)

(इ) किया के मूल रूप में "आइ" परसर्ग जोड़कर उदा०
उठाइ (प. २) बचाइ (प. ५६)

(ऊ) सूर की भाषा, पृ. २०५

(ई) क्रिया के मूल रूप में "कर" परसर्ग जोड़कर। उदा०—
काटकर (प.१६२) देकर (प.१५६) पोहचकर (प.१६३) फुटकर (प.५६)
बुलायकर (प. १८१) मीलकर (प. ५६) लैकर (प.१८१) होकर (प.१५६)
होयकर (प.०२) बुलायकर, होयकर रूपों में कर परसर्ग के पूर्व "य" का
आगम लक्षित होता है।

कहीं संज्ञाओं के अन्त में "कर" परसर्ग जोड़कर, उदा०—
कुचकर (प. १६३) तांबा-पत्र कर (प. १६७) दार मदार कर (प. ५६)
प्रतीग्या कर (प. १६७) प्रश्नपत्री कर (प. १६७)

(उ) "करके या करकै" "करीकें", "करायकें"
(कुच) करके (प.१३१) (कजिया) करकै (प. ७) (दंगो) करीके (प.१४१)
(बन्दोबस्त) करायके (प. १४१)

(ऊ) क्रिया के रूप में "के" परसर्ग जोड़कर, उदा०—खाके (प.१५१) चलके (प.१५१)
जाके (प. १४६) देके (प. १४१) मीलके (प. ५६) राखकें (प. १६४)
लेके (प. १४१) होके (प. ५६)
कहीं किसी आगम के अनन्तर "के" परसर्ग जुड़ा हुआ मिलता है।
उदा०—आएके (प. १४६) बैठिके (प. १६६) लायकै (प. १५१)।

(ए) क्रिया के मूल रूप में "कै" जोड़कर जैसे—
उठिकै (प. ७) करकै (प. ३) जानकै (प. १७६) देकै (प. १६)
पटकै (प.७) भागकै (प.१०२) लिखकै (प.३) लैकै (प.७) होकै (प.३) इ०।
कहीं परसर्ग के पूर्व—
"इ. ई" या "य" आगम होकर उसके पश्चात परसर्ग होता है—
उदा०—कहिकै (प. ६०) काढि कै (प. ६) देखि कै (प. ६०)
भागिकै (प. २१) आई कै (प. ३८) देखी कै (प. १२)
आय कै (प. १८६) होय कै (प. १८६) इत्यादि

(ऐ) क्रिया के मूल रूप में "य" जोड़कर पूर्वकालिक कृदन्त बने हैं। जैसे—
आय (प २२) खाय (प. १७४) जाय (प. १३३) भिजवाय (प. १३५)
होय (प. १६७) इत्यादि।

तात्कालिक कृदन्त—

प्रस्तुत पत्रों में तात्कालिक कृदन्तों के उदाहरण अल्प मात्रा में मिलते हैं। "इस कृदन्त से मुख्य क्रिया के समय के साथ ही होने वाली घटना का बोध

होता है । (क) यह कृदन्त कभी अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त से तो कभी अपूर्ण क्रिया द्योतक कृदन्त के अन्त में "ही" जोड़ने से बना है । उदा०—

देखत (कागद प. १२८) । देखत कागल (प. १२५) वरात देखत (प.८६)
देखते कागद के (१२३) पौहचतेसे स्वारी के (प. ११) देखते रुकेके (प. ११)
खवर के सुनते ही (प. ५६)

संयुक्त क्रिया

"क्रिया के अनेक अर्थों को व्यक्त करने के लिए वहुवा दो तथा कभी-कभी तीन तीन क्रियाओं का एक साथ प्रयोग किया जाता है । (क)-१ इनमें एक क्रिया मुख्य रूप में और दूसरी सहायक रूप में प्रयुक्त होती है ।" ऐसे संयुक्त प्रयोगों से प्राय: मुख्य क्रिया के अर्थ में कुछ विशिष्टता या नवीनता आ जाती है । (ख) (प्रस्तुत पत्रों में भी संयुक्त क्रियाओं के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं ।) संयुक्त क्रियाओं में प्रधान क्रिया का "होना" सहायक क्रिया के साथ संयोग अत्यधिक प्रचलित है । प्रस्तुत पत्रों में संयुक्त क्रिया का अनेक स्थानों पर प्रयोग किया गया है और उसमें भी "होना" सहायक क्रिया के साथ संयोग अत्यधिक मात्रा में प्राप्त होता है ।

प्रस्तुत पत्रों में मिलनेवाली संयुक्त क्रियाओं में "वर्तमान कालिक" भूतकालिक" और "पूर्व कालिक" कृदन्तों से वनी क्रियाएं सवसे अधिक संख्या में हैं । इनके सिवा क्रियार्थक, पुनरुक्त इत्यादि अन्य प्रकार की संयुक्त क्रियाएं मिलती हैं । संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग और पूर्ण वर्तमान तथा भूतकाल के रूपों में मिलता है । यहाँ केवल कुछ विशेष "संयुक्त-क्रियाओं के प्रयोगों का अध्ययन किया गया है ।

संयुक्त क्रिया—

(१) वर्तमान कालिक कृदन्त से वनी—साधारणतया वर्तमान (अपूर्ण) निश्चयार्थ के लिए क्रिया का वर्तमान कालिक कृदन्ती रूप सहायक क्रिया के रूपों के साथ प्रयुक्त होता है । इन क्रियाओं से प्राय: नित्यता सूचित होती है ।
कहत है (प.४) डुवत है (प.७) देत है (प.४०) रखता है (प.१८) चलावते थे (प.११)

(क) (कामता प्रसाद गुरु) हिन्दी व्याकरण पृ. ४७६.
(क)-१ व्रजभाषा पृ. १११ ।
(ख) सूर की भाषा पृ. ३३८ ।

पाते है (प.२०) चलत है (प. ३०) आवत हते (प. ४६) होत आए (प.६०)
आवती है (प. ५४) भरता आया है (प. १४८) इत्यादि ।

वर्तमान कालिक कृदन्त के साथ "रह" धातु के रूप का प्रयोग करने से निरंतरता का बोध होता है । उदा०—

जात रहै (प. २१) देखत रहत है (प. ५०) जातो रहो (प. ५६) जात रही (प. ५१) लिखत रहिवी (प. ४) राखत रहे हे (प. ३५) जाता रहा (प.११) लिखावता रहैला (प. २२) आवत जात रहत है (प. २८) जात रहे हते (प. ५०) इत्यादि ।

(२) भूतकालिक कृदन्त से बनी—

भूतकालिक कृन्दतों से बनी संयुक्त क्रियाओं से 'तत्परता" निश्चय, अभ्यास" आदि की सूचना मिलती है । प्राप्त पत्रों में इसके कतिपय उदाहरण मिलते हैं, कुछ इस प्रकार हैं—

गऐ हे (प. ४५) करी दयी है (प. ८) बैठा हु (प. १८) दई है (प. १६) आया है (प. २४) आयी हती (प. ४३) दीयी हते (प. १०) आये थे (प.२०) बैठा था (प. १८) आया छा (प. ६१) लगायी छै (प. १७४) हुई छी (प. १७४) इत्यादि ।

(३) पूर्वकालिक कृदन्त से बनी—

पूर्वकालिक कृदन्तों से बनी हुई संयुक्त क्रियाओं के द्वारा प्रायः कार्य की निश्चयता, आकस्मिकता, सशक्तता, पूर्णता आदि सूचित होती हैं । जैसे—

हम उठि आई (प. ४) बंजारे को लै जाइ (प. ७) दारु मंगाकर पीते है (प. २०) लिखा पठवाऐ (प. १) छुड़ाई लए ते (प. ४) छोड़ गयो (प. ७) अचानक आइ घेरा (प. ५६) मुद्रा करि दये (प. ६०) इत्यादि ।

(४) क्रियार्थक संज्ञा से बनी—

इस प्रकार की क्रियाओं से कहीं "आवश्यकता, अनुमति" सूचित होती है, तो कभी "आरंभ और अवकाश ।"

उदा०—करनी है (प. २) फिरनी लगत है (प. ७) देणे लगे (प. २०) करन है (प. ४२) लड़ने लगे (प. ११) चलावने लगे (प. ११) उत्तरिबेकी हैं (प. २१) आइवो भयो (प. ५०) आवना हुवा हुये (प. ६८) देने परत है (प. ६५) लेणा ठराया (प. ११७) पधारणो हेनु है (प. १५६) इत्यादि ।

(५) कुछ विशेष क्रियाएं—

"लगना" क्रिया के योग से बनी संयुक्त क्रिया से आरंभ का बोध होता है
लड़ने लगे (प. ११) चलावणे लगे (प. ११) देणे लगे (प. २०)
लगी हती (प. ८०)

"चुकना" क्रिया से पूर्णता का बोध होता है उदा०—
चुका दवौ (प. २) बैठि चुको (प. २१) आइ चुके (प. ५३) इत्यादि।

पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएं

"क्रिया की निरंतरता, अधिकता आदि को प्रभावोत्पादक रीति से सूचित करने के लिए कभी कभी क्रियाओं की आवृत्ति की जाती है। ऐसी क्रियाएं प्रायः सहचर-रूप में प्रयुक्त होती हैं, जिनकी कभी तो ध्वनि में समानता रहती है कभी अर्थ में एक रूपता।"(क)

प्रस्तुत पत्रों में पुनरुक्त क्रियाओं के उदाहरण मिलते हैं उनमें कुछ इस प्रकार हैं—
उठाइ-बुलाइ यो (प. २) करत-जात है (प. २१) दिवाइ-पठई (प. ३२)
पाऐं-आऐं (प. १६) पाअैं-खाअैं (प. १६) लरतु-भिरतु (प. ५३)

तीन क्रियाओं के संयुक्त रूप—

प्राप्त रूपों में तीन तीन क्रियाओं से बने हुए कतिपय रूप मिलते हैं उनमें कुछ इस प्रकार हैं—

करत जात है (प. २१) करि ही दयौ है (प. ८) बह दीनी हैं (प. १६६)
कही पठवाई हती (प. ६) कराइ दई हती (प. १३) चली आई है (प. ६६)
चल्यो आवे छै (प. १३२) भऐ बैठे है (प. ५६) लग रह्यो है (प. ५६) लगा दिए है (प. १५५) समझायवी दिये है (प. ३) होती आई है (प. १४६)
मनावते रहते है (प. १०८) इत्यादि।

चार क्रियाओं के संयोग से बना रूप—

आवत जात रहत हैं (प. २८)

संयुक्त क्रियाओं के अध्ययन से यह लक्षित होता है कि इनका प्रयोग प्रमुखतया क्रियाओं की काल रचना और अर्थ भेद के लिए किया गया है। इनके द्वारा यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन भाषा में संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग करके अपना

(क) सूर की भाषा, पृ. ३४०।

अर्थ स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। इन रूपों में भी खड़ी बोली, व्रजभाषा और राजस्थान की भाषा में मिलने वाले क्रियाओं के प्रयोग अधिक मात्रा में मिलते हैं।

पत्रों में प्राप्त क्रियाओं की सूची

(१) अवधारना (प. २२)
(२) आना (प. १)
(३) उठना (प. ७)
(४) उतरना (प. २१)
(५) उरना—२ (मराठी शेष रहना)
(६) करमा—१
(७) कसना—५३
(८) कहना—३
(९) काढ़ना—७
(१०) खाना—१८
(११) गिरना—१२४
(१२) गुजरना—५६
(१३) घालना—११५ (मराठी घालणें, हिन्दी डालना)
(१४) घेरना—५६
(१५) चढ़ना—६
(१६) चलना—४
(१७) चाहना—५८
(१८) चुकना—२
(१९) चुगना—६१
(२०) छीनना—३० छोड़ना (प. ७)
(२१) जानना—४
(२२) टोडना—५७
(२३) जाना—४
(२५) ठहरना—६०
(२६) डूबना—७
(२७) देखना—७
(२८) देना—१
(२९) दौढना—१६०
(३०) नाखना—६१
(३१) निकलना—१५१
(३२) निभाना—१२२
(३३) निहारना—१८
(३४) पकड़ना—६५
(३५) पड़ना—५६
(३६) पधारना—५७
(३७) पठाना—४ (मराठी—पाठविणें, हिन्दी—भेजना)
(३८) पहुचना—७
(३९) पाना—४
(४०) पीना—२०
(४१) पूछना—१८६
(४२) फरमाना—४५
(४३) फसाना—१६६
(४४) फिटना—४५ (मराठी)
(४५) फिरना—७
(४६) वंचना—६
(४७) बताना—११
(४८) बनना—६६
(४९) बसना—८४
(५०) बुलाना—२

(५१) वैठना—१३ (५२) भरना—१२
(५३) भिड़ना—५३ (५४) भेजना—३
(५५) मचना—१८३ (५६) मरना—४
(५७) मड़ना—४ (५८) मानना—१०
(५९) माँगना—१० (६०) मिटना—१५•
(६१) मिलना—७ (६२) मोकल्या (गुजराती०)
(६३) रखना—३ (६४) रटना—९८
(६५) रहना—३ (६६) रोकना— ६९
(६७) लगना—१ (६८) लड़ना—११
(६९) लाना—६४ (७०) लूटना—४०
(७१) लेना—४ (७२) लिखना—१
(७३) वाचनौ—१ (मराठी–वाचणें)
(७४) सकना—२ (७५) संधना—४ (जुड़ जाना)
(७६) समझाना—३ (७७) सधना—१९१
(७८) सुनना—७ (७९) सूझना—५७
(८०) सोंपना—३ (८१) होना—१

—अ व्य य—

(१) क्रिया विशेषरण—

"जिस अव्यय से क्रिया की कोई विशेषता जानी जाती है उसे क्रिया विशेषरण कहते हैं।" (क)

"जिन अव्ययों के द्वारा क्रिया की किसी प्रकार की विशेषता बतायी जाती हैं उन्हें क्रिया विशेषरण कहते हैं। यह विशेषता–क्रिया का स्थल, काल, रीति या धर्म चताते हैं।" (ख)

इन परिभापाओं को देखने से एक वात स्पष्ट होती हैं कि क्रियाविशेषरण अव्यय हैं और वे क्रिया की विशेपता वतलाते हैं। किन्तु इससे एक और शंका निर्माण होती है। "क्या सभी क्रिया विशेषण अव्यय होते हैं ?" इस शंका के उत्तर के संवंध में

(क) हिन्दी व्याकरण पृ. १३५
(ख) मराठीचे शास्त्रीय व्याकरण पृ. १९२

विद्वानों में मतभेद है; क्योंकि "कुछ विभक्त्यंत शब्दों का प्रयोग क्रिया–विशेषण के समान होता है, जैसे "अंत में, इतने पर, ध्यान से, रात को" इत्यादि। इस शंका के समाधान में कहा गया है कि विभक्त्यंत शब्दों से आगे कोई विकार भी नहीं होता, इससे इनको अव्यय मानने में कोई बाधा नहीं है। परन्तु यह मत पूर्णतया माना नहीं जा सकता; क्योंकि इनके अन्तर्भूत संज्ञा या सर्वनाम में विकार होता है।

इस वाद में न पड़कर हम सिर्फ यह कहते हैं कि क्रिया–विशेषणों के दो प्रमुख भेद हो सकते हैं। (१) अव्यय क्रिया विशेषण (२) यौगिक क्रिया विशेषण। दूसरे प्रकार के क्रिया विशेषणों की संख्या काफी हो सकती है। और उसके अध्ययन में विभिन्नता भी। अतः हम अपने अध्ययन में मुख्यतः क्रिया विशेषण अव्ययों का तथा मूल क्रिया विशेषणों का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे और स्थानीय तथा यौगिक क्रिया विशेषणों का संक्षिप्त संकेत मात्र करेंगे।

"क्रिया विशेषणों का वर्गीकरण तीन आधारों पर हो सकता है

(१) प्रयोग (२) रूप और (३) अर्थ।" [ग] अर्थ के अनुसार होने वाले क्रिया विशेषणों का अध्ययन महत्वपूर्ण है। अतः उसका ही अध्ययन यहाँ प्रस्तुत है।

(अ) अर्थ के अनुसार क्रिया विशेषणों के चार भेद होते हैं।

(१) स्थान वाचक (२) काल वाचक (३) परिमाण वाचक (४) रीति वाचक।

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त इन भेदों के अंतर्गत होने वाले क्रिया विशेषण

(१) स्थान वाचक—स्थान वाचक क्रिया विशेषणों के दो भेद हैं—

(अ) स्थिति वाचक (आ) दिशा वाचक।" [क]

(अ) स्थिति वाचक क्रिया विशेषण—

अगे (प. १५१)	आगे	
अटे (प. २०४)	अठै (प. २०२)	आठे (प. ११८)
अेठ (प. २२)	अेठा (प. १२२)	एंठे (प. १२३)
इठे (प. ११३)	इटे (प. १२३)	अेठ (प. १०९)
अत्र (प. ६)	इनै (प. ७६)	इहां (प. ५)
इहा (प. ७)	ईहा (प. ११, १५ अनेक पत्रों में प्राप्त)	

(ग) हिन्दी व्याकरण, पृ. १२६।
(क) " पृ. १४०।

ईठा (प. १०९)	ईठै (प.११६)	उहा (प. ८, २८ इत्यादि)
ऊपर (प. ५७)	कहां (प. ४०)	कहा प.)
कोठे (प. ७६)	जावजा (प. २०१)	जाहा (प. १८१)
ज्याहा (प. १८६)	यहां (प. ४३)	या (यहाँ) (प. ५१)
ह्या-यहाँ (प. ५८)	वाहां (प. १३४)	बीच (प. ४)

(आ) दिशा वाचक क्रिया विशेषण—

असफेर (प. ५४)	आत्रफ (प. ११८)	धा त्रफ (प. ५६)
आसपास (प. ५४)	इधर (प. १५१)	ईधर (प. १८९)
उ (उधर) प. ६)	उधर (प. १५१)	पार (प. २१)
पैलेपार (प. ५०)	सबत्रह (प. २२)	

(२) काल वाचक क्रिया विशेषण:—

अव (प. २, ४)	अवकै (प. २१)	अवै (प. ११६)
अवै (प. १५)	आव (प. २०)	आभी (प. २००)
अवताई (प. ३०)	अवलौ (प. १३)	कव (प. ७)
कव कव (प. ७)	कवलौ (प. २१)	कवह
कदे ही (प. १६४)	कटाताइ (प. २०७)	कहांतक (प. ३)
कहांताई (प. ६८)	कहालग (प. १६८)	जद (प. ५६)
जदी (प. १६७)	जवते (प. ५४)	तद (प. १५१)
तदुत्तर (प. ६०)	तब (प. ७)	तवकै (प. १०)
तुरत (प. १०)	तुर्त (प. १२५)	ताई (प. १५९)
तौ लौ (प. ५२)	पाछै (प. ४)	फेग्पाछै (प. ४)
पूर्वापर (प. ११९)	वहुधां (प. ७९)	वहुधा (प. १६४)
सदा (प. +)	सदैव (प. ११८)	
सर्वदा (प. ११५)	सांप्रत (प. ४)	स्दा (प. १६)
सदा सर्वदा (प. १०)	सदा सरवदा (प. १४१)	
हमेशा (प. १०७)	हमेस (प. ४)	हमेसा (प. २८)
हामेस (प. २०७)	हमेसे (प. १२३)	हरगीज (प. १८८)
हाल (प. ७)	हाली (प. १५६)	हरहमेस (प. १७९)

+ अनेक पत्रों में प्राप्त ।

नग (प. १२४) लगायत (प. १३३) लौ (प. १५६)
लो (प. ४, १५ इत्यादि)

(३) रीति-वाचक क्रिया-विशेषण

अचानक (प. ५६)	इकाइक (प. ५०)	अैसो (प. ७)
कैसो (प. १)	केसी (प. १)	जयापुर्व (प. १५७)
जरूर (प. २)	जलद (प. १०८)	जलद-जलद (प. १४७)
जल्दी (प. १३६)	जैसो (प. ३)	तैसा (प. ३)
परभारा (प. २०७ मराठी प्रयोग)		परस्पर (प. ११३)
वेग (प. ५४=जल्दी)	वेगाही (प.१७१)	सताब (जल्दी प. १२३) (क)
सिताब (प. ५६)	सीताब (प. १३१)	सुदामत (प.१६२)
हक नाहक (प. ३३)		

(४) निषेध वाचक क्रिया विशेषण—

न (प. २, ४)	नहि (प. ३०)	नही (प. ३, ४ +)
ना (प. ३४)	नाहि (प. ६)	नाही (प. ४, ७ +)
न्हो (प. २०)		
मत (प. ७)	मती (प. ३३)	

उपरोक्त मूल क्रिया विशेषणों के अलावा रूप विभाजन के अनुसार मिलने वाले यौगिक और स्थानीय (ख) क्रिया विशेषण हैं।

जो क्रिया विशेषण दूसरे शब्दों में प्रत्यय वा शब्द जोड़ने से बनते हैं, उन्हें यौगिक क्रिया-विशेषण कहते हैं। (ख) ये संज्ञा, सर्वनाम विशेषण, धातु इत्यादि से बनते हैं, जैसे—रातको, जिससे, इतने में, आते इत्यादि (ख)

"दूसरे शब्दभेद जो बिना किसी रूपान्तर के क्रिया विशेषण के समान उपयोग

+ अनेक पत्रों में प्राप्त।

(क) फार्सी मराठी कोश पृ. २५२ "रस्मेबंदी सुदामत चले।" (प. १६२)

(ख) हिन्दी व्याकरण पृ. १३७।

में आते हैं, उन्हें स्थानीय क्रिया–विशेषण कहते हैं। जैसे सुन्दर सीती है, दौड़कर चलते हो इत्यादि। (ग)

ये दोनों प्रकार के शब्द, या वाक्यांश क्रिया विशेषण के समान प्रयुक्त किये जाते हैं। इनको क्रिया–विशेषण कहा जा सकता है। क्रिया विशेषण अव्यय नहीं। अत: प्रस्तुत अध्ययन में केवल क्रिया विशेषण अव्ययों का अध्ययन किया गया है। यौगिक तथा स्थानीय क्रिया विशेषणों का अध्ययन नहीं किया गया है।

(२) संवंध सूचक

"जो अव्यय संज्ञा (अथवा संज्ञा के समान उपयोग में आने वाले शब्द) के बहुधा पीछे आकर उसका संवंध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ मिलाता है उसे संवंध–सूचक कहते हैं।" (क)

"कोई–कोई कालवाचक और स्थानवाचक अव्यय क्रिया विशेषण भी होते हैं और संवंध सूचक भी। जब ये स्वतंत्र रूप से क्रिया की विशेषता बताते हैं, तब उन्हें क्रिया विशेषण कहते हैं, परन्तु जब उनका प्रयोग संज्ञा के साथ होता है तब वे संवंध सूचक कहाते हैं।" (ख)

संवंध सूचकों का वर्गीकरण करने की आवश्यकता नहीं, किन्तु हिन्दी व्याकरण में जो इनका वर्गीकरण दिया है वह सुविधाजनक होने से उसका ही आधार लिया गया है।

(१) काल वाचक संवंध सूचक

(ता) उपरांत (प. ७) उपर (राती प. ११५), बाद–(बरसात) (प. १३३)
(ता) पीछे (प. १०२) (वरस) पीछे (प. ६) (के) पीछे (प. ११)

(१) इसमें प्राप्त उपरी का अर्थ उपरान्त है तथा बाद का अनन्तर। तथा अन्य कतिपय उदाहरणों में संवंध सूचक को संज्ञा के पहले लिखा गया है।" संवंध–सूचक को संज्ञा के पहले लिखना उर्दू रचना की रीति है।" (ग)

(ग) हिन्दी व्याकरण पृ. १३६।
(क) हिन्दी व्याकरण पृ. १५४।
(ख) हिन्दी व्याकरण पृ. १५५।
(ग) हिन्दी व्याकरण पृ. १५७।

(२) स्थान वाचक—

के आगे (प. १५१)　　के ऊपर (प. १५१)　　(हमारे) ऊपर (प.१०)

(इनी) नजीक (प. १५०) नजीक...के (प. १५०)

के पास (प. ३ +)　　(अपने) पास (प. ४)　　(अपणो) पास (प. ११५)

(उन) पास (प. ३०)

के पीछे (प. ११)　　(ता) पीछे (प. १०२)　　(बरस) पीछैं (प. ६)

बाहर　　बाहेर (प. १५१)

(अपने) तघा (प. ४)

नजीक (नजदीक) संबंध सूचक का प्रयोग दोनों रीति से संज्ञा के पूर्व तथा संज्ञा के अनन्तर किया गया है जैसे

१. इनी नजीक तथा नजीक सवाई जैपुर के...। (प. १५०)

पास प्रयोग के पूर्व "के" परसर्ग मिलता है या सर्वनाम के विकृत रूप, उन, अपने इत्यादि के बाद उसका प्रयोग किया गया है।

पीछे का प्रयोग परसर्ग "के" सर्वनाम के विकृत रूप के अनन्तर मिलता है। कहीं संज्ञा के साथ उसका प्रयोग मिलता है, जिसमें परसर्ग "के" अव्याहृत है।

उदा० बरस-पीछे (प. ६)

(३) दिशा वाचक :

(आगुन) धा =(तरफ प. १३)

(काहू) तरफ (प. ५०)　कि–तरफ (प. ११७)　　की-तरफ (प. २०)

के–तरफ (प. ३०)　　(दोनो)–तरफ (प. १४६) (चारो)-तरफासु (प.१५१)

की–तरफमों (प. १३४)

त्रफ (प. २२ +)　　(राजका) त्रफ (प. १४४) त्रफु (प. १७६)

दिशा वाचक के अर्थ में मुख्यतय: तरफ का प्रयोग किया गया है। तरफ के स्थान पर त्रफ का प्रयोग अनेक स्थानों पर मिलता है। तरफ संबंध-सूचक के पूर्व "का, की, के" परसर्ग का प्रयोग किया गया है।

(४) साधन वाचक :

मारफत (प. १७)

मारफत का प्रयोग फारसी शैली के अनुसार संज्ञा के पूर्व किया गया है, जैसे–"मारफत श्री भट गोविन्द ...।" (प. १७)

+ अनेक स्थानों में मिलता है।

"पर" का प्रयोग भी सावन वाचक संबंध सूचक के समान मिलता है। जैसे—"ता पर से हकीकती जानिया ...।" (प. १४५)

(५) हेतु वाचक

(काम) खातर (प. १४३) (वान की) खातर (प. १७१)
(सहल करने) खातरि (प. १३०) (वदल) खातीर (प. १५६)
(गंगाजी) निमत्त (प. ६)
(ताके) लाने (प. ७, ३६) (या) लाने (प. १)

वासते या वास्ते

(मीलाम) वासते (प. १६३) (जी) वासते (प. १६३) (वात) वासते (प. ६१)
(के) वास्ते (प. ११) (यों) वास्ते (प. १३१) (एही) वास्ते (प. ४)
(करवो) वास्ते (प.१८०) (विगाड़) वास्ते (प.३०१) (मालुम हुवा) वास्ते (प.१५१)
(इ) वास्ते (प. ११६) (ईम) वास्ते (प. १८) (ति) वास्ते (प. ११८)
(के) सवव (प. ७, ४०) (इस) सवव (प. १५८) (वंदोवस्ती) सवव (प. १५९)

हेतुवाचक संवंध सूचकों में "खातर" और "वास्ते" का प्रयोग अधिक मिलता है। वास्ते या उसके समानार्थी शब्दों का प्रयोग संज्ञा तथा सर्वनामों के पश्चात मिलता है। "वास्ते" के पूर्व कहीं "के" परसर्ग मिलता है कहीं वह अव्याहृत है।

(६) विषय वाचक

(मकड़) बावत (प. १३०) (दुकान) बावति (प. १४०) बावद (प. २७)

(७) व्यतिरेक वाचक

(सनदै) विन (प. ३६) (मरजी) वीना (प. १३४) वीना (पैसें) (प. १६८)
(आपु) सिवाइ (प. १०२) (तें) सिवाई (प. ४) (हुकम) सिवाई (प. ११३)
(या) सीवाय (प. १०५) (ईस) सीवाये (प. ११) (या) सिवाए (प. १)

व्यतिरेक वाचक में विना और सिवा (सिवाइ-सीवाय) का प्रयोग किया गया है। विना का प्रयोग संज्ञा के पूर्व तथा पश्चात मिलता है। किन्तु सिवाइ या सिवाय का प्रयोग केवल संज्ञा या सर्वनाम के पश्चात ही मिलता है।

(८) सादृश्य वाचक

जोग्य (+) (विचारणो) जोग (प. १३२) (आपको) जोग्य (प. १२३)
+ जोग, जोग्य इनका प्रयोग अनेक पत्रों में मिलता है।

(उन) बमूजब (प. १५०)। (बरचको) बमूजब (प. १५०)। (टीपे) बमोजीब (प. १२८)

(जी) मूजब (प. १३२)। (लिखे) मुजब (प. १४७)

प्रस्तुत पत्रों में प्रायः बमूजब का प्रयोग किया गया है, किन्तु कहीं मुजब या मूजब का प्रयोग भी मिलता है।

(इ) भात (प. ११७) (जी) भात (प. ११८) (आन) भांति (जा) भांति (जोन) भांति

(ना) माफक (प. ३) (तो) माफक (प. ४४) (ती) माफक (प.१५८)

(दस्तूर) माफक (प.३) (मरजी) माफक (प.११६)। (मरजाद) माफक (प.१६४)

(जा) माफिक (प. ४६) (ता) माफिक (प. १०३) (वा) माफिक (प. ११६)

(किस) माफिक (प. १५५) (करार) माफिक (प. १११)

(लिख्या) माफीक (प. २०६) (लिख्या) मुवाफिक (प. १२२)

"मुआफिक" संबंध सूचक भिन्न रूपों में मिलता है। उसका प्रयोग संज्ञा तथा सर्वनाम के पश्चात् किया गया है।

(आपनै) लाईक (प. ४१)। (होणा)–लाईक (प. १५३)। (राज) ल्यागेक (प. ११५)

इनका प्रयोग "लायक" के स्थान में किया गया है और संज्ञा या सर्वनाम के पश्चात् ही वह मिलता है।

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त संबंध सूचकों में से सादृश्य-वाचक संबंध सूचकों की संख्या सबसे अधिक है। सादृश्य वाचक संबंध सूचकों में एक विशेष संबंध सूचक प्रमाण मिलता है।" जो मराठी भाषा में मिलने वाला संबंध सूचक (क) जो सादृश्य वाचक है, जिसका अर्थ है "अनुसार या समान है। उदा०—

(लिख्या) प्रमाण (प. २२)।

कहीं उसका संक्षिप्त रूप प्र. मिलता है— (प. २२)।

(९) विनिमय वाचक

(की) ऐवज (प. ४५) (गाजी के) बदले (प. १६)

(१०) विरोध वाचक—

उलटा (प. १४६) खिलाफ

(क) मराठी चे शास्त्रीय व्याकरण पृ. २१६।

(११) साहचर्य वाचक

(इन के) लार (प. १२७) संग (प. १०२) समेत (प. १०६)

(तोपखाने) समेत (प.१५१) (कामकाज) सहित (प.११४) सहित (प.१०;१८)

के–सात साथ (प. ७) की साथि (प. १२२) के साथ (प. ४०, ४१)

(स्नेह) पूर्वक

(१२) संग्रह वाचक

(फौज) सुधां (प. १३१) सुधां (प. २०५)

(भाईवेटे) सुधा (प. १९१) (जमियत) सुधा (प. १३६)

"व्युत्पत्ति के अनुसार संबंध सूचक दो प्रकार के हैं—(१) मूल और (२) यौगिक। (क) "हिन्दी में मूल संबंध सूचक बहुत कम हैं। (क)

"यौगिक संबंध सूचक दूसरे शब्द भेदों से बने हैं।" जैसे—

संज्ञा से—वास्ते, और इत्यादि।

विशेषण से—उलटा, योग्य, समान इत्यादि।

क्रिया—विशेषण से-ऊपर, बाहर इत्यादि।

क्रिया से—लिए, मारे इत्यादि।

प्रस्तुत पद्यों में मूल तथा यौगिक दोनों प्रकार के संबंध सूचक मिलते हैं।

(३) समुच्चयबोधक

"जो अव्यय एक वाक्य का संबंध दूसरे वाक्य से मिलाता है उसे समुच्चय-बोधक कहते हैं।" (क—१)

'समुच्चय-बोधक अव्ययों के मुख्य दो भेद हैं—(१) समानाधिकरण (२) व्यधिकरण (ख)

"जिन अव्ययों के द्वारा मुख्य वाक्य जोड़े जाते हैं, उन्हें समानाधिकरण—समुच्चय बोधक कहते हैं। इनके चार उपभेद हैं।" (ख)

(क) हिन्दी व्याकरण पृ. १५९।

(क–१) हिन्दी व्याकरण पृ. १६६।

(ख) हिन्दी व्याकरण पृ. १६८।

(ख) हिन्दी व्याकरण पृ १६८।

(अ) संयोजक । (आ) विभाजक । (इ) विरोध दर्शक । (ई) परिणाम दर्शक ।

जिन अव्ययों के योग से एक वाक्य में एक या अधिक आश्रित वाक्य जोड़े जाते हैं उन्हें व्यधिकरण समुच्चय बोधक कहते हैं—इनके चार उपभेद हैं (ग) (अ) कारण वाचक, (आ) उद्देश्यवाचक (इ) संकेत वाचक (ई) स्वरूप वाचक ।

समुच्चय बोधक अव्ययों के इन उपभेदों को भिन्न नामों से भी सूचित किया जाता है । जैसे—"विभाजक, विरोध वाचक, निमित्त वाचक, उद्देश्य वाचक, संकेत वाचक, व्यान्दा वाचक और विषय वाचक ।" (घ)

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त समुच्चय बोधकों को सुविधा की दृष्टि से विभाजित किया है ।

(क) संयोजक :

अपर (प. ४) अपरंच (प. १०६) अपरंची (प. १८५) अप्रंच (प. १०६) अप्रनि (प. २२) अप्र (प. २६) अप्रच (प. २०) उपरंच (प. ६) आपरंच (प. १२६) आपर (प. २ +) आप्रंच (प. ११०) आप्रंचा (प. ११३) आप्र (प. १६, ३२ इत्यादि)

अर (प. २२) अरु (प. २, ५ इत्यादि) अवर (प. ११) अवारो (प. १२५) अवोर (प. ११६) अवोर (प. ११५) आवार (प. १६८) आर (प. १५६) आन (प. १३०) आवर (प. २०) आवरु (प. ६७) ओर (प. १८) ओरु (प. ३४) औ (प. ४) और (प. ३) औरु तथा (प. ३३) व (प. १०) वा (प. ७ +) ह्रोर (प. ७)

प्रस्तुत पत्रों में सब से अधिक संयोजक समुच्चय बोधकों की है । अपरंच, अरु और के कतिपय रूपों का प्रयोग किया गया है । "व" के स्थान में "वा" का प्रयोग अधिकता से मिलता है । और के स्थान में ह्रोर का प्रयोग किया गया है—"ह्रोर भायों को पहुचाइ दे है ।" (प. ७)

(ख) विभाजक

के (प. ७) कै (प. ४७) या (प. ३) न... न (प. ४) ना...न (प. १०८)

(ग) हिन्दी व्याकरण पृ. १७३ ।

(घ) व्रजभाषा पृ. ११६ ।

+ अनेक पृ. पत्रों में प्राप्त ।

(१) "कि, के "स्थान में अधिकतया" के का प्रयोग मिलता है
उदा०—"ऊपर तो श्री परमेसुर कै श्री रावसाहिवजू।" (प. ४७)

(२) न...न ये दुहरे क्रिया विशेषण समुच्चय बोधक होकर आते हैं। इनसे दो वा अधिक शब्दों में से प्रत्येक का त्याग सूचित होता है। (क) प्रस्तुत पत्रों में उसके उदाहरण इस प्रकार मिलते हैं।
"तै सिचाई न वे करैं न हम करैं।" (प. ४)
"और विछार न राखौ न अब राखैं। (प. ३५)

(३) न—न के स्थान में ना... न का प्रयोग मिलता है उदा०—
"ना कछु कर्ज को फरच्या कर दिया न कछु हवेली को...दीया।" (प.१२८)

(ग) विरोध दर्शक

पर (प. १३) परंत (प. ११८) परंतु
लेकिन (प. १३६) लेकीन (प. १४४) ळेकीन (प. १८) पन (प.११)

(१) "ल" के स्थान में "ळ" के प्रयोग से बना "ळेकीन" रूप विशेष है, जिसका प्रयोग पत्रों में कहीं किया गया है—उदा०—
"माहाराज के चरन देखु ळेकीन श्री बावासाहेब जी न फुरमाया।" (प. १८)
"पन" जो परंतु के अर्थ में प्रयुक्त किया गया समुच्चय बोधक मराठी का है। उसका प्रयोग पत्रों में मिलता है
उदा०—"मदत के वास्ते भेजे थे पन निकल गया।" (प. ११)

(घ) परिणाम दर्शक

इसतैं (प. ६४) इससे (प. ३)
ताको (प. १) ताकौ (प. ४) तातै (प. २) ताथैं (प. २६) तासु (प. ६२)
तासौ (प. ३६) तिसु (प. ११८) तिहिते (प. २) तोहीतैं (प. ३५)
यातैं (प. ३५) सु (प. २ इत्यादि) सो (प.११ इत्यादि) या लातैं (प.१)
एतदर्थ (प. ६०)

(१) इसलिये के स्थान में "इसते या इस्से" (इस्ते) का प्रयोग मिलता है— उदा०—
"हूण देस के दरे बंद है इस्से (इस्ते) हात नहीं आये।" (प. ३)

(२) यातैं का प्रयोग अतः के अर्थ में किया गया है। उदा०—
तिन को कछु वा अत्यांरही नाही यातैं उन न जाहिर करो हो है।" (प. ३५)

(क) हिन्दी व्याकरण पृ. १७१।

(३) "सु" का प्रयोग अनेक पत्रों में अतः के अर्थ किया गया है। उदा०—
"राजि यह आपनी दर्द आई सु सब तरह अपुन कह गौर करते है।" (प. ४)

(४) "या लाने" तथा "एतदर्थ" का प्रयोग भी उल्लेखनीय है—उदा०—
"आपको हमारो स्नेह या लाने एँ बात का मजकूर लिखने है।" (प. १)
आप तो नाही जानत हैं। ... एतदर्थ आपुको... लिखो है।" (प. ६०)

(ट) उद्देश्य वाचक
जासों (प. ६)
आपकी महाराज के समाचार सदा भले चाहियें जासों मो भिखारी के मन परम सुख होय।" (प. ६)

(न) संकेत वाचक
इन समुच्चय बोधकों के द्वारा जोड़े गये दो वाक्यों में से "पूर्व वाक्य में जिस घटना का वर्णन रहता है, उससे उत्तर-वाक्य की घटना का संकेत पाया जाता है।

(न) संकेत-वाचक शब्द जोड़ी से आते हैं और पूर्व-वाक्य तथा उत्तर-वाक्य को जोड़ते हैं।

कभी कभी इनमें से एक संकेत वाचक का लोप भी रहता है।
प्रस्तुत पत्रों में निम्न लिखित संकेत वाचक समुच्चय बोधक प्राप्त हैं—
जब-तब (प. ७) जब तें...तब तें (प. १०) जु...तौ (प. ४७)
जु...सु (प. ४०) जु...सौ (प. ५०) जो-सो (प. १८)
जो-तब (प. ११) जो-तौ (प. ३) जो-तो (प. ४)
जो...वह (प. ३) जो-वे (प. ३) जो-सो (प.३६)
जो...तौ (प. १०२) जो...सु (प. १०३) जो सो (प. २२)
जोतो...तो (प. १०२) तौ (प. २०) तौ (प. २, ६, इत्यादि)
सु (प. १०) सो....सो (प. ८) ज्यों...सो (प. ७४)
जा माफिक...ता माफिक (प. ४६) तो (प. २०) तौ (प .१६) सु (प. १०)
इनमें से कुछ विशेष और उल्लेखनीय हैं। जैसे

(१) जो-वह, "जो कुछ दुखसे मेरा हवाल हो इया है वह कहांतक लिखौं।" (प. ३)

(२) जो तो-तौ, "जो तौ इनकी पारषत होइ अरु हमारी मदत होवे में आवै तौ हम आपके हुक्मी है।" (प. १०२)

(न) हिन्दी व्याकरण पृ. १३६।

(३) ज्यों...सो, "ज्यों इखलास की मजबुती...लिख्या छै सो पोहूच्या होसी
(प. ७४)

(४) जा मापिक ... ता माफिक—

"जा माफिक आपुकी मरजी होइगी
ता माफिक भगवानु आपुको मनोरथु पूरन करि है।" (प. ४

कभी एक संकेत वाचक अध्याहृत लुप्त रहता है, जैसे—

(१) "तुमारी खबर यसलाके समाचार पावै तौ हमकु आराम होवै।" (प. २

(२) "अरु गाउ जागा मैं जुल्म भई है सु मंब मुलक जानतु हैं।" (प. १०)

(५) स्वरूप वाचक

"इन अव्ययों के द्वारा जुड़े हुए शब्दों वा वाक्यों में से पहले शब्द वा वाक्य का स्वरूप (स्पष्टीकरण) पिछले शब्द वा वाक्य से जाना जाता है। (क)

प्रस्तुत पत्रों में निम्न लिलित स्वरूप वाचकों का प्रयोग किया गया है— (प. ४६) की (प. २०) कै (प. २६) के (प. ५६) जु (प. २८) सों (प. ६ सो (प. ५४) कुछ विशेष प्रयोग—

(१) कै—"हमारी खबरी वीसारोगे नहीं चीतमैं राखौगे कै हयारे चाकर है
(प. २६

(२) जु—"अपने मुत्सद्दिनसौ कहिदीवौ जु सरंजाम...वावति मुजाहिम न होंइ
(प. २८

(३) सौं—"गंगाजी ते प्यारो नाहि सौं मैं आपकू भेजू।" (प. ६)

प्राप्त समुच्चय वोधकों में सब से अधिक संख्या संयोजक समुच्चय वोधकों है। संकेत वाचक समुच्चय बोधक अधिक मात्रा में हैं और उसके विभिन्न मिलते हैं।

(क) हिन्दी व्याकरण पृ. १७८।

❋ पाँचवा-अध्याय ❋

पाँचवा—अध्याय

शब्द—समूह

"भारतीय साहित्य का इतिहास न केवल विस्तृत भूभाग में तथा विस्तृत काल में फैला हुआ है, वरन् उसकी सीमा में अनेक भाषाएं भी आवद्ध हैं।" (क) इन भाषाओं में एक भाषा "हिन्दी" का इतिहास देखने पर हमें प्रतीत होता है कि इस भाषा का अध्ययन महत्वपूर्ण है और कठिन भी।" हिन्दी भाषा का जन्म भी आर्यों की प्राचीन भाषा से हुआ है और भारतीय आर्यो की तत्कालीन भाषा धीरे धीरे हिन्दी भाषा के रूप में परिवर्तित हो गयी।" (ख) आर्यभाषा के वैदिक, संस्कृत, पालि एवम् प्राकृतों आदि के रूपों में—उच्चतम कोटि के ग्रन्थों का निर्माण हुआ। तदनंतर "प्राकृतों का युग बीत चुका और प्राकृतें प्रादेशिक अपभ्रंशों की राह से परिवर्तित होकर आधुनिक भारतीय भाषाएं बन गयी थीं।" (ग) तुर्कों तथा अन्य मुसलमान विदेशियों द्वारा भारत विजय के कारण १००० ई० के पश्चात् एक नये युग का सूत्रपात हुआ। धर्म, संस्कृति तथा विचार धारा से सर्वथा भिन्न इस विदेशी दल के लोगों के राजनैतिक आक्रमण ने भारतीय जीवन को झकझोर दिया। भारतीय विचार धारा के नियामक तो प्रथम किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये और कुछ समय बाद जब वे संभल सके तब अपनी संस्कृति की रक्षा के प्रयत्न उन्होंने आरम्भ कर दिये। इसके लिए "उन्होंने लोकभाषा को अपना माध्यम बनाया।" (घ) इस प्रकार नव्य भारतीय आर्य भाषा साहित्यों की आवश्यकता और उनके निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री दोनों एक साथ ही उपस्थित हो गये थे। धीरे धीरे इन "नमाओं" में साहित्यिक रचना का प्रारंभ तथा विकास होने लगा और १६०० तक "नमाओं" प्रादेशिक भाषाओं में कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ का निर्माण हुआ। इस प्रकार "नमाआ" लोकभाषाओं ने

(क) हिस्टरी ऑफ इंडियन लिटरेचर—विंटरनिज जि. १ पृ. ४०।
(ख) हिन्दी भाषा का इतिहास पृ. ४१।
(ग) भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी पृ. १०५।
(घ) भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी पृ. १०८।

मुसलमानी तुर्कों के आक्रमणों का सामना किया।" १६ वीं शती में उत्तर भारतीय मुसलमानों ने भी भारतीय आर्य भाषा को एक नूतन उपलब्धि के रूप में बड़े उत्साह से स्वीकार किया और तत्पश्चात् १७-१८ वीं शती में परिस्थितियों के जोर से एक समन्वय मूलक भाषा "उर्दू" का जन्म हुआ जो "हिन्दी" या "हिन्दुस्तानी" का मुसलमानी रूप मात्र थी। (क)

उत्तर भारत में जब हिन्दी विकसित हो रही थी, तब मुसलमानों का राजत्व काल था। इस राजत्व काल में प्रधानतः फ़ारसी ही राजभाषा का पद ग्रहण किये रही। इस "फ़ारसी" भाषा में अरबी और तुर्की शब्द रूढ़ हो गये थे।"(ख) संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश का रिक्तलेकर बहने वाली हिन्दी भाषा ने फ़ारसी, अरबी, तुरकी इत्यादि विदेशी भाषाओं से प्राप्त शब्दों को अपने प्रवाह में सम्मिलित कर लिया और यह भाषा–भागीरथी आगे बढ़ने लगी। समय तथा परिस्थिति की आवश्यकता के कारण अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा से तथा प्रादेशिक भाषाओं–मराठी, गुजराती, राजस्थानी इत्यादि के शब्द भी उसने अपनाये और इन सारी देशी—विदेशी भाषाओं से प्राप्त शब्द-रत्नों से हिन्दी ने अपना शब्द--भंडार समृद्ध किया।

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त शब्द समूह को देखते हमें हिन्दी इस विकास का इतिहास दृष्टिगोचर होता है, तथा तत्कालीन हिन्दी का नवं समन्वयात्मक रूप भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है। प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त शब्दों का अध्ययन शब्द--निर्माण की दशा और प्रवृत्ति (Tendency) को स्पष्ट करने की दृष्टि से ही किया गया है।

प्रस्तुत पत्रों में भिन्न भाषाओं से प्राप्त शब्द मुख्यतः दो रूपों में मिलते हैं। प्रथम तत्सम रूप में और द्वितीय अर्धतत्सम और तद्भव। अर्ध तत्सम तथा तद्भव शब्दों में होने वाली सीमा रेखा लचीली है। अतः तत्सम के सिवा अन्य अर्ध तत्सम और तद्भव–शब्दों को तद्भव शब्द कहना ठीक होगा। अतः प्रस्तुत अध्ययन में भिन्न भाषाओं से प्राप्त शब्दों को तत्सम तथा तद्भव भेदों में विभक्त किया है।

भिन्न भाषाओं से प्राप्त जो शब्द उसी रूप में बिना किसी रूपान्तर के मिलते हैं उन्हें तत्सम कहा है, और जो शब्द स्वर के आगम तथा लोप अथवा व्यंजन के आगम या लोप के कारण परिवर्तित होकर मिलते हैं उन्हें तद्भव कहा है।

(क) भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी पृ. १०९।
(ख) फ़ारसी मराठी कोश पृ. १।

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त शब्द—

(१) कुछ संस्कृत—तत्सम शब्द—

आशीर्वाद (प.७५) ईश्वर (प. ५७) कुटुम्ब (प. ६०) गोत्र (प. ७३) तीर्थ (प. १०७) दिवस (प. ६४) द्रव्य (प. ६४) नमस्कार (प. ४६) प्रणाम (प. ६) भोजन (प. ८६) मुद्रा (प. ६०) समय (प. ४६)

कुछ तद्भव शब्द—

(क) अंतहकरन (प. ३५) आसीर्वाद (प. ६) ईसुर (प. ६५) कोस (प. ७) तरवार (प. ११) धरती (प. ६१) निमस्कार (प. ५६) न्यमस्कार (प.७४) भंडार (प. २६) भार्जा (प. ३०) राजा (प..२१) शरकरा (प. १०७)

(ख) बाह (प. ६५) ब्याह (प. १५४) भाई (प. २२) आँख (प. ७) कोठी (प.१३५) घर (प. २६) पोता (प. ३०) पखेरु (प. १६) माथा (प. ६७) राति (प. ५०) ।

प्राकृत स्रोत से होते हुए आये कतिपय शब्द प्रस्तुत पत्रों में मिलते हैं। उनमें से कुछ नीचे दिये हैं।

(इन शब्दों के लिये आधार "पाइअ—सद्—महाण्णवो" "प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी—५, वि. सं. २०२०, ई. स. १६६३ से लिया गया हैं।)

शब्द—

उट (प. २७) <प्रा. उट्ठ ।
कपड़ा (प. २०) <प्रा. कप्पड । कहार (प. ६) <प्रा. काहार ।
कावरी (प. ६७) <प्रा. कावडि गहणो (प. ३०) <प्रा. गहणअ
घोड़ी (प. ११) <प्रा. घोड़ी झाड़े (प. १८४) <प्रा. झाड़
टिका (प. १) <प्रा. टिक्क ठग (प. १३५) <प्रा. ठग
ठाणा (प. ११५) <प्रा. ठाण थाणा (प. १३२) <प्रा. थानो (प.२१) <प्रा. थाणय ।
पगड़ि (प. १२ ठं) <प्रा. पगड़ि पटेल (प. २४) <प्रा. पट्टइल, पट्टइल्ल
बटा (प. २) <प्रा. वाट्ट
बेटा (प. ६७) प्रा. बिट्ट बाप (प. २०) <प्रा. बप्प
बैल (प. ११) <प्रा. बलद्द, बलय भाई (प. २०) <प्रा. भाइ, भाइअ
माधा (प. ६७) <प्रा. मत्थ मेह (प. ६१) <प्रा. मेह
हाथ (प. १०२) <प्रा. हत्थ हाती (प. १३१) <प्रा. हत्थि

(३) अरबी, फारसी, तुर्की आदि विदेशी भाषाओं से प्राप्त शब्द की पृथकता दिखानेवाला चिन्ह—अक्षर के नीचे बिन्दी–प्रस्तुत पत्रों में अप्राप्त है। अतः इस चिन्ह के अभाव में भी इन शब्दों को तत्सम माना गया है।

कुछ अरबी के तत्सम शब्द—

आफत (प. ३४) कबीला (प. ५४) कस्बा (प. ३८) किस्त (प. ४३)
खरीता (प. १०८) खरीफ (प. ३६) गनीम (प. ६८) तलब (प. ८२)
तहसील (प. ४३) मवेशी (प. ११) रैयत (प. ७३) वकील (प. ३)
सल्तनत (प. ८) हकीकत (प. ७) हजूर (प. ११) हद (प. १६)

अरबी के तद्भव शब्द—

(क) आदमी (प. ११) कबज (प. २७) कसबा (प. १६)
जिगात (प. १०६) फोज (प. २१) मुनसदी (प. ७) मुलख (प. १३१)
रुका (प. ११) हामल (प. ११) हीना (प. ६१) हुकम (प. १५)
(ख) आफति (प. ७५) उतन (प. ४७) जुवाब (प. ११) जावतो (प. ८२)
नजरि (प. १५) फवज (प. ६८) मुलकु (प. ६७) मोहिम (प. १५१)
ससधि (प. १६) हकिकति (प. ८) हकु (प. ६५)

कुछ फारसी तत्सम शब्द—

अर्ज (प. ३५) कागज (प. ३८) जगह (प. ३५) जागीर (प १५)
तनख्वाह (प. ?) दुकान (प. ३८) नौकर (प. ५३) माह (प. १६)
राह (प. १८) रोज (प. ३) शादी (प. २८) सरकार (प. १०)
सरदार (प. ३५) माल (प. ६)।

कुछ फारसी तद्भव शब्द—

(क) अरज (प. ११) असवार (प. ८) खानसामा (प. १२३) खावंद (प. १८)
गुमास्ता (प. ३८) जमीन (प. १५०) दफतर (प. ८१) नीमक (प. १८)
पयादा (प. ६१) रस्तै (प. १०६) सिरकार (प. ७) सिरदार (प. ८)
(ख) असवारी (प. ११) कागत (प. ३) कागद (प. ७) कारभारी (प. १५१)
खास (प. ५८) जागा (प. ६) जाहागीर (प. ६१) तनखा (प. १२५)
दफदर (प. ४५) दसखत (प. ८८) परवानी (प. ७) पुस्त (प. ७३)
फीर्याद (प. १२८) मुहर (प. ३८) शमकर (प. २५) सहर (प. १३७)

तुर्की तथा अंग्रेजी भाषाओं से प्राप्त शब्दों की संख्या अल्प है। अतः उन शब्दों को तत्सम और तद्भव विभाग में विभाजित न करके एक साथ दिया है।

कुछ तुर्की शब्द—

कोरनीसात (प. १८) तुकर (प.६८) तुरकी (प. १४७) तोफा (प. १३१)
मुचलका (प. ५०) इत्यादि

अंग्रेजी शब्द—

इंगरज (प. १३१) इंगरेज (प. १३१)· इंद्रसेन (अँडरसन (प. १३७)
कंपू. (प. १५१) गारदी (प. ७१) फिरंगी (प. १३७)
मिस्तर (प. १३७) पलटूने (प. १३६)

पुर्तगाली शब्द—

पादरी (प. १३७)

इन प्राचीन तथा विदेशी भाषाओं से प्राप्त शब्दों के पश्चात् व्रज, बुंदेली राजस्थानी और मराठी भाषाओं में मिलनेवाले कुछ शब्द दिये गये हैं।

बुंदेली भाषा में मिलनेवाले शब्द तथा प्रयोग प्रस्तुत पत्रों में मिले हैं। उनमें से कुछ शब्द इस प्रकार हैं—

आउवी (प. २) आपुल घा (प. १३) आवै—जैवे (प. ५४)
उनि (प. ४) उठाइ दई (प. ५) ऊ (प. ८)
कग्दवो है (प. ४) करनौ (प. २) करिवे कौ (प. ६)
कीवी (प. ८) जानिवी (प. १३) डौल (प. ६)
दीवी (प. १३) दीवौ (प. २८) मौत (प. ३)
रहिवी (प. ४) रहीवौ (प. २८) लऔ (प. ४)
लिखिबेकौ (प. १८) लीवी (प. ४) हुती—हुतौ (प. ४)

व्रजभाषा के कतिपय शब्द प्रस्तुत पत्रों में मिलते हैं। किन्तु उदाहरण के तौर पर कुछ थोड़े शब्द दिये हैं।

आइवौ (प. २) आयौ (प. २२) करनौ (प. २)
दिननि (प. ६) कान्हसाह (प. २) कीनौ (प. ५७)
कृपासौं (प. ५७) गाउन (प. १०) गौ (प. ६)
तुम्हारौ (प. ६) दिननि (प. ५) पठैवौ (प. ५)
बुरौ (प. ११) भरोसौ (प. ६) भयौ (प. ५८)
राखौ (प. ७) रुपयैनि (प. १०)
पत्रौ (प. ८) मोकौ (प. १०) कोऊ (प. ४७)

राजस्थानी भाषा में मिलने वाले कुछ शब्द—

अठार (प. ७७) अठानु (प. ६२) अठे (प. ६२) अवाई (प ६४)
आरती (प. १५६) आपनी (प. ७४) ईए (प. ६२)
"छा, छे. छी" (प. ६१) जगी (मध्ये) (प. ७७) जाणोळा (प. ७४)
डो जासी (प. ७७) ठाकुर (प. ६७) ठाडे (प. ५८) ठांट (प. ८०)
टीका (पधारवो) (प. १५६) डुळी (जाय) (प. ६१)
मीलना पाछे (प. ७७) मोकल्या (प. ७७) म्हा थे (प. ७७) रेहाळा (प. ७४)
गहलो (प. ३०)

मराठी में मिलने वाले कुछ शब्द—

अनमान (प. १५८) असेत (प. १) उन्हारिका (प. ११२) काठी मात्र (प. ७३)
कार्ही (प. १७२) खुलासा (प. १) झाडे (प. १८४)
तहनामा (प. १३१) नीभाव (इत्यादि) परभारा (प. २०७) पाळद (प. ११)
बोबाड (प. २०) बोलवाल के (प. ४०) भोगोटे (कु) (प. ७३) पंधरा (प.१६२)
मातुनरी (प. २०) मोहरा–(बाजू) (प. १५१) लगन (प. १६१)
समागमे (नाश) (प. १७७) साडेतेरा (प. १७)
वोहर (प. १५१)

प्रस्तुत पत्र प्रधानतया राजनीति, राज्यशासन, युद्ध, भूमि-व्यवस्था इत्यादि से सम्बन्धित हैं। इन पत्रों में प्रत्येक विषय से सम्बन्धित कुछ विशेष शब्दों का प्रयोग किया गया है। हर एक विषय से सम्बन्धित शब्दों की सूची अलग दी जा रही है। इनमें प्रधानतया राजनीति एवम् शासन, युद्ध, भूमि–व्यवस्था ये विषय महत्वपूर्ण हैं और शेष विषयों से सम्बन्धित शब्दों को अन्य विभाग में रखकर विषय के अनुसार विभाजन किया गया है।

राजनीतिक एवम् शासकीय शब्दावली

(क) शासन व्यवस्था के अधिकारी

अमलदार (प. ७३) अमीन (प. ७८) आमिल (प. १३६)
आमिलदार (प. १६) आमीरुल उमराव (प. २०३)
इजारादार (प. ८८) ईसावहाल (प. १८) ऐलची (प. २०६)
कानगो (प. ७८) कानुगो (प. ६) कानुगोह (प. १८)

सर कानुगो (प. ७३) कामदार (प ७) कारकून (प. १८६)
कारवारी (प. २०२) किलेदार (प. ४४) खुफियानवीस (प. १४४)
खवास (प. २०८) गुमास्ता (प. १४०) राजगुमास्ता (प. १४०)
हुकमी चाकर (प. २८) चौकीदार (प. १८५) जमानदार (प. ११)
जमादार (प. ८०) जासुस (प. ६५) तरफदार (प. ४३)
खानसामा (प. ८०) दफदर खानसामा (प. ८०)

दीमान (प. १०३) दिवान (प. २) नवाव (प. १५६)
कदीम दौलतखाह (प. ५३) नौकर (प. ५३) पंडितराव (प. ३५)
पातशाह (प. ६०) पोतदार (प. ३१) फरजंद (प. २०३)
महाराइ (प. १५) पातसाहि (प. ८) महाराजा (प. १)
मुकासदार (प. ४५) मुतमदी (प. ७) मुसाहिव (प. ५०)
मूख्य-प्रधान (प. १) मौजमदार (प. १५५) युवराज्य (प. १)
राउ (प. ७०) राऊराजा (प. ५०) राजराउ (प. २६)
राजा (प. १) राज्या (प. १) उकील (प. ६३)
वकील (प. ३) वकील मुतलक (प. २०३)

सरकार (प. २) सिरकार (प. ७) सरदार (प. १०२)
सी'दास (प. १८) जेठे—सरदार (प. १०२)
सूबेदार (प. ७) पंत प्रवान (२०३) हजरत स्याहा पातस्याहा
विलाईत (प. २०६)

रानि (प. १२६) रानी महारानि (प. १२६)

(ख) शासन व्यवस्था

अखतयार (प. ५६) अधिष्ठाता (प. ६०) अमल-अधिकार (प. २)
अमल सावत दस्तुर वहाल करना (प. ५६) अर्ज (प. ११) अर्जदास्त (प. ११)
अरज वदगान (प. ११) आग्यापत्र (प. ३४) आग्या (प. १६८) आटकाव
(प. १७३) इलजाम (प. १६४) कवज (प. ८०) करार वचन (प. १०) काम-
याव (प. १०८) कारकुंडी (प. १०५) कारकुंडी के खर्च (प. १०५) कारभार
(प. २०७) कारभार की मुखत्यारी (प. २०७) कासीद (प. २०१) कामींदा की
जोडी (प. ९२) कैद (प. १२८) कौल-वचन (प. १६६) खालसे (प. १०४)

गलेजोल (प. ५२) खिजमत (प. ४७) खोलत (प. २०६) गादी (प. ३५) चाकरी (प. ४१) जबाब (प. १०८) जागीर (प. १२) जावता (प. ६२) जाहीर (प. १) जुबान–हुकमु (Oral order) (प. १०) ज्वाबु-स्वालु (प. १५) टिका (प. १) डाक (प. २०१) तकसीर (प. ६२) तखत (प. १२६) तनख्वाह (प. २) तफावत (प. १८८) तलब (प. १६०) तशरीफ (प. १०८) ताकीति (प. १०) ताकीद (प. १६४) तारीफ (प. ४१) तैनात (प. ४५) दफदर (प.४५) दफतर दीवानी (प. ८०) दरबार (प. २२) द्रबार (प. ७४) दीकत (प. १८५) दौलतिखाही (प. ३५) नजराना (प. ६०) नजराणा (प. २०६) नाममात्र (Nominal) (प. १८६) नाल (प. २०६) नालकी तखत (प. २०६) नौकरी (प. ३५) पगड़ी बदल भाईचारा (प. १७६) परभारा (प. २०७) परवाना (प. ७) प्रताप (प. ७) पालखी डंडे (प. ६१) फरमाना (प. ३६) फरमास (प. १४७) फीर्याद (प. १२८) बकसी (प. ७०) बरकंदाम (प. ७६) बदस्तुर (प. २०४) मंजूर (प. १२३) बीगाड (प. १६८) बेउजर (प. ५२) भेंट (प.२०६) मतलबी (प. १८८) मनसूबा (प. १७६) मरजाद (प. १३३) मशारनल्ले (उपरोक्त व्यक्ति) (प. १२२) महिरबानगी (प. १०) मुकदमा (प. १) मुखत्यारी (प. १४३) मुखत्यारी के निखत (प. २०३) मुजलिम (प.७) मुलाजमत (प १२६) मुहर (प. ३८) मोहर (प. १३५) खासमुहर (प. ३८) मेहरबान (प. ५७) रजाबन्दी (प. १०६) रदबदल (प. १७६) रस्मे (प. १६२) राजकाज (प. १५) राज (प. १५) राजि (राज्य—४) राज्य (प. ४) रीत मरजाद (प. १६४) रुकमद (प. १७६) रुगमत (प. २०६) रुका (प. ११) खास रुका (प. १६६) रुजू (स्वीकृत होना) (प. १) सवारी (प. ५६) रैयति (प. ४०) सजा (प. ५३) विनती (प. ३५) सत्कार (प. १७६) शुभचिंतकी (प. १६६)

युद्ध सम्बन्ध शब्दावली

(१) अमल (प. ७) अमल बहाल (प. ५६) असवार (प. ८) अस्वार (प. ६६) असवारी (प. ११) (लड़ाईकी) आखेर (प. १३४) आक्रमण (प. ५६) इखलास (प. ७७) इतबार (प. ३) इतिफाक (प. ५६) ईतफाक (प. १२०) उपद्रह (प. ५३) एक (प. ५४) एकमुत (प. ५०) कजीया (प. ६१) कबीला (प. १०) काटि (प. ५०) काबु (प. ५६) काबु देनकार (प. ५६) काम आना (मरना) (प. ५०) कुच (प. २१) कुच दर कुच (प. ११३) [illegible] (प. ११५

सोरना (प. ११५) रुख (प. १२४) सीरना, भीरना (प. १२४) रक्षा (प. ६८) रानना (प. ७) राहि (प. १७८) राहिको इत्फाक (प. १६७) चारों तरफ बंद (प. ५४) लगना–घेरा डालना (प. ६५) लडना (प. ११) लड़ाई (प. ५०) लडना–भिडना (प. ५३) लराई--भिराई (प. ५८) लश्कर (प. २५) लुटना (प. ८०) लुटवाना (प. ११५) वहम (प. ३) वेगाही (प. १०८) सदेह (प. १७०) संरक्षण (प. १८४) सकर्नो (प. १०) सख्ती (प. ३६) सजा (प. ५३) सलाह (प. ७) सलूख (प. १६३) सलूक की तदबीर (प. ७) सलूख की बातें (प. ११६) सहाउ (प. ७) साज–सरंजाम (प. ५६) साज–सरंजाम (छोट) (प. ५६) सामठ (प. १२१) सामिल (प. १२) सहायार्थ (प ५८) सिकस्त (प.१२४) सीतावी (प.८७) सेनापतिजू (प.५०) हंगामा(प.५६) हंगामा (प.५६) हटकना (प. ५३) हदपार (प. २०१) हमभेले-होकर (प.१५६)

शब्दावली में प्राप्त शब्दों में से कतिपय शब्द उसी अर्थ में आज प्रयुक्त किये जाते हैं, किन्तु कुछ शब्द ऐसे हैं जो उस समय ही प्रचलित थे। जैसे-खलंत (प. १५०), सीचल (प. ११५)। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो उस समय एक विशेष अर्थ से प्रयुक्त किये जाते, किन्तु आज उनका सामान्य अर्थ कुछ अलग ही है। उदा०— नालबंदी (प. ८५) धुमग्राम (प. ५०) सवारी (प. ५६) साज–सरंजाम (प. ५६) इत्यादि।

कुछ शब्द ऐसे हैं जो प्रान्तीय भाषा प्रयोगों से प्राप्त हुए हैं। जैसे तहनामा (प. १३३) राहि (प. १७८)।

भूमि, कर इत्यादि से सम्बन्धित शब्दावली

अमल (प. ७) अमल मुजाहिम (होना) (प. १६) अवादो (१०३) अस्थान (प. ८) आबादानी (प. १६) आमदर्फत (प. १६) आमनवारी (प. ६) इनाम (प. ७३) इनाम, पुस्त दर पुस्त (प. ७३) इनाम बाग (प. १५०) इस्तक बहाल (प. १६) उगाह जागा (प. ५) उन्हाळिका सदया (प. ११२) उन्हाळुपर (प. ११३) कमामदार (प. १५०) कमावा (प १६) कस्बा (प. ३८) कौल (प. ११३) किस्तबंदी (प. १२५) किस्तनिवमुजब (प. ८०) कोस (प. ७) खुलदाब खुलकानु सुधा (प. ६१) खंडी (प. ४५) खंडी के रुपैया (प. ४५) खंडी चुकावना (प. ३८) खरीफ की किस्तबंदी (प. ४०) गदाहन (प. १३) गनीम (प. ६४) गालनैभर्ट (प. ६१) गैरी (देहात) (प. ६४) गाउ (प. २) गाव (प. १५५) गावटनामा (प. १५५) गाव उजेल (रहना) (प. ७६) गाउ दर [illegible]) घाट (प. ७) चौथाई (प. ७८) जगह करोबस्त (प. ३५)

जगह तहस नहस (करना) (प. १०२) जपती (प. १३) जमा (प. १६) जमा-वसिल (प. ८८) जागा (प. ५) जागा-पठारी (प. ४) जागामे रजावंदी (प.५) जागीर (प. १५) जागीरका गांव (प. १५५) जाहागीर (प. ६१) जिमीदारी (प. ३५) जिरात (प. १०६) जोतकी ततवीर, जोरावारीसे (प. ६१) डांड (प. ८०) डांडके टोटे (प. ८०) तकसीम (प. १२) तपसील (प. १६) तहसील (प. ४३) (मुलकको) तसदी आजार=खराबी (प. ६८) तालुका (प.१६) तालुका मजकूर (प. १६) तालुकादार (प.२०७) गिर्द (प.१६) दाखलेदार (प.१४१) दाना (प. ४०) देस (प. ४०) देसमुलक (प. ११६) नपाइ (प.१३) नानकार (प.१६) नालस(प.६४)पटवारी (प.३३)पटेवमुजिव (प.६६) पटेल(प.२४)पठ्यरि(प.२) पठ् पाठयरि (प.२) परगना(प.१२) (जमीनका-) परवाना (प.७) पांच=पंत्र (प.४५) पेशकसी (प. १३८) फसल (प. ४०) बकसी (बख्शीस) (प. ३५) बटा (प. २) बदगह, वस्ती (प. ८६) वहाल वरकरार (प. १६) वाधिवै (प. २) वीघे (प. १६) वेउतन (प. ४७)भोगोटा (प. ७३) महसुल, माहाल मुलुख (प. १३१) मुकासदार (प. ६४) मुकासा (प. ८०) मूकासा (प. ७८) मुठी-चुंगी (प. १६) मुलक (प. ३) मुलकु (प. ६७) ऊजर (प. ४०) उजाड-बिगाड (प. ११७) आबादान (प. ११७) मुदई (प. ८०) मुहाल (प. ७) मेह (प. ६१) मौजे (प. ३७) रवी (प. ४०) राहदारी (प. १४१) राहदारी के कामदार (प. १४१) वसूल (प. १७) सनद (प. १४६) सनदपत्र (प. १४६) सनधि (प. १६) सहर (प. ५४) साईर (प. १६) साहिर (प. ६४) साजी (प. १६) हीला (प. ६४) सत्यानास (प. ६७) साविकदस्तुर (प. १६) साल-दर-साल (प. १६) सुवा (प. ६८) सूखा (प. ४०) हद (प. १६) हवेली (प. ५४) हासल (प. ७) हालसालका-अमल (प. ३८) हीसा (प. ६१) हैसा (प. १३) हुंडी (प. ७७)।

प्रधानत: ये पत्र राजनीति, युद्ध या भूमि विषयों से सम्बन्धित हैं। फिर भी इनमें कुछ पत्र ऐसे हैं जो तत्कालीन सांस्कृतिक एवम् सामाजिक विषयों के अन्तर्गत आते हैं। इन पत्रों में जो विशेष शब्द मिलते हैं, उन्हें एक अलग सूची में रखा गया है।

सांस्कृतिक एवम् सामाजिक शब्दावली

गोत्र (प. ७३) अत्री गोत्र (प. ७३) अरपण (करना) (प. ६८) क्षेत्र (प. ६६)

डोनवानि (प. ६७) गंगाजल (प.६) गंगाजल की कावेरे (प.६) गंगाजीरे (प.५८) गाव उदक (प. ६८) नंदन मुरारी (प. ६७) चोवे (प. ६४) छत्री (प. १५०) जती-यती (प. १६७) जस-पुन्य (प. ३) जीर्णोद्धार (प. १५०) जुजमान (प. ४८) ताम्रपात्र (प. १६७) तांबापत्रकर उदक (देना) (प. १६७) तीर्थ (प. ६८) तीर्थ प्रोहित (प. ६८) तीर्थ यात्रा (प. ३६) दया धर्म (प. ६७) धर्म (करना) (प. ४८) धर्मादाय (प. ६६) परलोक (प. २०४) परलोकप्रापत (प्राप्त) (प. २०४) पुन्य (प. ६) पूजा (प. ३) मेला (प. १४८) पोखर का मेला (पुष्कर प. १४८) पोण्यवर्ग (प. ५०) प्रतिष्ठा (प. १५०) जोतिष का प्रश्न (प. १६७) प्रश्नपात्री (प. १६७) प्रोहित (प. ६) बदरीकाश्रम (प. १२७) बदरीकाश्रम की यात्रा (प. १६७) ब्राह्मण (प. ६०) ब्राह्मण भोजन (प. ६४) मकर संक्रान्त (प. १०७) शर्करायुक्ततिल (प. १०७) महंत (प. २१) महाप्रसाद (प. ६) महाप्रसाद की पयेली (प. ६) असनान (स्नान प. ४८) (प. ६) धर्म (प. ६) मोलवी (प. ६३) रथ सरजाम (प. ८६) रामसरण (प. ५७) लगन (विवाह) (प. १६१) व्याह (प. १६६) विवाह (प. ६४) ब्राह्मन (प. १५०) वेदमूर्ति (प. १२८) शिष्य (प. ६०) संकल्प (प. १६७) सप्रदार्था (प. १५०) सहस्र भोजन (प. ८६) सुमोहूर्त (प. २०३) श्रीस्थान (प. ४८) हरद्वार (प. ६) सूत्र-अस्वलायन (प. ७३)

वस्त्र, अलंकार :

चुड़बन्द (प. २०) चुनडी (प. २०) साड़ी (प. २०) पाछोडी (प. २०) ताड़ दोआली (प. २०) खसखस (प. २०) गुलबदाम (प. २०) राजमाल (प. २०) सळ (प. २०) मसरू (प. २०) परगाड़ (प. १२६) पघड़ी (प. १७६) कपड़ा (प. २०) वस्त्र (६४) मेनरोत्र (प. १७६) गहणा (प. २१) गहणा-जेवर (प. २१) टीका सिरोहार (प. ६३) जामदारखाना (प. २०)

रिश्तेदार इ० :

पोता (प. ३०) पुत्र (प. ३०) बेटे (प. १) भाई (प. २०) बाहान, मातुसरी (प. २०) भार्जा (प. ३०) बाप (प. २०) पिता (पति) (प. १२७) कुटुम्ब (प. ६०) सगे (प. ५७) बीरादरी (प. १८) भाई बेटे (प. १६१)

शिष्टाचार इ० :

आसिर्वाद (प. १) आशीर्वाद (प. ७५) कोरनीसात (प. १६) बंदगी (प. ५४) रामराम (प. ७) सलाम (प. १८) सलामबंदगी (प. २६) प्रणाम (प. ३)

प्रनामु (प. ४२) दंडवत् (प. ३५) दंडौत (प. ३६) सन्मान-ब्रेव्हार (प. १७३) सिष्टाचार (प. १२६) स्नेह धरोवा (प. १२६)।

शेप कुछ शब्द:

कलाल (प. २०) कहार (प. ६) जौहरी (प. २) बेपारी (प. १४८) माली (प. ६४) सवदागर (प. १४७) साहूकार (प. ३६) सेठी (प. ७६) बंजारे (प. ७) दुकान (प. ३५) कोठी (प. १३५) हवेली (प. १२८) दारु (प. २०) खांड़ (प. २८) तुवक (प. ३२) पेड़ा (प. ६७) शिष्य (प. ६०) अध्ययन (प. ६०) अध्यापन (प. ६०) जीविका (प. ६०)

इन विषयों के विभाजन के बाद कुछ विशेष शब्द पत्रों में मिलते हैं। ये शब्द तत्कालीन व्यवहार में प्रयुक्त होते थे। अत: इन शब्दों को अन्य शब्दों की सूची में रखा गया है।

(१) आर्थिक:

आना (प. ३७) रुपैया (प. ३७) आलमगिरी रुपैया (प. ३७) उधार (प. ३०) उधार लये रुपैया (प. ३०) कर्ज (प. १२८) कर्जका फरच्या (प. १२८) कर्जदारी (प. ७४) कीमत (प. १७) खजाना (प. ४३) ऐवज (प. १५८) खानगी ऐवज (प. १५८) जमा (प. १७) ज्मा (प. ६५) तगादौ (प. ७६) दर (प. १७) दस्तावेज (प. ६७) नकद (प. १७) नीकड़ (प. १५८) पैसा (प. २) मुद्रा (प. ६०) मोहरा (प. १७) रिन (प. ६) रोक (प. ३१) वीदी (प. ३०) व्याज (प. १२८) सालीना रुपैया (प. १६) हिसेव (प. १२६) हिसेव का कामकाज (प. १२६) हुंडी (प. ७७) सुना (प. १७) रुपा (प. १७) तोरा (प. १७) मासे (प. १७)

(२) चिट्ठी पत्र : इ०

कवज (प. ७०) कवुलि अति (प. ८४) कबुलियत (प. ८१) कवुलियति (प. ८१) खत (प. ३) चिठी (प. ६४) वरात (प. ४५) अभये-पत्र (प. ६८) असल-पत्र (प. ७३) कृपा पत्र (प. १८) ताकीद पत्र (प. ७३) कागद-पत्र (प. ४) वरदान पत्री (प. ७) टीप (प. ३१) टिप (प. १४) टीपे (प. १२८) टीपे (प. १२८) सावकारी-नीसा (प. ६५) कवज-रसीद (प. ४४) पाती (प. ४) याददास्ति (प. ३८) रसीद (प. ८५) नकल (प. ७३)

(३) काल विपयक

घरी (प. ५७) दिवस (प. ६४) दिन (प. ६५) मास (प. १०५) साल

(प. ८६) गुरो (प. ४६) भौमे (प. ८४) मंगळवार (प. १०८) शुक्रे (प. १४) पड़ुवा (प. १६) प्रतिपदा (प. २०३) द्वितिया (प. ६४) चईत (प. १२३) चैत (प. ३) चैत्र (प. ८)। वैशाख (प. ८४) वैशाख (प. १२४) वैसाख (प. ११) जेट (प. १२५) जेठ (प. ५१) जेस्ट (प. ७२) जेष्ट (प. १८१)। अषाढ़ (प. १८३) असाड़-(प. १५२) आशाड़ (प. १३६) आसाड़ (प १४०) सावन (प. १६) सावण (प. ६२) श्रावण (प. ११४) भादवा (प. ६१) भादो (प. ३४) भादौ (प. ३२) भाद्रपद (प. १८५) भादवौ (प. १६१)। असुन (प. ८६) अस्वन (प. ५२) अस्वनि (प. १३) अस्विन (प. २०७) -कुआर (प. ११०) कूंवार (प. १८८) क्वार (प. ८७) असोज (प. ८८)। कर्त्तिक (प. १४) कातिक (प. ४२) कातीक (प. ३८) कार्तीक (प. १६६) मारग (प. ३५) मार्ग (प. ४०) मार्गशीर्ष (प. १०८) मार्गेश्वर (प. १७३) मंगसर (प. ७४) अगहन । पुस (प. १२२) पूस (प. १०) पोस (प. २२) पौष (प. ४) पौस (प. १४८) पौष्य (प. १६६)। माघ (प. ११६) माह (प. १६) माहो (प. १६२)। फाग (प. २४) फागुन (प. ४६) फागन (प. १०६) फागण (प. १८०) फालगुन (प. ८०) फालगुण (प. १६०)।
रविलाखर (प. ८६) जमादीलखर (प. ४४) रमजान (प. १७) जिलकाद (प. ८८) जीलकाद (प. ८६) जीहीज (प. १८) जीळहेज (प. २०)
सुद (प. ८१) सुदि (प. ८१) सुदी (प. १३०) शुध (प. २५) शुदी (प. १२८) वद (प. १५६) व्रुदि (प. ८०) वदि (प. ५४) वदी (प. १३७) वदी (प. १३८)

जिस वर्ष में अधिकमास आता है उस वर्ष में कोई एक महीना दोबार होता है। उसमें दूसरे का उल्लेख द्वि, या दुति जोड़ने से किया गया है जैसे—

(१) मिती द्विसावन क्रुस्न १४...... सं. १८२५ (प. ४६)

(२) दुति सावन सुदि ८ ...... सं. १८२५ (प. ७१)

(३) दुती चैत्र सुदि ७ ...... संवतु १८२३ (प. ७०)।

महिना (प. ६) समत (प. १७) संवत् (प. १४) साके-शके (प. १४) सनौ (प.१८) संवत्सरे (प१४) फसली (प.२०) व्यतीपात (प. १००) तेरीख (प.८६)

(४) प्राणि—

ऊट (प. १८६) ऊठ (प. ८१) गऊ (प. २०४) घोड़ो (प. १२४) बैल (प. १०) ढांडा-ढोर (प. ११७) मवेशी-मल्ला (प. १०) हाती (प. १२४)

———

❋ छठा अध्याय ❋

छठा अध्याय

इस अध्याय में पदक्रम, शैली और मुहावरों का अध्ययन किया है । हिन्दी गद्य साहित्य के प्रारम्भिक काल के ये पत्र गद्य साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । गद्य रचना में पदक्रम का अपना विशेष महत्व है । उनके अपने साधारण नियम हैं किन्तु कहीं प्रसंग तथा भाव विशेष के कारण इन नियमों के विपरीत व्यवस्था भी होती है । अतः प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त गद्य का पदक्रम की दृष्टि से अध्ययन किया गया है । गद्य साहित्य में शैली अपना एक स्वतन्त्र महत्व रखती है । ये पत्र प्रमुखतः राजनीतिक या ऐतिहासिक महत्व के हैं अतः इनमें अधिक मात्रा में विविधता नहीं है । फिर भी शैलीगत जो प्रधान विशेषतायें हैं उन्हें प्रस्तुत किया गया है । प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त मुहावरों का अध्ययन महत्वपूर्ण है । इन मुहावरों में कुछ सर्व परिचित मुहावरे हैं । कहीं इन मुहावरों को विशेष भिन्न अर्थ में प्रयुक्त किया गया है । कहीं नये संकेत भी प्रकट किये हैं । ये पत्र अधिकांश मराठी भाषी शासकों द्वारा लिखे होने के कारण मराठी भाषा में मिलने वाले कतिपय मुहावरे भी इन पत्रों में मिलते हैं । उन्हें इस अध्ययाय के अन्त में दिया गया है । प्रयुक्त मुहावरों का कोष्ठक में अर्थ दिया है ।

(१) पदक्रम

"पद्यात्मक रचना में वाक्यान्तर्गत शब्दों के साधारण क्रम में छन्द की आवश्यकता के कारण प्रायः उलट फेर हो जाता है, अतः इस विषय का ठीक अध्ययन गद्य रचनाओं के आधार पर ही हो सकता है ।" (क) "रूपान्तरशील भाषाओं में पदक्रम पर अधिक ध्यान दिया जाता है, क्योंकि उनमें बहुधा शब्दों के रूपों ही से उनका अर्थ और सम्बन्ध सूचित हो जाता है ।" (ख) हिन्दी भाषा संस्कृत से निकली है, जो एक रूपान्तरशील भाषा है अतः इसमें पदक्रम एक प्रकार से स्वाभाविक और निश्चित है । फिर भी कभी-कभी अब विशेष प्रसंग और लेखक की विशिष्ट शैली के कारण पदक्रम में अन्तर पड़ता है तब उसे आलंकारिक पदक्रम कहते हैं । आलंकारिक पदक्रम के नियम बनाना कठिन है । किन्तु जो दूसरा स्वाभाविक और निश्चित पदक्रम

(क) ब्रज भाषा पृ. १२५ ।
(ख) हिन्दी व्याकरण पृ. ४६१

है वह साधारण है, व्याकरणीय है। उसके कुछ नियम बनाये जा सकते हैं या उसकी कुछ व्यवस्था देखी जाती है।

प्रस्तुत पत्र हिन्दी गद्य के प्रारम्भिक काल के नमूने हैं फिर भी आगे चलकर विकसित होने वाली, परिष्कृत हिन्दी भाषा की पदक्रम गत अधिकतर विशेषतायें उनमें लक्षित हैं। कहीं-कहीं लेखक ने स्वतन्त्रता से काम लिया है। इन पत्रों के वाक्य देखने पर एक बात स्पष्ट होती है कि उसमें छोटे-छोटे वाक्य हैं। ये छोटे वाक्य समुच्चय बोधकों से जोड़कर संयुक्त या मिश्र वाक्य बनाया गया है। किन्तु कहीं भी अति लम्बे वाक्य अधिकता से नजर नहीं आते, क्योंकि ये आवश्यक व्यवहार सम्बन्धी पत्र हैं।

व्रज, हिन्दी, मराठी भाषाओं में वाक्य में पदक्रम का सबसे साधारण यह नियम है कि प्रथम कर्ता या उद्देश्य रहता है फिर क्रिया। वाक्य में कर्म होता है उनमें यह क्रम कर्ता कर्म या पूर्ति और अन्त में क्रिया रखते हैं। यही पदक्रम पत्रों में बराबर मिलता है उदा०

(अ) दील कहता है। (प. १८)
(आ) खावंद भूल आते है। (प. १८)
(इ) जिमोदारनि डुडी उठाई है। (प. ५४)

इसके सिवा दूसरे कारकों में आने वाले शब्द उन शब्दों के पूर्व आते हैं जिनसे उनका सम्बन्ध रहता है।

विशेषण संज्ञा के पहले और क्रिया-विशेषण बहुधा क्रिया के पहले आते हैं। उदाहरणार्थ—

(क) ब्राह्मण हमारे इष्टदेव हैं। (प. ७५)
(ख) श्रीनाथजी की पूजा पीछलेदस्तूर मापक हुया करै। (प. ३)
(ग) गोहीनें हमारा इतबर नहीं करते। (प. ३)
(घ) दसबीस गोहीनें फकीर होकै आये हैं। (प. ३)
(ङ) यह राज्य अपनी जसकी बेलि है। (प. ४)

इस साधारण क्रम में कतिपय स्थानों में उलट फेर मिलता है। विशेषण जो प्राय: विशेष्य के पूर्व रहता है विशेष्य के अनन्तर रखा गया है। उदा०—

(च) गाडनि में प्यादे तुम्हारे हते। (प. २)
(छ) थाने पुनि हमारे कंक उन छुड़ाइ लयते। (प. ४)

(ज) होळा हरकत काड़ीमात्र की न करना। (प. ७३)

कहीं विशेष्य दो या अधिक विशेष्णों के बीच में मिलता है उदा०—

(ट) एक खतु मेरी सिपरसि कौं रूपरामकौ लिखियेगौ। (प. ६४)

(ठ) तुम्हारा गुरीछा का अमल चारपांच हजार कौ डुवत है। (प. ७)

क्रिया विशेषण—

क्रिया विशेषण का प्रयोग सामान्यतया क्रिया के पूर्व रहता है।

"अभिव्यक्ति की आवश्यकता के अनुसार क्रिया विशेषण वाक्य में कहीं भी रखा जा सकता है। जोर देने के लिये यह प्रायः वाक्य के प्रारम्भ में रख दिया जाता है।"(अ)

(१) वखेड़ा उड़ावने वाले तो या त्रफ घने अर हम इहां अकेले। (प. ५६)

(२) तासे सिताव इहाकी आइके खबर लेना (प. ५६)

(३) हम तो सरकार के काम से किसीत्रह जुदे नाही सवत्रह हाजर हैं।(प.५६)

(४) हामेसा कागद समाचार लीषावोगे। (प. १३०)

(५) च्यार थोड़े खरीदी करवाए के जलद जलद आठे भेजवाए देसि (प.१४७)

(६) श्री क्रिपाशंकर जोतषी ईहा वहोत दिना से हैं। (प. १५४)

(७) अव जथा पुर्व सव लोक सव महंता की रजावदी याही के स्थापन परसे (प. १५७)

(८) असी नवे कोस ते हम तेरे लाने दौरत आऐ। (प. ७) (यह स्थानीय क्रिया विशेषण का प्रयोग है।)

कहीं विशेष्य विशेषण और क्रिया विशेषण वाक्यांशों के स्थानों के क्रम में गड़बड़ी सी लक्षित होती है उदा०—

(प) अव संभा का पारपत तुम वने जीस त्रकत्रह करना। (प. ५६)

(फ) हम आपने लाइक की सिरकार के फरमऐ माफक चाकरी करत हैं। (प. ४१)

(ब) हाल तो तुम्हारी गुरीछा को अमल चारपाच हजार को डुवत है। (प.७)

कर्ता, कर्म पूरक का स्थानान्तरण भी कहीं मिलता है उदा०—

(य) मुलकु सव इनि ठाकुरन सत्याना से मिलयौ है। (प. ६७)

(अ) व्रजभाषा पृ. १२५।

(ग) कागद का जवाब हम देंगे। (प. ७)
(ल) जुवाव सवाल हम दरबार में करते हैं। (प. ११४)
(घ) केतेक समाचार राजने पंडत मलार रघुनाथसूं कहे थे। (प. ११४)

द्विकर्मक क्रियाओं से युक्त वाक्यों में साधारणतया कर्ता, गौण कर्म, मुख्य कर्म और क्रिया—इस प्रकार का क्रम रहता है। प्रस्तुत पत्रों में कहीं ठीक यह क्रम पाया जाता है और कहीं इसमें परिवर्तन भी देखा जाता है—उदा०

(अ) हम उन्हे सजा दई। (प. ५३)
(आ) (तुम) इनकु रु. १० दीजो। (प. २४)
(इ) जह बात आपुको हमने आगेंह लिखी ही। (प. ४६)
(ई) जगह दरोबस्त खलसीम के परगने की उन हमें बकसी है (प. ३५)
(उ) राजा मानसिंघजूकों पंडित जूनें दोइ चारि वखत तागीति लिखी। (प. ४५)

वाक्यगत विषशेताओं में देखने पर प्रस्तुत पत्रों में विविधता लक्षित होती है। कहीं छोटे छोटे वाक्य हैं तो कहीं समुच्च बोधकों के द्वारा २–४ वाक्य व वाक्यांश एकत्र जोड़े गये हैं। इसके अनेक विध उदाहरण मिल सकते हैं किन्तु यहाँ एकाध, उदाहरण के तौर पर दिया जाता है—

(क) मौजे सिरसा वाले जिमीदार नई गढ़ी बनावत हते तापर हम हटकी उन न मानी ताकी हम उन्हें सजा दई। (प. ५३)
(ख) नवलसींग वा ओर सीरदार पावसे भाग के डीगमें गये। कछु रणमें गीरे। कछु पाडाव भये। फौज बोहोत मारी गयी। नौबते निशाने हाथी घोड़े तोके पाडाव लोकोन ले आये। श्रीजी की कृपा से फते भई (प. १२४)
(ग) हम मोठे में बैठे हैं अरु चारु तरफ घेरा है सो महाराज के चरनन को सहाई हमको है सो अब वनकै हम लाचार भए हैं सो अब हजुरने हमारी यादी करि है सो कल छत पाई के हम हजुर आई है। (प. ५८)

(२) पत्रों की शैली

गद्य साहित्य में शैली एक महत्वपूर्ण बात है। शैली में ही साहित्यकार का व्यक्तित्व झलक उठता है। शैली का अध्ययन विशेष रूप से ललित साहित्य से संबधित है। प्रस्तुत पत्र गद्य में लिखे गये हैं किन्तु उनका उद्देश्य राजनैतिक सामाजिक

सांस्कृतिक आदि संबंध–व्यवहार स्पष्ट करना था । इसलिए इनसे मूल विषयगत तथ्यों का वर्णन या निरुपण महत्व का था । अतः ऐसे पत्रों में शैलीगत विशेषता और भिन्नता अल्प मात्रा में ही लक्षित होती है । पत्रों में शैली के द्वारा लेखक को अपना व्यक्तित्व प्रकट करने की कोई खास आवश्यकता न थी । लेखक के व्यक्तित्व से भी पत्र का आशय महत्वपूर्ण था । फिर भी पत्र प्रेषक तथा पत्र लेखक की विद्वता, वृत्ति तथा भावों के कारण पत्रों में तथा उनको लिखने की पद्धति में विविधता का बोध होता है । इन्हें ही शैली के अन्तर्गत रखकर उदाहरण के तौरपर उनका संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत है ।

प्रस्तुत पत्रों में प्रधान रूप से विवरणात्मक तथा वर्णनात्मक, आलंकारिक सांकेतिक भावात्मक, और तथ्यात्मक शैली के उदाहरण मिलते हैं । ये इस प्रकार हैं ।

विवरणात्मक शैली (आर्थिक):—

इस शैली का अधिकतर प्रयोग आर्थिक व्यवस्था के अन्तर्गत होने वाले पत्रों में देखा जाता है । आय–व्यय, खर्च, खरीद, रोजमर्रा इत्यादि व्यवहारों के संबंध में यह विवरण स्पष्ट रूप से लक्षित होता है । उदा०— (१) सरकार से प्राप्त ६७६१८ रुपयों का विवरण—(पत्र क्र. १७)

४३२०५	नकद रुपये
४११८।	मोहरा ३२३, दर १२॥।
१४८७६॥।	सुना तोरे ११२३, दर तोरा रु० १३।
५४१६	रुपा तोरे ६०६३॥, दर रुपया कु मासे १३॥ साढ़े तेरा
६७६१८	

(२) पत्र क्र. १९ में पंडित ठाकुरदास को दी गयी सनद के अनुसार प्राप्त आमदनी का तपसील है ।

(३) पत्र क्र. २७ में दस ऊँटों की खरीद का ब्यौरा है ।

(४) पत्र क्र. ७१, गारदियों के रोजमर्रा के लिए दिये जाने वाले रुपयों का विवरण इस प्रकार है ।

७५०	महंमद ईसफ गारदीको साढ़े सात से
७०७। –	रमजान बेग गारदी को सातसै सात रुपया आना पांच
४२॥ ≡	जलाज बरदान को रुपैया ब्यालीस आना ग्यारह
१५००	पन्द्रह सै रुपैया दे के कबद रसीद लीवी इत्यादि इ० ।

इनके अलावा कुछ पत्रों में ऊधम मचाकर रैयत तथा अधिकारियों को सताने वाले आक्रमण कारियों के कार्य और घटनाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। उदा०–

(१) पत्र क्र. ७ में "राइसिंघ" नामके व्यक्ति के द्वारा मचाया ऊधम वर्णित है।

(२) पत्र क्र. ११ में "भीखा पटेल" के साथ छेड़ी हुई लड़ाई और लड़ाई के अनन्तर जो चीजे हाथ आयीं उनका विवरण है।

(३) पत्र क्र. ५६ में मराठी बागी सरदार "गनैन संभा" (गणेश संभा खांडेकर) ने आक्रमण करके मुकासदार को घेरकर सहर की खाना खोदी करके लाखों रुपये पैदा किये इसका उल्लेखन और उसके दमन के प्रयत्नों का विवरण तथा सहायता की प्रार्थना का वर्णन पत्र में इस तरह है—

"गाँ खाली मेदान जान गनेम संभा ने मुकासदार को अचानक आइ घेरा... संभाने सिरोज के चोधरी दलीपसिंघ के इतिफाक से सहर की खाना खोदी करके लाखो रुपया पैदा करे ऐते में हम हैं.सुबेदार की लिखी आई कै अब संभाका तुम पारपत बनेजीस यह करना ...... संभा की अैसी तंबोह करी सो वो जीव बचाइ नीकस्न गाट जातो रहो...... चोधरी ने हरामखोरी बीचार पंडीत नीलुको हवेली में रखा अर हमसे लड़ने को तयार हुवा सो ऐक महीना तक हमारे वाके लड़ाइ हुई... अब दरवन नै खासा सवारी आपने की राह देखे हैं।

वर्णनात्मक शैली के अन्तर्गत होने वाले पत्रों में संक्षिप्त रीति से किसी महत्वपूर्ण घटना या प्रसंग का वर्णन रहता है। इस प्रकार के कतिपय पत्र हैं किन्तु अत्यंत महत्व पूर्ण घटनाओं का वर्णन करने वाले पत्रों के अंश उदाहरण के तौर पर दिये हैं, जैसे—

(१) पत्र (प. १२४) रामचन्द गणेश (कानडे) तथा विसाजी कृष्ण (बिनीवाले) और नवलसिंह जाट के बीच जो लड़ाई हुयी उनका वर्णन "चैत्र सुदी एकादशी सुक्रवार के दीन नवलसिंह जाट की और म्हाकी लढ़ाई भई...राय नग आलैर छोड़ के जाटने निकस्न गाई नवलसींग वा ओर सीरदार पावरो भाग के डीगमें गये कछु रणमे गीरे कछु पाड़ाव भये फौज बोहोत मारी गई नौबते निशाणे निशाणे हाती घोरे तोपे पाड़ाव लोकोन ले आये... ।"

(२) पत्र (प. १३१) में पुना के पास सं. १८३५ में अंग्रेज और मराठों में वड़गांव के पास जो लड़ाई हुई उसका वर्णन है।

(३) पत्र (प. १६०) में गारदियों के द्वारा पेशवा नारायणराव की हत्या का वर्णन इस प्रकार है—

"या दोंना मे गारदीयांने तलव के वासते रावसाहिव के हजुर हंगामा कीया कहवत वौहत होय गइ और तरवार चलाइ सो रावसाहिव नरायणराव जी देवलोक पधा–या ... सव कारवारी दौड़े। सो उनकु तौ सजा पोंहचाइ और रावसाहीव कुं दागदीया ... सहरमे ... वदवसत कीयो।"

इस प्रकार के कतिपय उदाहरण मिलते हैं।

आलंकारिक शैली:—

इस शैली के अन्तर्गत पत्रों में साहित्यिक शैली की विशेषताएँ लक्षित हैं। कुछ पत्रों के अंशों में इस शैली के उदाहरण मिलते हैं उदा०—

(१) पत्र क्रम. १८ में "मुकुंद सीघ खरघोणी" ने अपने स्वामी "अंताजी पंडत" को पत्र लिखकर सहायता करने की प्रार्थना की है इसमें दोहों का प्रयोग किया है। दोहे इस प्रकार हैं—

"मेरी तो तुमकु सर्म हैय तुमही कु लाज—
लाज काज सव साज को अंताजी सीरताज—" ॥ १ ॥

दोहरा – "हैय मकुंद के सीस पैं अंताजी सीरताज—
ताकी ओर नीहारीयो वाह गहे की लाज—" ॥ २ ॥

(२) गोंड़ राजा "निजामसाहिदेव" ने पेशवा वालाजी वाजीराव को पत्र लिखकर यह वताया है कि आनोजी भोंसले का "खरखसा" मेरे राज्यपर रहता है। राज्य संवर्धन करने में आपने ही सहायता प्रदान की है। अतः यह राज्य आपके यहाँ का चिन्ह है। दूसरा कोई उसको वाधा न पहुँचाए।" "सो यह राज्य अपनी जस की वेलि है सो दूसरौ खरखसा न करै पावै।" (प. ४)

(३) दान पत्रों के अन्त में (प. ९८, ९९, १००) संस्कृत श्लोकों का प्रयोग किया है। इन श्लोकों के आधार पर दिया हुआ दान और उसका महत्व स्वर्गप्राप्ति तथा दान को वापस लेने में होने वाले पाप परिणाम– "नर्क प्राप्ति" दोनों का उल्लेख है। मूल संस्कृत श्लोक कुछ परिवर्तन एवम् अशुद्धता से लिया गया है।

लिखित श्लोक इस प्रकार है—

"आपदतं परयंतं जे पालयंतं वसंधरा
ते नरा सर्ग ज्यायंत तो लग चद्र दीवा करा।"
"आपदत परयत जे मेटत वसधरा
ते नरा नरक ज्यायये तो लग चंद्र दीवाकरा।" (प. १००)

(४) "आपु धर्मनीक हो हामरे कल्पवृछ हो...गंगाजी निमिति दयाधर्म करके भेजो सो क्षेत्रवासि गउ व्र ह्मण के बालबच के मुख परेगा।" (प. ६७)

(५) जो पत्र विद्वान पंडित या पुरोहितों के द्वारा पेशवा या उनके परिवार और बड़े लोगों को लिखे हैं उनमें आलंकारिक शैली का प्रयोग अत्यादर में किया गया है। उदा० (प. क्र. ६४) आगरे से चौबे जुगल ने लिखा है (पत्र का प्रारंभ) स्वस्ति श्री मत्सकलगुण निधान सकलैश्वर्यवान परम वैराग्य तत्पर अकिंचनामुपरि कृपा पालक गो ब्राह्मण प्रतिपालक ...... " (प. ६४) हरिद्वार के इंद्रमन बिजराम भट ने चद्रचूड़ परिवार के लोगों को लिखा है—(पत्र का प्रारंभ) ..." आटलराज धर्ममूर्ति धर्मावतार गो : ब्राह्मण के प्रतिपालक ... आस्वपति, गजपति सपत्, पुत्रमान, धर्मवान्, लछिवान बलवान आईसामान, भिमावतार, भिम पराक्रम, पराजय यशस्वि इत्यादि। (प. १७)

सांकेतिक शैली:—

सांकेतिक अंश के कुछ उदाहरण राजनैतिक पत्रों में मिलते हैं—

(१) (प ४) में उद्धृत संस्कृत वचन के द्वारा राजा निजामसाह ने पेशवाको संकेत किया और जानोजी के भविष्यत् कालीन मनसूबे तथा कार्यों के संबंध में सांकेतिक भाषा में बताया है (प. ४)

(२) (प. ७) में भगवंत राइ ने दीवान वीठलराव को पत्र लिखकर उधम मचाने वाले गर्टसिंघ के संबंध में लिखा है और आगे लिखा है "हम भी सब जमईयत सी तईयार हो के रुपैया दोइ २) ले के मेर्यसिंघ वा समसिया को मिलें।" रुपैया दोइ २) संकेत मात्र अवश्य है क्योंकि सब "जमईयत से तैयार होकर रु. दोइ २) ले के" जाना एक आश्चर्य कारी कथन है।

(३) अनेक पत्रों में उल्लेख है कि कोई व्यक्ति या कासीद आपके पास भेजा है वह "जाहीर करेगा, मुख जबानी कहेगा" इत्यादि अतः पत्रों में बातें लिखी

नहीं जातीं वे ही मौखिक रूप से कही जाती थीं। उसके कुछ उदाहरण दिये हैं—" इहां ते पं श्री प्रतिनिध गोपाल मनि पठवाये हैं सो जो हकीकति है मो ये कै है।" (प. २३) "इंहांकी हकीकति की प्रधान आसाराम के कहे जाहिर हुइ है।" (प. ३२)

" और अरज श्री मीर सैददीन महंमदजी आपुसैं जाहर करि है।" (प. ५६)

" और हकीकति मीसर सीर कीसन कहसी ।" (प. ११३)

" और हकोकती राजा सदासीवजी के कागळ से जाणोला।" (प. १८३)

" कासीद मुख जवानी या कहे छी।" (प. ६१)

(४) एक पत्र लिखा है "हमने भी श्री महाराज के फ़ाइदा की चारि वात कहनै की ही ... ये बातें एकान्त वैठिकें सुनिलीजेगी।" (प. १६६)। इसके द्वारा यह अर्थ प्रकट होता है कि आपके पास शायद ऐसे लोग हों जो आपको फायदे की वातें सुनने और अमल में लाने में रुकावट डालते हैं। ये वद सलाह देते हैं अत: एकान्त में वैठकर सोचने की सलाह पत्र लेखक ने दी है। यह संकेत विशेष उल्लेखनीय है .

भावात्मक शैली एक महत्वपूर्ण शैली है जिसके अंतर्गत अनेक विध भावों का चित्रण आता है। किन्तु इन पत्रों में कुछ सीमित प्रकार के भाव लक्षित होते हैं। कहीं ये भाव उत्कट रूप से प्रकट हुए हैं तो कहीं सीमित परिमाण में। पत्रों में प्रकट मुख्य भाव हैं— आनंद, दीनता, दुख, क्रोध।

(१) आनंद के भाव—प्रधानत: निम्नलिखित प्रसंगों के संवंध में प्रकट हुए हैं—

(क) लड़ाई में विजय पाने की खुशी में— जैसे — " श्रीजी के कृपासे फते भई खुसी की हकीकती मालुम होना सबव लिखी है।" (प. १२४) "फतेके खुशी की राजकु मालूम हुवा वास्ते लीखी है राजखुसी राखस्यों।" (प. १५१)

(ख) समारोह के निमंत्रण या परस्पर संवंध व्यवहार के पत्रों में जैसे-

(१) "चिरंजी कासीराव होलकर के लगन मीती पोस वदी १ कू ठहरयो छै सो राज सव भाई वेटे सुधा व्याह में आय सामिल होहुगे राजके आये सारी सोभा सधैगी।" (प. १६१)

(२) "चिरंजीव ढुंडीराव फनस्या की लगण ··· ··· ठहरी है सो राज लगण मे आयकर सोभा करोगे ··· तीनू लगण मे रोनक आयकर वरनी जोग्य है।" (प. १६२)

(३) "श्री पंडीत मुख्य प्रधान श्री रावसाहेबको व्याहा ··· करिये को नहत्तो कीयो छे तो आप वमे सरंजाम व्याहोको आईयो।" (प. १६६)

(४) "केनाक मजकूर ··· स्नेह प्रीयीका ··· जाहरि हुवा ··· बहोत खुसी हुई अबनी पघड़ी बदल भाईचारा हुवा ··· आपने पघड़ी व मेसर पेच भेजी सो पोहची बड़ी सरकार से लीई अब याहासें भी पघड़ी व मेसर पेच भेजी है सो सरकार से आपने लेणा।" (प. १७३)

(ग) किसी महत्वपूर्ण कार्य करने से या उपाधि अथवा स्थान प्राप्त करने पर–

ऐसे प्रसंगों में अत्यंत आनंद और अभिमान होता है।" जब हृदय भावनाओं से भर जाता है जबान खामोश रहती है।" यह भावावेग चंद शब्दों में प्रकट हुवा है। उदा०—लगभग दस साल दूर प्रान्तों में भटकनेवाले मुगल सम्राट "शाह आलम द्वितीय" को फिर दिल्ली के तख्तपर बिठाने का महान एवम् कठिन कार्य करने की खबर महादजी सिंधियाने अत्यंत संक्षेप में कही है— "पातशाहजी से मुलाजमत कर पुस सुदि ७ को दिल्ली तखत पर बिठलाया, और समाचार भट्टजी के कागद वा वकील्याके लिखे सूं जाहर होसी।" (प. १२६)

(१) हिन्दुस्तान की मुख्यारी के अधिकार प्राप्त होने पर—

" आलिजाहा माहाराज दवलतराव सिंधे बाहादर जग या कु ··· हीदुस्तान की मुकतारि के सिर पाव दिया ··· और दिल्ली से हजरत के सरातब वा खिलत मुकतारी के पुनाकु भेजा सो सारा समाचार राजने जवाहर होसी।" (प. २०३)

(२) "पुन्याकु आली जाहा बाहादर के कागद हामकु आये हैं हीदुस्तान के कार-भारी की मुखत्यारी हामकु लीखी आई है।" (प. २०७)।

(२) दीनता के भाव कुछ पत्रों में प्रकट होते हैं— जैसे —

(क) "आपहीं सो सी ब्राह्मण के प्रतपाल हो और हम हैं सो तुम्हारे भिखारी है आसा बड़ी राखत है।" (प. ६)

(ख) "आपु के प्रताप सों इंहां के समाचार भले है ··· आपुही हमारे परमेसुर है ···· हमारी खबरि बीसारोगे नहीं ··· हमतो रातिदिन सुमिरन आपुको करत है।" (प. २६)

(३) कुछ पत्रों में दुख के भाव लक्षित हैं — जैसे

(अ) "तुरत मेरे ऊपर या तरह सकती भई वह बात महाराज देखे कैसी है।" (प. १०)

(आ) "असफेर लुहालाही मची है ··· राहे बंद है तातैं भुलचुक हजुर को सेवक की माफ करनी है ··· हम इहा वनके घेरा में है अरु हमारो सरीर म्हाराज को है। बात दुसरी नाही।" (प. ५४)

(इ) "राजा गोपाल सिंघ जी ··· देवलोक को पधारे ··· या बात पैं सब ही दुख पाइ रहे है ··· हमको तौं अब कछु नहीं सूझे।" (प. ५६)"

(४) क्रोध के भाव कुछ पत्रों में स्पष्ट हैं — जैसे —

(क) "राजका कागद था सो इनुनें माना नही ··· गढ़ी खाली कर देवे ··· तो भला नही तो हमारी फौज उस मुलूक मे आवेगी गढ़ीवाले का शीर काटकर जोरावरी से गढ़ी सर करेंगे तब राज इनकुं बचावणे की बात बोलोगे तो सुने नही।" (प. १६२)

(ख) "जसवंत सीग के बेटया ··· मेवाड़ में धूम मचाई छै ··· उनके लार आपने फौज दीई छै ··· ऐबात आपको जोग्य छै ही ··· रावत जी को वा फौज को बुलाई लीजो हरगीज मेवाढ़ में न भेजोळा," (प. १८३)

(ग) "उपरी राती को ही तुमारी फोज जायेकर छापो घालो, लोकासों लुटवायो ब्राह्मण वा कोइ मातबर लोग मरो छै वा लुटो छै ··· बीसाद लुटवाई छै सो बात राजल्यायेक नही है।" (प. ११५)

(घ) "ईठे तो सलुख की वाता करो छो उठे काम जैसो करो छो जो सिरकार का गढ़ रणथंबोर थे लियो ··· आपने सलुख करनो होय तो सिरकार को गढ़ छोड़ दयो ···।" (प. ११६)

भावात्मक शैली के कुछ अन्य उदाहरण—

(१) "श्री. नाथजी की पूजा पीछले दस्तूर माफक हुवा करै तिस माफक जस पुन्य करोगे हमारा अमल कर देवोगे हीदोंका घ ··· जैसा चाये तैया तुमने कया आसमुद्रांत कीर्ति हुई तोफो की बात कौन बड़ी है।" (प. ३)

(२) "यह राज्य अपनी जस की बेलि है सो दूसरो खरखसा न करै पावै निदान जो ऐ अपने कहै तै सिवाई करि हैं तो यह राज्य पैं हम मरि है मारि है राज्य रहै जाइ फेर पाछे आप खबरि करि लीबी।" (प. ४)

(३) "इन दिननि मैं खबरि मुनिवे में आई हि कै श्री. पंडित बीसाजी कृश्न स्लेहन की ल्याउ मारी .... फतै पाई मो या खबर सुनै बड़ी खुसी भई अरु पातसाहि कों अस्थान मिक करे सल्तनत पातसाहित को हरियेक तरह बहु- तऊ थोरे दिननि मैं करि दयौ सो पं. श्री बीसाजी कृश्न ऐसे ई सिरदार है जो वस्न करो चाहे सिद्धि होइ अरु हम हरियेक तरह उनिसौ अपने बनाउ कौ भरोसौ राखत है .... श्री बीसाजी कृश्न अंसे बड़े सिरदार हैं जिनि पात- साहन के सलतनत बाँधे दिल्ली बैठारे तिनि की यह हमारौ कामु साधारनई है .... ।" (प. ८)

(४) "ईहातें हमे निकसतन जोखे है अमफेर लुहालाही मची है ताते हम हजुर पोहुच है .... अबे भाडेर रामनगर दहरोली इतनी राहे बंद है तातैं भुलचुक हजुर को सेवक की माफ करनी है .... इहाहम बनके घेरा में है अरु हमारौ मरीर म्हाराज को है सु योर बात दुसरी नाही ।" (प. ५४)

(५) "मकर मंक्रात के बिल गरकगायुक्त हर साल कीये हैं सो कृपा करके कबूल फरमाई येगा ।" (प. १०७)

(६) "कर्ज का फरच्या करने वास्ते मोतीराम उहां गया वाको कैद करना ऐ बात जोग्य छे नही आवे देखत कागद छोड़ दीजो ।" (प. १`८)

तथ्यात्मक शैली का प्रयोग कतिपय पत्रों में मिलता है। इन तथ्यों में ऐतिहासिक और राजनीतिक तथ्य अधिक एवम् महत्वपूर्ण हैं। इनका अध्ययन आठवें अध्याय में विस्तार से किया है अतः इनको उदाहरण के तौर पर यहां दिया है। इनके अलावा कुछ सामाजिक, धार्मिक सांस्कृतिक तथ्य भी लक्षित हैं जिन्हें संक्षेप में यहां दिया गया है।

(१) ऐतिहासिक : महाराजा छत्रसाल ने पेशवा बाजीराव और चिमनाजी को बंगश के विरुद्ध सामयिक सहायता प्रदान करने पर पांच लाख की जागीर दी थी। सं. १७९५ में छत्रसाल के पुत्र जगतराज और हिरदेसाह ने सवा दो लाख की जागीर दी और शेष पौने तीन लाख की जागीर बँटवारा देखकर देने का करार किया और भली फौज के साथ सहायता करने की बात पेश की।" (प. १२)

(२) राजनैतिक : राजा के अनन्तर उसके (सबसे) बड़े बेटे को युवराज का तिलक किया जाता। यहां राजा जगतराज "अपने" छोटे बेटे के छोटे बेटे को

युवराज का टीका करने का हेत" रखता था और वह वात उसने पेशवा बालाजी बाजीराव के सामने रखी। बालाजी बाजीराव ने उसमें होनेवाली कठिनाइयाँ बताकर अपनी राय पत्र द्वारा भेज दी। (प. १)

(३) सामाजिक : समाज में शास्त्री ब्राह्मणों का विशेष स्थान रहता है। उनकी ओर एक विशेष आदर्श की दृष्टि से देखा जाता है। अत: खान-पान इत्यादि के सम्बन्ध में उनके अपने बंधन अधिक कड़े रहते हैं। ब्राह्मण के द्वारा मद्य-पान निशिद्ध माना गया है। अत: शास्त्री के द्वारा मद्य प्राशन और उसके परिणामों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण उल्लेख हैं। "कलाल के ईहांसे दारु मंगाकर पीते हैं···बात का बोबाठ हुवा आवर ईहां हमारा भी नीभाव होता न्ही।" (प. २०)

(४) धार्मिक : हिन्दू धर्म में तीर्थ स्थानों की यात्रा का विशेष महत्व है। हर एक हिन्दू व्यक्ति के मन में काशी-रामेश्वर की तथा अन्य पुण्यतीर्थ क्षेत्रों की यात्रा करने की इच्छा रहती है। पत्रकालीन स्थिति में यातायात की असुविधाएँ तथा मार्ग में चोर-लुटेरे-डाकुओं का भय रहने से यात्रा करना कठिन बात मानी जाती थी। बड़े परिवार की स्त्रियाँ या पुरुष वर्ग जब यात्रा को चलते तब उनके साथ गरीब परिवार के लोग चलते और उनका एक दल सा मानो बनता। इन लोगों की सुरक्षा की व्यवस्था करने का कार्य कभी खानगी तौर पर होता तो कभी राजा या अधिकारियों की ओर से होता। कुछ थोड़े पत्रों में इसका उल्लेख मिलता है—"राजश्री नारायण राव कृष्ण मुनसी या की वाहान श्री बदरीकाश्रम की यात्रा के लसकर में आई अठासु श्री पुष्कर की जात्रा कुं जाय छै सो आप जयपूर सैं ईनी के लार प्यादे दैं कैं पुष्कर को पोहचाय देवोला।" (प. १२७)

"सेठ खुस्याल चंद की बैठी श्री नाथद्वारा सू श्री मथुरा जात्रा को जाती है साथ को जात्रा बोहोत है वासी सौ सवार वा प्यादे देकर मथुराजी पोहाच्याह दीवोला।" (प. १५३) इत्यादि

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त अधिकतर पत्र सरल शैली में लिखे गये हैं अत: उनका कोई उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया है।

कुछ पत्र ऐसे मिलते हैं जिनमें लेखक की विद्वता तथा सावधानी के अभाव के कारण अनेक दोष, अशुद्धियां इत्यादि प्रकार की त्रुटियाँ लक्षित हैं।

विषय प्रतिपादन में निम्नलिखित शैलीगत विशेषताएँ लक्षित हैं।

पत्रों के विषय प्रतिपादन करने की पद्धति के संबन्ध में

सरलता, स्पष्टता और संक्षिप्तता लक्षित होती है। पत्र भिन्न विषयों से संबन्धित हैं। प्राप्त पत्रों में सरकारी कामकाज के लगभग १७ प्रकार के पत्र प्राप्त हैं उदा०—(१) अर्जदास्ति (२) आज्ञा पत्र (३) इनाम पत्र (४) कबज रसीद (५) कबुलियति (६) जमा–वसूल (७) टिप, टीप (८) ताम्रपत्र (९) दानपत्र (१०) याददास्ती (११) रसीद (१२) रुक्का (१३) लिखत (१४) वरात (हुंडी) (१५) वसूल पत्र (१६) सनद (१७) हुक्म।

इन पत्रों के विषय निश्चित हैं और इनके लिखने की जो प्रचलित पद्धति थी उसका अनुसरण इन पत्रों में किया गया है अतः इन पत्रों के विषय प्रतिपादन के सम्बन्ध में विशेष कथन करने की आवश्यकता नहीं फिर भी इनमें सरलता एवम् स्पष्टता लक्षित है।

इन पत्र प्रकारों के अलावा शेष पत्र साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं— ये पत्र व्यक्तिगत–खानगी पत्र हैं। ये पत्र भिन्न व्यक्तियों के द्वारा भिन्न स्थानों से लिखे गये हैं और इनका काल भी लगभग एक शताब्दी + का है। फिर भी इन पत्रों के विषय कथन में विशेष उल्लेखनीय बातें निम्नलिखित हैं—

(१) संक्षिप्तता–सरलताः— पत्र का विषय कितना भी महत्वपूर्ण हो, उसमें अभिमान या गर्व करने की बात हो तो भी उस बात को संक्षेप में और सरलता से प्रतिपादित किया है उदाहरण—दिल्ली से दूर लगभग १० साल भटकने वाले मुगल सम्राट को महादजी सिंधिया ने दिल्ली लाकर सिंहासन पर बिठाया। यह भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है और मराठों की दृष्टि से अत्यंत अभिमान एवम् गर्व की बात है। इस घटना को महादजी सिंधिया ने कितने संक्षेप में लिखा है यह बात देखने लायक है— "पातशाहजी से मुलाजमत कर पूस सुदि २ को दिल्ली तखत पर बिटलाया– और समाचार····जाहर होसी।" (पत्र क्र. १२९) इतने महत्वपूर्ण विषय को एक ही वाक्य में प्रतिपादित किया है।

+(ये पत्र भिन्न विषय—राजनीति, इतिहास, धर्म, संस्कृति इत्यादि से संबन्धित है)

दूसरा उदाहरण— दवलतराव सिंधिया को हिंदुस्तान (उत्तरी भारत) के मुख्त्यारी के अधिकार एवम् सन्मान द्योतक वस्त्र आदि प्राप्त करने के संबन्ध में खबर भेजी है–"दवलतराव सिंधे···या कु मिति फालगुण सुदि २ दुज के दिन हिंदुस्तान की मुक्तारिकै सिरपाव दिया सो मिति चैत सुदि १ प्रतिपदा का सुमोहर्त सु नासवारिकि तयारी करणे की फरमाई···दिली से हजरत के मरातब व खिलत मुक्तारी के पुनाकु भेजा सो सारा समाचार राजने जवाहर होसी।" (प. २०३)

(आ) संक्षेप में तथा सरल शैली में विषय प्रतिपादन करने की पद्धति लड़ाई का प्रत्यक्ष वर्णन करने वाले पत्रों में भी देखी जाती है उदाहरण—

अठे चैत्र सुदि एकादसी के दीन नवलसिंग जाट की और म्हाकी लड़ाई भई एक प्रहर दीनमे लड़ाई सुरु भई सो तीन प्रहर रात्र लग आखेर होई के जाटने सिकस्त खाई नवलसीग वा और सीरदार पावसे भाग के डीगमे गये कछु रणमे गीरे कछु पाडाव भये फौज वौहोत मारी गयी ... ।" (प. १२४)

"अठा की वी तयारी करके फौज सुधा कुच करके ईगरेज का मुकावला कीया दोनो तरफ की लड़ाई सुरू हुई सरकार की फौज मातवर थी चारो त्रफ से लगाव करके तोफाकी वगैरै मार दीई तीन पोहर तांई लड़ाई हुई. श्रीमंत जी का कृपासूं आपणी फते हुई ईगरेज वोहत मारे गये ... ।" (प. १३१)

इन विषयों के अलावा सामाजिक सांस्कृतिक पत्रों में भी उपरोक्त विशेषताएँ लक्षित होती हैं।

(३) पत्रों में प्राप्त मुहावरों का अध्ययन

"भाषा न केवल संस्कृति की बल्कि किसी देश, जाति, अथवा राष्ट्र के जीवन के सभी पक्षों की छाया है।" वोलचाल की भाषा विकसित और परिष्कृत होकर साहित्यक भाषा बनती है। "भाषा में मुहावरों के प्रयोग से सजीवता, शक्तता और सुन्दरता आती है। ये मुहावरे ही भाषा के प्राण होते हैं और वे ही उसे सजीव रखते हैं। अतः अच्छे लेखक अपनी रचनाओं में इन मुहावरों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में करते हैं।

"मुहावरों की दृष्टि से इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि बोलचाल की भाषा ही साहित्यिक भाषा के मुहावरों का प्रसूति का गृह है। यहीं उनका जन्म होता है और यहीं पल-पुसकर वे साहित्यिक भाषा के योग्य, सभ्य, सुसंस्कृत नागरिक बनते हैं।"(२)

बोलचाल की भाषा पर नित्यप्रति बोलने वाले के स्थान, समय तथा कार्य के अनुसार प्रभाव पड़ता है। यह भाषा संस्कारक्षम तथा ग्रहणशील रहती है। इस बोलचाल की भाषा का क्षेत्र जितना अधिक विस्तृत है उतना ही अधिक भिन्न भाषाओं का प्रभाव उसमें लक्षित होता है।" प्रान्तीय भाषाओं और स्थानीय बोलियों में प्रायः अधिक सजीव, भाव व्यंजक शब्द और मुहावरे मिल सकते हैं।(३)

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त भाषा तात्कालिक "प्रचलित तथा जीवित और बोलचाल की भाषा (Current living and spoken language) का प्रामाणिक उदाहरण है। अतः इसमें भिन्न-भिन्न भाषाओं और बोलियों के सुन्दर शब्द और मुहावरों का संगम दिखाई पड़ता है। ये मुहावरे "भाषा की दृष्टि से एक-दूसरे का अनुवाद या शाब्दिक परिवर्तन" नहीं है अतः उन्हें "अपनी प्रान्तीयता का परिधान पहने हुए क्रमागत विकास का परिणाम" मानना चाहिए।(४)

मु हा व रे

(अ) क्रिया उठना या उठाना (प्रे. रूप)

(१) मोर्चा उठाना (प. ११५) (घेरा उठाना)
(२) हूंडी उठाना (प. ५४) (झंझट निर्माण करना)
(३) हींमागा उठना (प. ५६) (,,)
(४) सोर उठाना (प. ५६) (ऊधम मचाना)

(आ) उतरना

(५) पूरा उतरना (प. ११८) (बात सत्य होना)

---

(२) मुहावरा मीमांसा पृ. १६।
(३) ,, ,, पृ. १६१।
(४) ,, ,, पृ. ७१।

(इ) अवधारना

(६) आसीरवाद अवधारना (प. २०७) (आशीर्वाद धारण करना)
(७) नमस्कार ,, (प. ३५) (नमस्कार ,,)
(८) रामराम ,, (प. १९९) (रामराम ग्रहण करना)

(ई) आना

(९) खरच नीचे आना (प. ५६) (रु० खर्च हो जाना)
(१०) घीरावमें ,, (प. ५६) (घेरे में पकड़ा जाना)
(११) छड़ी अस्वारी से आना (प. १६३)
(११) ठिकाना नजर न आना (प. ५६) (आशा न रहना)
(१३) फकीर होकर आना (प. ३) (सब कुछ गवांकर आना)

(उ) करना

(१४) उजाड़ विघाड़ करना (प. ११७) (झगड़ा झंझट न करना)
(१५) अपने करना (प. ६८) (मैत्री भाव से बांध देना)
(१६) अमल वहाल करना (प. ५६) (अधिकार सुपुर्द करना)
(१७) आवादानी करना (प. १९) (मुलक की तरक्की करना)
(१८) आमदर्फत करना (प. १९) (यातायात वढ़ाना)
(१९) आसीर्वाद करना (प. ९) (आशीर्वाद देना)
(२०) कौल वचन करना (प. १६९) (वायदा करना)
(२१) खतरा करना (प. ८०) (भय या संकट निर्माण करना)
(२२) गादीपर दाखल करना (प. १५७) (राजगद्दी पर विराजित करना)
(२३) गादीपर स्थापना करना (प. १५७) (राजगद्दी पर विराजित करना)
(२४) खलासी करना (प. १३४) (गांव मुक्त करना (छुड़ा देना)
(२५) गौरख समान करना (प. ३८)
(२६) गौर परदाखत (परदाश्त) करना (प.१९९) पालन-पोषण करना(उ. हि.को)
(२७) चौकी पहारा कराना (प. १८६) (पहारा विठा देना)
(२८) जस-पुन्य करना (पुण्यकर्म करना)
(२९) जीर्णोद्धार करना (१५७)
(३०) टीका करना (प. १) (राजतिलक लगाना)
(३१) टेढ़ी आंख न करना (प.७) (दुश्मनी न करना)

(३२) (जागह्) तहस नहस करना (प. १०२) (बरबाद करना)

(३३) तांबापत्र करना (प. १६७) (ताम्रपत्र कर देना, निश्चित रूप से देना,)

(३४) धूमधाम करना (प. ५०) (झंझट निर्माण करना, ऊधम मचाना)

(३५) नबदीगर करना (प. १६२) (टाल मटोल करना)

(३६) (परगना) ताराज करना (प. ६८) (मुल्क तबाह् करना)

(३७) पक्ष करना (प. १८३) (अपने पक्ष में सामिल करना)

(३८) प्रतिष्ठा करना (प. १५१) (स्थापना करना)

(३९) बदफैल न करना (प. १५२) (खराबी न करना. बुरा काम न करना)

(४०) बदराह करना (प. ६४) बुरा व्यवहार करना, बुरी राह् ले जाना)

(४१) बे मरजाद करना (प. १७४) (आदर न करना, इज्जत उतारना)

(४२) रुगमत करना (प. २०६) विदा देना, खानगी करना)

(४३) रोनक करना (प. १६२) (समारोह् में शोभा लाना)

(४४) सक्त नरम सवाल जवाब करना (प. ५३) (अच्छी बुरी बातें कहना)

(४५) सलूख का पैगाम करना (प. १३१) (संधि-प्रस्ताव करना, भेजना)

(४६) सुस्ति करना (प. १६६) (काम में ढील करना)

(४७) हंगामा करना (प.१६०) (झगड़ा करना, उठाना)

(४८) हगामा खड़ा करना (प. ५६) (झगड़ा निर्माण करना)

(४९) हवा पर नजर न करना (प.२०८) (बातोंपर ध्यान न देना, यकीन न करना)

(५०) हवाले कर देना (प. १३०) (अधिकार में देना)

(५१) श्री कृष्णेन अर्पण करना (प. १८) (भगवान के नाम पर दान देना)

(ऊ) खाना

(५२) निमक खाना (प.१८) (स्वामिनिष्ट होना)

(५३) सीकस्त (प.५६) (हार जाना, पराजित होना)

(ए) चढ़ना

(५४) तलब सीरपर चढ़ना (प.५६) (ऋण होना)

(ऐ) जाना

(५५) कृपा बंधि जाना (प. ६७) (कृपा बनी रहना)

(५६) पृथवी छोड़ जाना (प.४६) (मर जाना)

(ओ) देखना

(५७) चरन देखना (दर्शन करना, उपस्थित होना) (प.१८)

(औ) देना

(५८) इज्जत देना (प.१०) (सम्मान करना)

(५९) एक राह बाँध देना (प. ८०) (नियम या परंपरा बना देना)

(६०) कबज करी देना (प. ८६) (कब्ज रसीद लिख देना)

(६१) खरखसा मिटा देना (प.४) (झगड़ा, गड़बड़ी मिटाना)

(६२) गाव उदक देना (प.१८) (दान में गाव दे देना)

(६३) टीका देना (प.१५७) (टीका करना, तिलक लगाना)

(६४) तावा पत्र कर उदक देना (प.१६७) (दान देना)

(६५) नतीजा देना (प. १७९) (पारपत्थ करना, सजा देना)

(६६) पालखी डंडे देना (प.१६०) (सम्मान सूचक चिन्ह देकर सम्मान करना)

(६७) मुखतारी के सिर-पाँव देना (प. २०३) (मुख़तार के अधिकार, चिन्ह देना)

(६८) मुलक पाछे देना (प.१३१) (जीता हुआ मुल्क लौटाना)

(६९) मुलक छोड़ देना (प.१३१) (मुलूक से चले जाना)

(७०) लोग बैठा देना (प्र. १६) (पहरा लगाना)

(अं) पकड़ना

(७१) बाँह पकड़ना (प.६५) (आश्रय देना, रक्षा करना, शरण में लेना)

(अः) पठवाना

(७२) बरात पठवाना (प.८६) (हुंडी भेजना)

(क) पड़ना

(७३) खास में पड़ना (प.४० (बरबाद होना)

(७४) फसल मारी पड़ना (४०) (फसल नष्ट होना)

(७५) राड़ी का इतफाक पड़ना (प. ११७) (झगड़ा उपस्थित होना)

(७६) सूखा पड़ना (४०) (अकाल पड़ना, मेह न होना)

(ख) पधारना

(७७) देवलोक पधारना (प.५७) (स्वर्ग सिधारना)

(ग) पहुँचना

(७८) परमारा पहुँचना (प. २०७) (परस्पपर पहुँचना)

(७९) हजुरि पहुँचना (प.२३) (बड़े के सामने उपस्थित होना)

(८०) तनदी बाजार पहुँचना (प. ६८) (परगना खराब करना, तकलीफ देना)

(घ) पाना

(८१) फतह पाना (प. ८) (विजय प्राप्त करना)

(८२) फल पाना (प. १७४) (परिणाम भुगतना)

(८३) मुजरा पाना (प. ४४) (बड़ों के सामने दरबार में उपस्थित होना)

(ङ.) पोहोचना (मराठी)

(८४) समाचार पै दरपै पोहोचना (प. २०२) (समय समय समाचार पहुँचना)

(च) फरमाना

(८५) अमल फरमाना (प. ३९) (अधिकार में कर देना)

(८६) आग्या फरमाना (प. १६७) (आज्ञा देना)

(८७) कबूल फरमाना (प. १०६) (स्वीकार करना)

(८८) तागोती फरमाना (प.४१) (ताकीद करना)

(छ) बंचना

(८९) कोरनीसात बंचना (प. १८) (प्रणाम बंचना, या स्वीकार करना)

(ज) बंधना

(९०) सजलि बधना (प. ५०) (तैयारी होना)

(झ) बढ़ना

(९१) सजल बढ़ना (प. १०२) (तैयारी बढ़ना)

(ञ) बतावना

(९२) झूठी साची का तूदा बतावना (प. २०२) (झूठ सच का दोष लगाना)

(ट) बसाना

(९३) गाउ बसाना (प. ८४) (आबाद करना)

(९४) मुलूक बसाना (प. ११७) (आबाद करना)

(ठ) बुलाना

(९५) छडे हजर बुलाना (प. २७)

(ड) बैठाना

(९६) मोर्चा बैठाना (प. ११५) (घेरा डालना)

(ढ) भेजना

(९७) नबी ग्वानर भेजना (प. १३६) (निर्वाह के लिए भेजना)

(ण) मचना

(९८) लुहालाही मचना (प. ५४) (खून खराबी होना)

(९९) धूम मचाना (प. १८३) (ऊधम मचाना)

(त) मिटना

(१००) डूंड़ी मिट जाना (प. ३५) (झंझट मिट जाना)

(थ) मिलना

(१०१) खाता जमा से मिलना (प. २४) (आदर, तैयारी से मिलना)

(१०२) सत्यानासे मिलाना (प. ६७) (बरवाद करना)

(द) रखना

(१०३) अन्तर नहीं रखना (प. ७) (दुराभाव न रखना)

(१०४) गौरख समान रखना (प. १०६)

(१०५) वनाव का भरोसा रखना (प.८) (सहायता की आशा रखना)

(१०६) भरोसा रखना (प. ६) (विश्वास रखना)

(ध) रहना

(१०७) कृपा विगड़ी रहना (प. ६७) (अवकृपा होना)

(१०८) खरखसा मड़ाऐ रहना (प. ४) (झंझट वना रहना)

(१०९) ,, मढाये ,, (प. ४) (झंझट निर्माण करना)

(११०) अरघसा लगा रहना (प. ४) (झंझट वना रखना)

(१११) चरित्र देखत रहना (प. ५०) (कार्य देखते रहना)

(११२) नजर राखत रहना (प.१०) (देखते रहना)

(११३) साचोटी रहना (प. १२५) (सत्यता रहना)

(न) लगना

(११४) (काम ऊपर) जीव धरती लगाना (प. ५६) (जीजान से काम करना)

(११५) ठिकाना लगाना (प. १६५) (पता लगाना)

(११६) ताता लग जाना (फौजका) (प. १७४) (फौजकी भीड़ लगना)

(११७) फौज जाकर लगना (प. १३३) (घेरा डालना)

(प) लाना

(११८) खातर में न लाना (प. ११) (ध्यान में न रखना)

(फ) लुटवाना

(११९) विसाद लुटवाना (प. ११५) (पूंजी, पैसा लुटवाना)

(ब) लेना

(१२०) खबर लेना (प. ५६) (रक्षा करना, सहायता करना)

(भ) सधना

(१२१) सोभा सधना (प. १६०) (समारोह की शान बढ़ाना)

(म) होना

(१२२) आड़ा न होना (प. ७) (बाधक न होना, विरोध न करना)

(१२३) कल्पवृक्ष होना (प. ८७) (आशापूर्ति का स्थान)

(१२४) कागद होना (प. ६६) (चिट्ठी भेज देना)

(१२५) कोल करार होना (प. ११७) (करार वचन होना)

(१२६) खुसवखती होना (प. ६८) (आनंद होना)

(१२७) खुसी, खातर जमा होना (प. ३६) (आनद होना)

(१२८) गाव पायमाल होना (प. १०७) (बरबाद होना)

(१२९) चाकरी में रामसरण होना (प. ५७) (मरजाना)

(१३०) छाप होना (प. १०) (रौब होना)

(१३१) जागीर इनायत होना (प. १०६) (जागीर देना)

(१३२) जवाब इनायत होना (प. १०६) (जवाब देना)

(१३३) जीव जागा सुधा हाजिर होना (प. ५६) (सब चीजों सहित उपस्थित होना)

(१३४) ठिकाना होना (प. ६५) (आधार या आश्रय होना)

(१३५) देवलोक होना (प. २०) (मृत्यु होना)

(१३६) फितूर होना (प. १९४) (दूसरे पक्ष में जा मिलना)

(१३७) मेह न होना (प. ९१) (सूखा पड़ना)

(१३८) राड़ि होना (प. १७४) (झगड़ा, झंझट होना)

(१३९) लेने के डौल में होना (प. ६) (कब्जा करने का इरादा रखना)

(१४०) संकल्प सिद्ध होना (प. १६७) (मनोरथ पूर्ण होना)

(१४१) सरफराजी हासिल होना (प. १०६) (सम्मान प्राप्त होना)

(१४२) किसी के हाथ में सरम होना (प.६८)(सम्मान की रक्षा का आधार होना)

मराठी प्रभाव से युक्त मुहावरे

करना

(१) अटकाव करना (प. १४१) (रोकना)

(२) अनमान न करना (प. १५८) (अनादर न करना)

(३) खाना खोदी करना (प. ५६) (खोज तलाशी करना, खोदकर तलाश करना)

(४) गई न करना (प. १४४) (माफ न करना=मराठी गय न करणें)

(५) चोकसी करना (प. १३५) (तलाशी करना)

(६) थथा ममा करना (प. ५०) (मीठी बातों से राजी करना)

(७) पारपत करना (प. ८) (दमन करना, सजा देना)

(८) फंद फितुर करना (प. १५२) (फित्तूरी करना)

(९) फौज पर चाल करना (प. १५१) (आक्रमण करना)

(१०) वरात करना (प. ४५) (हुंडी बनाकर भेजना)

(११) मढ़ी सर करना (प. १६२) (जीतना, अधिकार कर लेना=मराठी सर करणें)

(१२) ह्या नु करना (प. ७६) (हां, ना करना=मराठी हो, ना करणें)

काढ़ना

(१३) काटि काढ़ना (प. ५०) (काट देना,=मराठी कापून काढ़णें)

चलाना

(१४) घोड़े चलाना (प. १५१) (घुड़सवारों के दस्ते से आक्रमण करना=मराठी घोड़े चालवणें घालणें)

जाना

(१५) फूटकर जाना (प. ५६) (अलग होकर बिखर जाना,=मराठी फुटून जाणें)

ठहरना

(१६) करार मदार ठहरना (प. १६४) (इकरार होना)

देना

(१७) दाग देना (प. १९०) (जागना)

(१८) तैनाथ कर देना (प. ६६) (सेवा में रखना)

(१९) पूरी पाड़ देना (प. १७३) (पूर्ण करना=मराठी पुरी पड़णें)

निभाना

(२०) सेवट निभाना (प. १२२) (अंत तक निभाना)

पड़ना

(२१) वात रुजू पड़ना (प. १) (वात पसंद आना, मरुजू पड़णें)

पहुँचना (पोहोचना)

(२२) खीदमत में पोहोचना (प. १८) (सेवामें उपस्थित होना)

(२३) नतीजा को पहूँचना (प. ५६) पारपत्य होना,

(२४) सजा को पोहचना (प. १७३) (दंड मिलना, सजा मिलना)

पावना (प्राप्त होना)

(२५) समाधान पावना (प. १५६) (समाधान होना)

फसाना

(२६) घर फसाना (प. १६६) (धोखा देना)

बैठना

(२७) एकान्त में बैठना (प. १६६) (खास लोगों के साथ अलग बैठकर=मराठी-—एकान्ती बसून)

(२८) डाक बिठाना (प. १०१) लड़ाई के समय डाक की खास व्यवस्था करना)

भागना (भाग जाना)

(३०) पाँव से भाग जाना (प. १२४) (डरकर भाग जाना=मराठी परा पाय लावून पळणें)

राखना

(३०) इलजाम न राखना (प. १६४) (दोप न लगना)

(३१) कसर राखना (प. १७३) (त्रुटि या कमी रखना=मराठी कसर राखणें)

लगना

(३२) पाळद ठीक लगना (प. ११) (दुष्मन का पता लग जाना)

(३३) पाड़ाव कर लाना (प. १५१) (युद्ध में जीत कर पकड़ लाना=मराठी पाड़ाव करुन आणणें)

लेना

(३४) बुनगाह लूट लेना (प. १५१) (मराठी बुणगे लुटणें)

वाचना

(३५) सलाम बंदगी वाचना (प. २६) (वाचना, प्रणाम वांचना, पढ़ना)

विसारना

(३६) खबरि विसारना (प.२०) (विसारना,भूलना,याद करना=मराठी विसरणें)

संभालना

(३७) मोहरा संभालना (प. १५१) (लड़ाई में किसी बाजू की रक्षा करना)

होना

(३८) एक सुत होना (प. ५०) (एक हो जाना = मराठी एक सुत होणें)

(३९) कहवत होना (प. १९०) (मराठी बोलाचाली होणें)

(४०) डेरे दाखल होना (प. १२१) (युद्ध के लिये पहले पड़ाव पर दाखिल होना)

(४१) नाव मात्र का होना (प. १८९) (जिम्मेदार न होना)

(४२) पाड़ाव होना (प. १२४) (जीतना, जीतकर पकड़ लाना = मराठी पाड़ाव होणें)

(४३) बात फरच्या होना (प. १६८) (बात फरच्या होना, काम पूर्ण होना)

(४४) बोभाट होना (प. २०) (बात जाहिर होना)

(४५) सिष्टाचार रुजू होना (प. १२६) (शिष्टाचार में भेजी चीजें स्वीकारना मराठी शि. रुजू होणें)

---

* द्वितीय खंड *

❋ सातवाँ अध्याय ❋

सातवाँ अध्याय

पत्र लेखन-पद्धति और डाक व्यवस्था

प्रस्तुत पत्रों का काल लगभग एक शताब्दी का काल है। इस लम्बे समय में विभिन्न व्यक्तियों के द्वारा भिन्न भिन्न स्थानों से लिखे हुए ये पत्र हैं। ये पत्र अनेक विवध विषयों से सम्बन्धित हैं। भिन्नता से युक्त इन पत्रों में प्रयुक्त "पत्र लेखन-पद्धति" का विश्लेषण कर उस समय प्रचलित पत्र लेखन पद्धति के सामान्य रूप को खोज निकालने का प्रयत्न इस अध्याय में किया गया है। अनेक विध विषयों पर लिखे हुए इन पत्रों में जो एक समानता एवम् पद्धति लक्षित होती है, वह एक रूपता साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

पत्रों को परम्परागत पद्धति से लिखा जाता था। यह पद्धति प्रत्येक काल तथा शासन के अनुसार परिवर्तित रही। मुसलमाली काल से मुगल काल में और मुगल काल से शिवाजी एवम् पेशवाओं के काल में आते आते इस पद्धति में कुछ परिवर्तन हुआ। इस पद्धति की जटिलता कम हो गयी और वह सरल बनने लगी। प्रस्तुत पत्रों के काल में तो यह पद्धति अत्यंत सरल रूप में लक्षित होती है। इस पद्धति का अध्ययन करके अध्ययन के पश्चात् तत्कालीन पत्र लेखन-पद्धति की विशेषताएँ दी गयी हैं।

इन लिखे हुए पत्रों को विभिन्न स्थानों से भेजने तथा प्राप्त करने की जो व्यवस्था उस काल में थी इसका विवेचन भी इस अध्याय में किया गया है। प्रस्तुत पत्रों के काल में डाक-व्यवस्था सरकार की जिम्मेदारी नहीं थी और न समाज की ही। समाज-जीवन के व्यवहार की मर्यादा सीमित थी, अतः पत्र-व्यवहार सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग नहीं था। पत्र-व्यवहार की आवश्यकता राज्य शासक एवम् साहूकारों को थी। उसी दृष्टि से डाक व्यवस्था का आयोजन किया गया था। इस डाक व्यवस्था की योजना या पद्धति का संक्षेप में अध्ययन भी यहां पर प्रस्तुत किया गया है।

पत्रलेखन-पद्धति

प्राप्त पत्र विविध विषयों से सम्बन्धित हैं अतः इनकी लेखन-पद्धति में विवि-

घता तथा भिन्नता लक्षित होती है। फिर भी इस विविधता तथा भिन्नता के मूल में एक निश्चित पद्धति लक्षित होती है।

ऐतिहासिक पत्रों का संकलन, विभाजन एवम् अध्ययन करके (विशेषतया मराठी भाषी शोधकों ने) पत्रों में होने वाली पद्धति एवम् प्रणाली खोज निकालने का कठिन प्रयत्न किया और कुछ तथ्य वे निकाल सके। उनके अध्ययन और प्राप्त तथ्यों का उपयोग प्रस्तुत अध्ययन में किया गया है।

"इतिहास के साधन रूप होने वाले पत्रों के मुख्यतया दो भेद माने जाते हैं, (१) सरकारी (२) व्यक्ति।" (अ) "सरकारी पत्रों के ७८ विभिन्न प्रकार प्राप्त हुए हैं।" (क) ये विभिन्न प्रकार मुसलमानी काल में प्राप्त थे और परम्परा से ये मुगल तथा मराठा काल में भी विद्यमान थे।" (आ) इन सरकारी पत्रों के सिवा दूसरे व्यक्तिगत अनेक पत्र उपलब्ध हुए हैं। इन पत्रों का अध्ययन अब तक इतिहास की दृष्टि से किया गया है।

सरकारी पत्रों के केवल १८ प्रकार इन पत्रों में मिलते हैं।

ये सभी पत्र (पत्र क्र. ६६ ताम्रपत्र छोड़कर) कागज़ पर लिखे गये हैं। इन विभिन्न पत्रों के कागज़ों का रंग तथा आकार एक दूसरे से भिन्न है। कुछ पत्रों के कागज़ों पर नक्काशी या बेल बूटे मिलते हैं तो कुछ पत्रों पर सुनहरे छोटे ठप्पे हैं।

पद्धति—प्रत्येक पत्र के सामान्यत: चार भाग माने गये हैं।

(१) शीर्षक या सिरनामा (२) प्रारंभ

(३) विषय और (४) अंत।

(१) शीर्षक या सिरनामा :

(अ) पत्र में सब से ऊपर मध्य भाग में मंगल सूचक "श्री" अक्षर लिखा जाता था। प्रस्तुत २०० पत्रों में से १८ पत्रों के ऊपर इस प्रकार का कोई मंगल

(अ) वि. का. राजवाड़े, इतिहास संशोधक मंडल पूना अहवाल शके १८३२ पृ. ६१।

(आ) वि. का. राजवाड़े—इ. सं. मं. पूना अहवाल शके १८३२ पृ. ६८।

(क) साधन—चिकित्सा पृ. १२६।

साधन—चिकित्सा यह ग्रंथ वा. सी. बेंद्रे द्वारा "ऐतिहासिक शोध या खोज करने की पद्धति" इस विषय पर लिखा गया है।

सूचक संकेत नहीं है। इनमें से ७ पत्रों के कागज़ का प्रारंभिक अश फटा था। ६ पत्रों के–जो सरकारी पत्र हैं–प्रारंभ में मुहर मिलती है। शेप ५ पत्रों के प्रारंभ में कुछ भी नहीं लिखा है।

इन १८ पत्रों को छोड़कर शेप पत्रों में से ११ पत्रों के ऊपर "१" अंक लिखा हुआ मिलता है। पत्र के ऊपर लिखे हुए इस १ अंक का विशेष अर्थ माना जाता है। यह अंक मंगल प्रद है।" ब्रह्म एक ही है, वह सत् श्वरूप है। एको हम् वहुस्याम्, सृष्टि की चराचर वस्तुओं की उत्पत्ति का कारण रूप यह एक ही तत्व है।" इस भावना का वह द्योतक माना जाता है। (क)

इन ११ पत्रों के सिवा शेप सभी पत्रों के ऊपर "श्री" अक्षर लिखा गया है। इसका अर्थ निम्न प्रकार माना गया है, "श्री" मंगल सूचक अक्षर है वह ऐश्वर्य का सूचक भी माना जाता है। ओम् स्वस्ति आदि शब्द भी "श्री" के समान मंगल सूचक माने जाते हैं। इनमें से किसी शब्द का उच्चारण या लेखन करके ही शुभ कार्य का प्रारंभ करना आर्य–शिष्ट पद्धति है।" (ख)

पत्र के ऊपर "श्री" अक्षर लिखकर उसके पश्चात् पत्र प्रारंभ करने की प्रथा आज भी प्रचलित है। प्रस्तुत पत्रों के काल में वह प्रथा आवश्यक सी मानी जाती थी। वैयक्तिक पत्रों के अतिरिक्त "कवज, चिट्ठी, याददास्त, सनद, इनाम-पत्र" इत्यादि पत्रों के ऊपर भी "श्री" अक्षर लिखा जाता था।

प्रस्तुत पत्रों में से लगभग ५५ पत्रों के ऊपर केवल "श्री अक्षर" मिलता है। मंगल सूचक "श्री" अक्षर के साथ पूर्व या पश्चात् १ अंक का प्रयोग भी मिलता है। कहीं इनके साथ ० शून्य का प्रयोग भी मिलता है। पत्र के ऊपर "१ श्री" लिखने के ३ उदाहरण मिलते हैं। ८ पत्रो के प्रारम्भ में "श्री १" मिलता है। तथा "श्रीजू १" के दो उदाहरण हैं (प. ५४, १५५)

अनेक पत्रों में "श्री" अक्षर के साथ "रामजू, गोपालजू, राधाकृस्नजू" आदि देवताओं के नाम भी मिलते हैं। "श्री" के साथ राम नाम का उल्लेख "श्रीरामजी" या "श्रीरामजू" ५६ पत्रों में मिलता है। अंक १ के साथ "श्रीराम" नाम का उल्लेख

(क) संकेत कोप पृ. २।

(ख) मराठे कालीन समाज दर्शन पृ. १२८।

१७ पत्रों में मिलता है अंक १ के साथ "श्री गोपाल" का उल्लेख ७ पत्रों में मिलता है। "श्री राधाकृष्ण" का उल्लेख ३ पत्रों के प्रारंभ में मिलता है। इनके सिवा शेष देवताओं के नाम इस प्रकार मिलते हैं, "श्री मोरया, श्री गंगाजी, श्री उमाकान्त, श्री ऊकारश्वरजी (ओंकारेश्वर जी) श्री गनेसजू, श्री गणेशायनमः, श्री वरद, श्री गजानन, श्री क्रस्नायनमः, श्री क्रस्नोजयति इत्यादि।"

इस प्रकार मंगल-प्रद देवता का नाम लिखा जाता था। इस नाम लेखन के पूर्व तथा पश्चात् दो छोटी छोटी रेखाएँ रखी जाती थीं इनका अर्थ "हरिहरों का नामोल्लेख या नामस्मरण" (ड) (ग) माना जाता था।

(आ) पत्र के ऊपर श्री सहित देवता उल्लेख के अनन्तर उसके नीचे कुछ पत्रों में व्यक्तियों के नाम मिलते हैं, उदा०— (पत्र १८—अंतजी पंडत) (प. ४३ श्रीमंत रा. रावसाहिवजू) (प. ५६—श्री राघोजी) (प. ६६ नान्हा) (प. २००—वाजीराव साहेब तथा राज सवाई जैसींवजी)

इस प्रकार पत्र के प्रारंभ में किसी व्यक्ति का नाम लिखने का एक विशेष अर्थ माना जाता है।" किसी व्यक्ति के प्रति बहुत आदर, श्रद्धा या पूज्य भाव प्रकट करना हो तो उस व्यक्ति या देवता का नाम पत्र के बीच में कभी नहीं लिखा जाता। वहाँ (खाली जगह) रिक्त स्थान छोड़ा जाता था और पत्र के ऊपर (श्री ··· ··· के नीचे) उस व्यक्ति या देवता का नाम स्वतंत्र रीति से लिखा जाता था।" (घ)

विशेष आदर प्रकट करने के लिये श्री के साथ ३, ७, १०८ अंकों का प्रयोग किया जाता था। किसके लिए "श्री" का कितनी बार प्रयोग किया जाय इसका संकेत सूत्र भी है। प्रस्तुत पत्रों में सिर्फ दो स्थानों में "श्री" का इस प्रकार प्रयोग मिलता है, उदा०—पत्र क्र० ६५ में जमींदार "चीमनसिंघ" और "सुरति सिंघ" ने "रावसाहिव बाजीराइजी" के पूर्व 'श्री श्री श्री' का प्रयोग पत्र के प्रारंभ में किया है। प.४८ में" गढ़ मुक्तेश्वर से पुरोहित बेनीराम ने पेशवा परिवार की मथुनाबाई का उल्लेख करते समय "श्री ७" का प्रयोग किया है।

(ड) वि. का. राजवाड़े इ. सं. म. पूना अहवाल १८३२ पृ. ६२।
(ग) साधन-चिकित्सा पृ. १२२।
(घ) साधन-चिकित्सा पृ. १४२।

(इ) जिन पत्रों के ऊपर मंगल सूचक "श्री" या १ अंक नहीं है किन्तु मुहर है ऐसे छः पत्र हैं। इनमें से तीन पत्र (प. २४, २५, २६) पेशवा बाजीराव के आज्ञा पत्र हैं। प. २७ कब्ज, प. ३१ टीप तथा प. ५२ सनद हैं।

प. २४, २५, २६, २७ के ऊपर पेशवा बाजीराव की मुहर है जो इस प्रकार है "श्री राजा शाहु नरपति हर्ष नीधान बाजीराव बल्लाल प्रधान।"

प. ३१ पर होनेवाली मुहर पढ़ी नहीं जाती थी।

प. ५२ पर होने वाली मुहर पेशवाओं के सरदार नारो शंकर वाणी की इस प्रकार है-"श्री उमाकांत चरणी तत्पर नारौशंकर निरंतर।"

(ई) जो मूल पत्र की नकल है ऐसे पत्रों के ऊपर दाहिने या बायें कोने में "नकल शब्द लिखा हुआ मिलता है उदा०-प. १२, १६। किन्तु कहीं इस प्रकार के लेखन का अभाव भी रहता है उदा० प. १, ६१ इ०।

(२) पत्र का प्रारंभ

शीर्षक या सिरनामे के पश्चात् पत्र का प्रारंभ शुरू होता है। पत्र छोटा हो अथवा बड़ा बायें हाथ में हाशिया छोड़ा जाता था। अक्षरों के ऊपर होने वाली शि-रो रेखा प्रथम खींची जाती और बाद में अक्षर लिखे जाते थे। प्रथम पंक्ति की यह रेखा कहाँ प्रारम्भ की जाय और कागज में कहां तक खींची जाय इसके भी व्यक्ति के सम्मान तथा व्यवहार के अनुसार नियम थे। ।। "प्रथम पंक्ति की रेखा खींचने के १५ विभिन्न प्रकार और उसके अनुसार सम्मान-व्यवहार लक्षित होते हैं।" (ई) (ड.)

शिवकालीन पत्र व्यवहार में इन नियमों का कड़ाई से पालन होता किन्तु कुछ समय पश्चात ये नियम और उनका व्यवहार ढीला पड़ गया। प्रस्तुत पत्रों के काल में इस प्रकार के कुछ विशेष नियम नहीं लक्षित होते।

(अ) पत्र का प्रारम्भ भी किसी न किसी मंगल सूचक शब्द से होता था। प्रथम पंक्ति को प्रारम्भ करने के पूर्व सामान्यतः हरिहर स्मरण "घोतक २ छोटी-छोटी रेखाएं" ।। खींची जाती थीं और उसके पश्चात् प्रथम पंक्ति को प्रारम्भ किया जाता। इन दो छोटी रेखाओं के बाद "श्री" "सिध श्री" "स्वस्ति श्री" ये अक्षर रहते थे। जिन ५ पत्रों के ऊपर अंक १ या "श्री" अक्षर नहीं मिलता उन पत्रों के प्रारम्भ में कोई न कोई मंगल सूचक शब्द मिलता है। पत्र ३ और ४ के प्रारम्भ में "स्वस्ति श्री" तथा प. ५८ के प्रारम्भ में "सिधि श्री" का प्रयोग मिलता है। केवल प. ३४ जो कि

एक लिखत या लिखतेग है--के प्रारम्भ में सिर्फ ली: (लिखत-लिखतंग) मिलता है। इसे अपवाद मानना ठीक होगा।

पत्रों के प्रारम्भ में ही इस प्रकार भिन्नता के कारण भेद होता है। अत: पत्रों के दो प्रकार माने गये हैं। (१) व्यक्तिगत पत्र (२) सरकारी कामकाज के पत्र।

(१) व्यक्तिगत पत्र—इन पत्रों के प्रारम्भ में पत्र-प्राप्तिकर्ता तथा पत्र-प्रेषक दोनों का उल्लेख मिलता है। प्रथमत: जिस व्यक्ति को पत्र लिखा गया है उसका "आदर, सम्मान, प्रतिष्ठा सूचक बिरुद तथा उपाधि या अधिकार सहित "नाम लिखा जाता था। उदा०—

"राज श्री पंडित दीवान वीठल रावजी "(प. ७)" राजश्री राजकाज धुरंधर श्री मुख्य प्रधान श्री रघुनाथ बाजीराव "(प. १५) "अंखडित लक्ष्मी अलंकृत सदा राजेश्री पंडित अंबोजी प्रधान "(प. ६८) "श्रीमंत महाराजा धिराज महाराज आलीजाह दवलतराव सिंदे बहादुर साहेबजी "(प. १०७)। "श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजराजेन्द्र सवाई प्रीथवीसीगंजी "(प. १२४)। इ.

प्राप्तिकर्ता के नाम के पश्चात "ऐसे" (प. १) "ऐतौ" (४) ऐते (१६) "जोग्य" (८) "येते" (६) "येतान" (११) इत्यादि में से कोई अक्षर लिखा जाता।

इनके पश्चात् पत्र प्रेषक अपना बिरुद, परिचय और नाम लिख देता था, जैसे—"राजश्री राजा सबलसीघ श्री कुंवर नरींदसींघजी "(प. ६८)। "महाराज चेतसिंह बहादुर "(प. १०७)। "श्री पंडित रामचन्द्र गणेशजी वा श्री पंडित बीसाजी कृस्नजी "(प. १२४)" प्रोहत बिजेराम हरद्वार के "(प. ६) इ०।

पत्र प्रेषक के नाम-परिचय के अनन्तर के, केनि केन्य वाच्यो (४) असिर्वाद वाचन्यं (१) बचने (१२४) बाच्यं (२) प्रणाम बंचणा (३) रामराम वाच्यै (७) कोर्नीसात बंचणोजी (१८) निमसकार जैवधारिज्योजी (२२) दंडौत वांचो (३६) का प्रनामु (४२) अनंत नमस्कार विनती (५१) सुमिरन बाँचने (५४) श्री रामजी वाच्य (१३८) तसलीम के सलाम बांचने (६५) आदि प्रयोगों में से कोई प्रयोग किया जाता था।

पत्र में प्राप्त इस प्रकार के शब्द-प्रयोग के आधार पर पत्र प्रेषक तथा प्राप्ति कर्ता के बीच होनेवाले परस्पर सम्बन्ध एवम् सम्मान व्यवहार का स्पष्टीकरण हो जाता था इन प्रयोगों का अध्ययन करने से इनके दो भेद स्पष्ट लक्षित होते हैं, (क) आशीर्वाद

(६) वि. का. राजवाड़े इ. सं. मं. पूना अहवाल शके १८३२ पृ. ६३।
(७) लायन-चिकित्सा पृ. १२३।

सूचक (ख) प्रणाम या नमस्कार सूचक ।

(क) आशीर्वाद सूचक शब्दों का प्रयोग जिन पत्रों में मिलता है उनमें पत्र प्रेषक का स्थान-प्राप्तिकर्ता से श्रेष्ठ दर्जे का माना जाता है । यह श्रेष्ठता या तो राजनैतिक या सामाजिक होती थी ।

राजनैतिक श्रेष्ठता के उदाहरणों में यह देखा जाता है कि पेशवाओं के द्वारा भेजे गये पत्रों में सर्वत्र प्राप्ति कर्ता के लिए आशीर्वाद-सूचक शब्दों का प्रयोग किया गया है । (पेशवा ब्राह्मण कुल के थे अतः सामाजिक श्रेष्ठता का भी अंश उसमें निहित था ।) इसके कतिपय उदाहरण हैं जैसे-पत्र क्र. १, ७७, ११६, १२२, १२५, १७६ १८४, २०७ इ० ।

(आ) कहीं पेशवाओं के श्रेष्ठ ब्राह्मण सेनापति या अधिकारी के द्वारा अन्य व्यक्ति जिसमें राजा लोग भी थे,को लिखे गये पत्रों में आशीर्वाद का प्रयोग मिलता है उदा०-

(अ) (नारोशंकर द्वारा जयपुर के राजा माधोसिंह को लिखा पत्र-११८)

(आ) रामचन्द्र गणेश (कानडे) और विसाजी कृष्ण (बिनीवाले) द्वारा जयपुर नरेश "सवाई प्रीथ्वीसिंह" को लिखे गये पत्र क्र. १२४, १८६)। (इ.) नाना फडणवीस द्वारा जयपुर नरेशों को लिखे गये पत्र क्र. १७५, १६६ इ० ।

(ह) काशी नरेश चेतसिंह के द्वारा, जयपुर के राजा सवाई प्रतापसिंह को लिखा गया पत्र क्र. २०५, और दवलतराव सिंदे को लिखे गये पत्रों में क्र. १०६, १०७, १०८ में आशीर्वाद का उल्लेख मिलता है ।

सामाजिक श्रेष्ठता—के उदाहरणों में प्रधानतया ब्राह्मण, पुरोहित आदि उच्च कुल के विद्वान पंडितों द्वारा पेशवा, राजा अधिकारी या अन्य किसी व्यक्ति को भेजे गये पत्रों में आशीर्वाद का प्रयोग होता था । उदा०-(१) हरद्वार के पुरोहित विजेराम के द्वारा पेशवा नानाजी (बालाजी बाजीराव) को लिखा पत्र क्र. ६ ।

(२) महंत गोवर्धन पुरी जी के पत्र क्र. ८५, ८७ ।

(३) आगरे के चौबे जुगल के द्वारा लिखा पत्र क्र. ६४ इ० ।

सामाजिक दर्जे में श्रेष्ठ वर्ग के तथा संत-महंत लोग अन्य व्यक्तियों के लिए आशीर्वाद सूचक शब्दों का प्रयोग करते थे ।

नमस्कार, प्रणाम शब्दों के द्वारा सामान्यतः समान दर्जे का बोध होता है, अतः ऐसे शब्दों के द्वारा लिखने वालों में श्रेष्ठ कनिष्ठता का अनुमान लगाना कठिन है । सिंधिया, तथा होलकर वहाँ के सरदारों ने जयपुर नरेश तथा अपने समकक्ष सरदारों का आशीर्वाद-सूचक शब्दों से उल्लेखन किया हुआ नहीं मिलता ।

मुजरा, सलाम, वंदगी, रामराम, कोरनिसात शब्दों का प्रयोग अत्यंत अल्प मात्रा में मिलता है उदा० प. ११, १८, ४० इ० ।

इन परस्पर सम्मान-व्यवहार धोतक शब्दों के पश्चात पत्र प्रेषक अपनी ओर से शुभ-कुशल समाचार का निवेदन करता और प्राप्ति कर्ता से शुभ समाचारों की आशा रखता था । प्राय: "यहां के समाचार भले हैं आपके समाचार भले चाहिये ।" इसके समानार्थी वाक्य का प्रयोग लगभग सभी व्यक्तिगत पत्रों में पाया जाता है । किन्तु इन वाक्यों को और इस पद्धति को परंपरागत पद्धति कहना ठीक होगा, इसका प्रमाण यह है कि पत्र ५७, ५८ मृत्यु-समाचार की खबर देने वाले पत्र हैं फिर भी उनके प्रारम्भ में ये वाक्य हैं जैसे– 'हृया के समाचार श्री जी की कृपासों भले हैं आपके समाचार सदा भले चाहिये तो आनंद होई ।" (प. ५७)" श्री पुष्प प्रधानजी के सुख समाचार सदा आरोग्य चाहिये तो हमको प्रेम आनद होए हृया के समाचार श्री. जी की कृपा आपकी महरबानगी सो भले होईगे । "(प. ५८) अत: इनको परपरागत पद्धति ही मानना ठीक होगा ।

सरकारी-कामकाज के पत्र के प्रारम्भ में ही पत्र का प्रकार स्पष्ट कर दिया जाता, जैसे सनद, रुक्का, टीप इ० । प्रत्येक प्रकार का पत्र लिखने की एक विशिष्ट पद्धति होती थी । इस पद्धति का ही अनुसरण प्रत्येक पत्र में किया गया है । अत: इन पत्रों के प्रारंभ के संबंध में सर्वसाधारण अध्ययन प्रस्तुत है ।

(अ) पत्र के प्रारम्भ में पत्र का प्रकार उसके विशेषनाम को लक्षित करके स्पष्ट किया जाता, उदा०–(१) टिप लिखिदेह "(प. १४) । २, "सनधि लिलि दई" (प.१६) । ३ "आग्यापत्र" (प. २४, २५ इ०) । ४ "कवज लिख दयो" (प. २७) ५, "याददास्ति" (प. ३८) । ६० "अर्जदास्ति" (प. ४३,४४) ७, "रुक्का लिखि दयो" (प. ८२) ८, "जमा वासिल" (प. ८८) ।

कभी जिसके द्वारा पत्र लिखा गया है उसका नाम प्रथम और जिसको लिखा है उसका नाम बाद में मिलता है, जैसे–

"आग्यापत्र बाजीराउ मुख्य प्रधान बचनात पटेल मोजे...इ० । (प. २४)

कुछ पत्रों में प्राप्ति कर्ता का नाम प्रथम तथा लेखक का उसके पश्चात रहता है, उदा०–१. "रुक्का लिखि दयौ राज श्री पं० गनपति रावजु को ऐसे...म्हते आसाराम...इ० ।" (प. ८२)

२. "कवज़ लिखि दई श्रीमंत श्री राउ वीसवस राउजू की सरकार मैं हजूर राजश्री पं० श्री वारजु को येते जमादार चौधरी रुपासही ... इ० ।" (प. ८३)

सरकारी कामकाज के पत्रों के प्रारम्भके सम्बन्ध में एक बात उल्लेखनीय है। इनमेंसे महत्वपूर्ण विषयों केपत्रों में मुहर मिलती है। विशेष से सम्बन्धित रूप से आग्यापत्र, सनद सरकारी कवज वसूल का लेख, हुकुम इ० पत्रों में मोहर मिलती है। मुहर छापने का स्थान भी निश्चित रहता था। मंगल सूचक "श्री" इ० के नीचे और पत्र प्रारंभ के ऊपर कागज के मध्य भाग में या हाशियाके निकट बायीं ओर मुहर लगायी जाती और उसके सामने से ही पत्र प्रारंभ कर दिया जाता था जैसे पत्र २४, २५, ३६,४४ इ० ।

जिन पत्रों के प्रारम्भ में मुहर मिलती है उन्हीं पत्रों को पूर्ण करने के पश्चात उसी प्रकार की किन्तु छोटे आकर की विशेष अक्षरों से युक्त मुहर मिलती है। किन्तु यह नियम नहीं कहा जा सकता क्योंकि ऐसे कुछ पत्र जरूर मिलते हैं जिनके सिर्फ ऊपर ही मुहर लगायी गयी हैं। यदि नियम के रूप में देखना है तो कहा जा सकता है कि "जिन पत्रों के अंत में मुहर मिलती है उन पत्रों के प्रारम्भ में मुहर अवश्य मिलेगी।"

इन मुहरों के आकर, उनमें प्राप्त नाम और अक्षर प्रस्तुत पत्रों में यथास्थान देने का प्रयत्न किया गया है। पत्र लेखन-पद्धति के अन्त में मुहरों पर विचार किया गया है।

विषय

पत्र लेखन पद्धति में पत्र का तीसरा भाग विषय महत्वपूर्ण है। विषय प्रतिपादन के लिए ही पत्र का आडंबर रचा जाता है। पत्र पद्धति में होने वाले भाग सिरनामा, प्रारंभ और अन्त एक दृष्टि से परंपरागत नियमों से बन्द है किन्तु विषय के सम्बन्ध में और उसे प्रतिपादन करने की शैली तथा पद्धति में शायद ही कोई नियम बनाया जा सकता है। अतः विषयों की तथा उसे प्रतिपादन करने की पद्धति में विविधता एवम् विभिन्नता लक्षित होती है। चूं कि ये पत्र भिन्न स्थानों से भिन्न व्यक्तियों द्वारा और भिन्न कालों में लिखे गये हैं इनमें विविधता का होना अनिवार्य है। इनमें देश, काल और व्यक्ति की विशेषताएँ स्पष्ट रूप से लक्षित होती हैं। फिर भी इस विविधता में भी कुछ समानता दृष्टिगोचर होती है। जिसके आधार पर विषय प्रतिपादन पद्धति के संम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

विषय प्रतिपादन की दृष्टि से भी इन पत्रों के दो भेद माने जा सकते हैं। (१) सरकारी कामकाज के पत्र (२) व्यक्तिगत पत्र। सरकारी कागज पत्रों के विषय

प्रतिपादन में हर एक प्रकार के पत्रों की अपनी एक विशेष पद्धति है और उसी के अनुसार पत्र का विषय-प्रतिपादन है। पत्रों को देखने से वह पद्धति स्पष्ट होती है। उदा०—आग्यापत्र······अप्रच फौज का मुकाम नजीक आया है सो तुम खातर जमा से मीलने कु आवजो।" (प. २४)

टिप लिखि देह······रुपये ६००१) रुपये साठ हजार एक फागुन के महिने में हजुर पुनामे पहुँचाई देह···।" (प. १४)।

"कबुली अति लिखि देई···माँ सेमरी की रुपीया पांन से ५००) पान से भरि देइ किस्तिनि बमुजब भरि देइ गाउ बसा वै गढ़ी में बैठेजु ता वे गाउ की आबादानी करे···।" (प. ८४)

कहीं इनमें थोड़ा सा परिवर्तन रहता है किन्तु अधिकतर पत्रों में परंपरागत आयी हुई उसी-पत्र प्रकार की पद्धति का अनुसरण ही मिलता है।

विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से व्यक्तिगत पत्र महत्वपूर्ण हैं। अतः विशेष रूप से उनका ही अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

विषय विवेचन की सर्वप्रथम विशेषता यह है कि पत्र लेखन का कारण इसमें स्पष्ट रहता है। ये कारण भिन्न भिन्न रहते हैं और इन भिन्न कारणों से ही विषय प्रतिपादन मे विभिन्न एवम् विविधता आ जाती है अतः इसके मूल में होने वाले पत्र के भिन्न उपदेश देते जाते हैं।

(१) कभी बहुत दिनों से कुशल समाचार प्राप्त नहीं हो सके अतः उनके लिए पत्र लिखे गये हैं उदा०—"आपर अपनी पाती समाचार पावे बौहत दिन भये है सु हमनलिखत राहबो और इहांहकीकति श्री प्रधान आसराम कहे जाहिर हुई··।"(प.३२)

(२) कभी कोई कार्य करने की विनती, सूचना या आज्ञा के कारण पत्र लिखा जाता है। इनमें धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवम् राजनैतिक कार्य भी होते हैं।

धार्मिक—"श्री गंगाजल निर्मल की कावरै पथेली महाप्रसाद की···हाथ पठाई है सो माथे चढ़ाई लीजोजी···।" (प. ६)

"राजश्री जुगल जी बीन मदसुदन चोबे वस्ती क्षेत्र मथुरा ईनको धर्मादाय रु. ६७५) ···· करार कर दीया है सो पावगे ··· ··· चोबे मजकुर को साल–ब–

साल नीमे खरीफ नीमे रब्री दो हकेसो सदरह पावगे दसतो पोहचावणा ··· ।"
(प. ६६)

(आ) सांस्कृतिक—"अपरंच मकर संक्रात के तिल शरकरायुक्त ··· कीये हैं सो कृपा करके कबूल फरमाईयेगा ··· ।" (प. १०७)

"श्री पोखर का कातिक में मेला हमेशा सौं भरता आया है··· ताकीद करवाए के मेल्याको वेपारी उगैरेह आवे सो करावमी ।"

(इ) सामाजिक—"उत्तम चंद के कबीला मानस जैपुर में है सो दुकान के हिसाब की बाकी साहुकार को देते नहीं बदमांमली करत है ··· ताकीद करि वाजवी रुपय्या ··· राज दिवाय देस्गे ।" (प. १४०)

"दीछीत जी की कनिष्ट भार्जा दुर्गाबाई के पास गहणो जेवर था सो पुत्र ने सीन लीय है अवर दुर्गाबाईकुं खाणकु देते नहि. तो आपने दीछीत के पुत्र तथा पोताकु ताकीद करके ··· दीलवाना ··· ।" (प. ३०)

(ई) राजनैतिक "हमदानी ने मिरजा साफीखां को दगा कीया इस वास्ते राजश्री अंबाजी के साथ फौज व पलटने देइ हमदानी तंबी खातरि भेजा है सो राज अपने जमियत सुधाइ गले मसारनिलेनें सांमिल होई हमदानी का पारपत करैगे. ।" (प. १३६)

"राजने हमारे त्रफ सांवर दीनी है सो आजताई सांत्रू वारे आमिल थानो खाली कर देते नही है ··· आमिल को ताकीद करवायके जगा हमारे मुकारदार के हवाली करवाय देना राजकौ जोग्य है ।" (प. १३९)

(३) कभी अपने किसी अन्य का परिमार्जन करने के लिए तो कभी शिकायत पेश करने के लिए पत्र लिखा गया है, उदा०—

"हमारी ये जिमीदारी छुड़ावत है तो विन हजूर की सनदं हम छोड़न वाले नाही पैमा देवे को त्यार हैं ··· अरजकरि है सरकार के हुकम ते जुदे नाही ··· ।"
(प. ३६)

" ··· राजभर कोऊ वेउतन नाही भयो सुहम वे उतन भये वैठे है खाख में पड़े हैं जु हमको खाख में से उठे करवो तो हम ठाड़े होत हैं ··· ।" (प. ४७)

(४) कभी पत्र का विषय मृत्यु समाचार का निर्देश है—उदा०—

" ··· राजा गोपाल सिंघ जी ··· देवलोक को पधारे श्री भगवानने चाह्यो सु कियो माया ईस्वर की है ··· या वात पैं सवही दुख पाइ रहे हैं ··· ।" (प. ५७)

"... महादजी सींदे या केताइत पको आजार होय माह सुदि १३ के रात परलोक परापत हुवो इ बात की खबर अटे आइसो सुण जीव को वड़ो सोच हुवो सो कटानाइ लिखा ... ।" (प. २०४)

(५) कहीं राजनीति और इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रसंग तथा घटना का वर्णन और खबर का कथन पत्र का विषय है उदा०—"पातशाहजी मे मुलाजमत कर पूस सुदि २ को दिल्ली तखत पर बिठलाया ...।" (प. १२६)

"नवल सिंग जाट की ओर म्हाकी लड़ाई भई ... जाटने सिकस्त खाई ... नवलसींग वा ओर सीरदार पावसे भाग के डीग में गये ... फौज बौहोत सारी गई ... खुसी की हकीकति मालुम होना सबब लीखी है।" (प. १२४)

"नवाब निजाम आलीखान बहादुर के उपर मोहिम दर पेश होके महाराज श्रीमत पेशवा साहिब की सवारी वने सरदारा कंपू तोफखाने समेत पुनासु बाहेर निकसी ... नवाब सिकस्तमां के पीछे हट गये ... रातकु नवाब भागके खरडाको कीला वो असरा लेके जाके रहे हैं सरकार की फते हुई ... फतेके खुसी की राजकु मालूम हुवा वास्ते लीखी है ... ।" (प. १५१)

"गारदीयांने तलब के वासते रावसाहिब के हजुर हंगामा कीया ... तलवार चलाई सो रावसाहिब नरायन रावजी देवलोक पधा–या ... हमारे वा राजके टेठसुं नजीव को व्योहार छे तीसुं मुजसिल लीखबामें आइ ... ।" (प. १६०)

इन प्रसंगों के अलावा कितने ही सामान्य या तत्कालीन प्रसंगों का जिक्र पत्रों के विषय प्रतिपादन में हुआ है। कहीं कहीं मुख्य विषय के प्रतिपादन के अनन्तर किसी समयोचित बात का उल्लेख भी मिलता है।

इन सभी पत्रों से यह स्पष्ट होता है कि खानगी व्यक्तिगत पत्रों की आत्मा "पत्र का विषय" अत्यंत स्पष्टता से निवेदित किया गया है।

(४) पत्र का अंत

पत्र-लेखन पद्धति में प्रारम्भ के समान ही पत्र का अंत महत्वपूर्ण एवन् अध्ययनीय है। पत्र के इस अंतिम विभाग के चार हिस्से या भाग होते हैं।

(१) प्रार्थना या सूचक (२) मिति या तारीख तथा स्थान
(३) मुहर (४) निशानी

सरकारी कामकाज के पत्रों में पत्र के अंतिम विभाग के सम्बन्ध में विविधता लक्षित होती है। पत्र प्रकार के अनुसार पत्र का विषय और उसकी रचना होती और

उसके अनुसार उसका अंतिम भाग होता फिर भी सामान्यतः उनको व्यक्तिगत पत्रों के साथ ही लेकर उसका अध्ययन किया गया है। जहाँ कहीं विशेपता है वहाँ उसका उल्लेख किया गया है।

(१) प्रार्थना या सूचना : व्यक्तिगत पत्रों के विषय प्रतिपादन के अनन्तर सामान्यतः श्रेष्ठ व्यक्तियों को प्रार्थना एवम् समान या कनिष्ठ दर्जे के व्यक्ति को सूचना दी जाती है अधिकतर पत्रों में पत्र-समाचार भेजने का उल्लेख रहता है उदा०— समाचार हमेस लिखत रहिवी।" (प. ४)

"पाती समाचार हमेस लिखाउत रहिवी" (प. ७०)

"हमेशा कृपा पत्र भेज के याद फरमाया कीजियेगा।" (प. १०७)

"हमेशा कागज समाचार लिखावत रहोळा।" (प. १ ४)

यदि किसी मत या सूचना की प्रतीक्षा है तो उसका उल्लेख इसके साथ रहता है। कभी अपनी ओर से कोई सूचना दी जाती है। उदा०—"कीर (भीर) की विदा कराइवी।" (प. ८)

"जब इहां वांमु आई लगे तब भली फौजसो आइ सामिल होई।" (प. १२)

"जो हुकुम होई सो करें।" (प. ४२)

"खास असवागी हिंदुस्थान मा आवती हैं तुम मीलवा आवजो मीलवा पाछे सब बात की दुरस्ताई हो जासी।" (प. ७७)

"म्हाकि तरफ से कोउ बातको उसवास कहि न–हे को न जाणजो।" (प. ११७)

"ठग के साथ आदमी देइ लसकर पौहच्याय देउगे।" (प. १३५)

"आव दीन व दीन स्नेह वढ़े सो प्रकार हुवा चहीये।" (प. १७७)

(२) मिति–तारीख

इन सूचनाओं के अनन्तर पत्र या कागज की मिति रहती है। उस समय की लेखन पद्धति की यह विशेपता मानी जा सकती है कि पत्र की मिति आज के समान पत्र के प्रारम्भ में नहीं लिखी जाती तो पत्र के अंत में ही लिखी जाती थी।

(अ) मिति या तारीख लिखने की भी विशेप पद्धति होती है। प्रथम मास का नाम लिखा जाता।

द्वितीय पखवाड़े या पक्ष का नाम। उसके पश्चात तिथि, वार और अंत में "संवत" लिखकर उसके आगे संवत् की संख्या अंकों में लिखी जाती थी। उदा०— 'मिति सावन सुदि १५ संवत १८४५।" (प. १४४)

मिति या तारीख का प्रारम्भ, कभी मिति (प. १४५) मिती (प. ७) मीती (प. ३४) अक्षरों से तो कभी संक्षेप से मि. (प. ४१) मी. (प. १६) संक्षेप से ता. (प. २०) लिखा हुआ मिलता है।

अनेक पत्रों में इस प्रकार के अक्षरों के बिना सीधे मास से लिखना प्रारम्भ किया जाता। उदा०—"अस्वन सुदि २ सं १८२४ " (प. ५२)

"चैत सुदि संवतु १७६८।" (प. ५५)

कभी संवत के स्थान पर संक्षेप से सं. (प. ५२) लिखा जाता। कभी "सं" या "स" लिखकर उसके आगे दो छोटी रेखाएँ रहतीं जैसे—"स ॥ १८४२। " (प. १४१) "सं॥ १८४८।" (प. १४६)

जिस साल में कोई अधिक मास रहता तब उसका उल्लेख भी मास के पूर्व दुति या द्वि इत्यादि अक्षरों से किया जाता था। उदा०—"दुति सावन सुदि ··· (प. ७१) " दुती चैत ··· स १८२३।" (प. ७०)

द्वि सावन ··· सं १८२५। (प. ४६) इत्यादि।

हिन्दू पद्धति के अनुसार इस प्रकार मिति का उल्लेख अनेक पत्रों में मिलता है। किन्तु इस पद्धति के साथ ही मुसलमानी पद्धति से लिखी हुई तारीख भी मिलती है। किन्तु तारीख लिखने की पद्धति में प्रथम तारीख, उसके बाद माह और उसके बाद साल लिखा जाता था। उदा०—" ता। १५ साबान—।" (प. ३३) " २४ मा. जीहीज सन ११६६ फसली।" (प. १८)। "ता. २० मा. जीलहेज सन ११६८।" (प. २०)

कहीं संवत् का नाम भी लिखा हुआ मिलता है उदा०—"बिजय नम संवत्सरे।" (प. १४) "क्रोंकहू संत १८१०।" (प. ४२)।

कुछ पत्रों में हिन्दू तथा मुसलमानी दोनों पद्धतियों के अनुसार लिखी हुई मिति मिलती है, उदा०—"फाग वद १ संमत १७६० । छ १३ रमजान।" (प. २७) "मार्ग वदि २ सुके १७ रजब सन तीसा मीतेन।" (प. ३६)।' "मार्ग वदि १० सं. १८२४ छ २३ जमादिलाग्वर समान सीतेन मया अलफ।" (प. ४८)।

कहीं संवत्सरे के साथ शक पद्धति का भी उल्लेख मिलता है, उदा०—संवत् १८३० साके १६६५।" (प. १४)

पत्र में मिती या तारीख लिखने के पश्चात् स्थान भी लिखा जाता था। कतिपय पत्रों में स्थान का उल्लेख प्राप्त है, उदा० — "मुकाम सिथगवा।" (प. ५०) मु. परना (प. १०१) मुकाम पुना (प. १२६) मु. उजेन (प. १३४) इत्यादि।

किन्तु उसे नियम नहीं माना जाता। यदि सभी पत्रों में स्थान का उल्लेख रहता तो अध्ययन की दृष्टि से वह बात विशेष महत्वपूर्ण होती।

(३) मुहर : कई पत्रों में मिति लिखने के पश्चात् मुहर मिलती है। सामान्यतः पत्र के अन्त में मिलने वाली मुहर उसी आकार की और छोटी रहती है जैसे कि पत्र के प्रारम्भ में होने वाली। सामान्यतः उन्ही पत्रों के अन्त में मुहर मिलती है जिनके प्रारम्भ में मुहर हो। अन्त में होने वाले इन सिक्कों में प्रायः निम्नलिखित अक्षर मिलते हैं, "सही" (प. ४) "लेखन सिमा" (स. २४, २५, २६, २७) 'मोर्तबसुद" (प. ५२, ८६)

सामान्यतः सरकारी महत्वपूर्ण पत्रों में ही मुहरों का प्रयोग मिलता है।

पत्रों में प्राप्त इन मुहरों या सिक्कों के सम्बन्ध में कुछ स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। इस विषय के सम्बन्ध में मराठी में साहिय और लेख मिलते हैं उनका आकार उपयुक्त है एवम् विश्वसनीय है।

(१) "कोई भी व्यक्ति या अधिकारी राजा की अनुमति के विना मुहर का प्रयोग नहीं कर सकता था।" (क)

(२) बड़े अधिकारी, सेनापति, सूबेदार इत्यादि सरकारी अधिकारी व्यक्तियों को मुहर रखने की अनुमति दी जाती थी।

(३) मुहर रखने का अधिकारी व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार मुहर का आकार तथा उसमें अपना नाम रखता था। सामान्यतः इसी छोटे आकार की मुहर पत्र के अंत में रहती थी।

(४) जिस पत्र के द्वारा आज्ञा या हुक्म फरमाया जाता ऐसे पत्रों के प्रारम्भ में तथा अंत में मुहर रहती थी (लगायी जाती थी)। खानगी पत्रों पर मुहर नहीं लगायी जाती थी।

(५) पिता या उसी के समकक्ष व्यक्ति की मृत्यु के अनन्तर नये अनुज्ञा प्राप्त होने तक एक पुरानी मुहर का ही प्रयोग किया जाता था।

(क) साधन-चिकित्सा पृ. १४५।

(६) मुहरें, धातु में अक्षर काटकर (खोदकर) बनायी जाती थीं। अक्षरों के साथ विशिष्ट चिन्ह या नक्काशी रहती थी। लिखने की स्याही लगाकर ही मोहर की छाप लगाई जाती अतः खोदे हुए अक्षर सफेद और शेष भाग काला रहता था। स्याही फैल जाने से या अक्षर चिन्ह इत्यादि में स्याही भर जाने से अनेक बार छापे हुए अक्षर अस्पष्ट रहते थे। मोहरें खास व्यक्ति के अधिकार में रहती थीं अतः गहनों के समान उनकी हिफाजत से रक्षा की जाती। पत्रों पर मोहर करने का काम सिक्कानवीस के द्वारा होता था।"[ख]

(४) पत्र का अन्तिम हिस्सा निशानी है।

लिखा हुआ तथा प्राप्त पत्र अधिकृत और प्रामाणिक है यह जानने के लिये पत्र के अन्त में या कभी-कभी पत्र के प्रारम्भ में भी पत्र प्रेषक अपनी खास निशानी करता था। इस निशानी के आधार पर ही जाली नहीं तो प्रामाणिक है यह जाना जाता था। यह निशानी संकेत रूप में होती थी।

पत्र के प्रारम्भ में होने वाला १ अंक लिखने की विशिष्ट पद्धति निशानी का एक प्रकार माना जाता। कभी पत्र के ऊपर विशेष पद्धति के अनुसार "सही" ये अक्षर रहते जो निशानी मानी जाती।

पत्र के अन्त में भिन्न अक्षरों के आकारों में मिति लिखी जाती थी या कभी पत्र का अन्तिम वाक्य भी इसी प्रकार लिखा जाता जो पत्र प्रेषक की खुद की लिखावट होती थी। यह भी प्रामाणिकता की निशानी मानी जाती।

मराठों के द्वारा भेजे गये अनेक पत्रों में निशानी के रूप मोडी में लिखा था। इसके भिन्न रूप प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त होते हैं उदाहरण के तौर पर कुछ दिये जाते हैं।

(१) कुछ पत्रों में "जाणिजे" अक्षर मिलते हैं उदाहरण—पत्र ३६, ११७।

(२) कुछ पत्रों में "बहुत काय लिहिणे" लेख मिलता है। पत्र १२२, १२३, १२५, १२८।

(३) कहीं मोडी लिपि में "जाणीजे" लिखकर उसके पश्चात् मुसलमानी पद्धति के अनुसार तारीख लिखी जाती जो निशानी मानी जाती थी, उदाहरण–पत्र ४४, ५२, ११७।

(ख) साधन–चिकित्सा पृ. १४६, १४७।

(४) कहीं मोडी में कुछ अन्य लेख भी मिलते हैं उदाहरण—पत्र ७२, ८६, ८९, ९७।

(५) कुछ पत्रों में मराठी पद्धति के अनुसार 'बहुत का लीखे आशीर्वाद'' लेख मिलता है। उदाहरण—पत्र १०६, १०७, १०८।

पत्र को मिति, मुहर, निशानी इत्यादि लिखकर पूर्ण करने के पश्चात् यदि कोई खबर या सूचना देनी होती तो उसे वैसे ही जोड़ा जाता उसके लिए पुनश्च या ताजा कलम नहीं लिखा जाता उदाहरण—(क) प. १८ में कुछ व्यक्तियों को ''सलाम और रामराम वचनोजी'' लिखा है। (ख) प. २१ में कागज के पीछे अतिरिक्त खबर लिखी गयी है। (ग) प. ५३ में मजकूर और रामराम लिखा है।

पत्र लेखन पद्धति की विशेषताएँ :

(१) पत्र के प्रारम्भ में मंगल सूचक चिन्ह का प्रयोग किया गया है।

(२) प्रत्येक पत्र के बायीं ओर हाशिया छोड़ा गया है।

(३) सरकारी अधिकृत पत्रों के ऊपर तथा अन्त में मुहर का प्रयोग किया गया है।

(४) पत्र लेखक तथा प्राप्तिकर्ता का स्पष्ट उल्लेख पत्रों में मिलता है।

(५) नकल छोड़कर लगभग प्रत्येक पत्र में पत्र की मिति या तारीख पत्र के अन्त में मिलती है।

(६) कतिपय पत्रों में स्थान का उल्लेख भी मिलता है।

(७) मृत्यु का समाचार देने वाले पत्रों को लिखने की कोई विशेष पद्धति नहीं लक्षित होती। न कहीं काली चौकट नजर आती।

(८) विवाह इत्यादि मंगल समारोह के पत्रों पर हलदी-कुंकम के छींटे रहते थे।

(९) राजाओं से भेजे गये कुछ पत्रों के कागज सुनहरी नक्काशी तथा सुनहरे छोटे ठप्पों से युक्त थे।

(१०) सभी पत्र काली स्याही से ही लिखे गये हैं।

(११) पत्र लिखते समय प्रथम पूरी शिरा रेखा खींची जाती और बाद में अक्षर लिखे जाते।

(१२) दो शब्दों को अलग करने के लिए कहीं भी अन्तर छोड़ा हुआ नहीं मिलता।

(१३) पत्र को न तो परिच्छेदों में न वाक्यों में विभक्त किया गया है।

(१४) पत्र अधिकृत एवम् प्रामाणिक माना जाये इसलिए उस पर खास निशानी की जाती थी।

(१५) जिसके साथ पत्र भेजा जाता उस व्यक्ति का नाम पत्रों में लिखा जाता था किन्तु यह नियम नहीं माना जा सकता।

(१६) पत्र का पृष्ठ लेख से भर जाये तो हाशिये में आशय लिखा जाता यदि और लिखना बाकी हो तो कागज की दूसरी ओर भी लिखा जाता था।

(१७) पत्र लिखकर पूर्ण करने के अनंतर यदि कुछ लिखना हो तो उसे किसी विशेष सकेत के सिवा जोड़ा जाता था।

डाक–व्यवस्था

भारत में १८ वीं शती का काल समाज-जीवन तथा राज शासन की दृष्टि से अस्थिरता से भरा हुआ था। इस काल में यातायात, व्यापार व्यवहार की अस्थिरता तथा असुरक्षितता से युक्त था। अत: उस समय पत्र भेजना एवम् दूर से पत्र प्राप्त करना एक कठिन समस्या थी। फिर भी सामाजिक से भी अधिक आर्थिक तथा राजनैतिक एवम् शासकीय कार्य में परस्पर पत्र-व्यवहार की नितान्त आवश्यकता थी। इस आवश्यकता को पूर्ण करने की योजना तथा व्यवस्था की जाती थी। इसमें अनेक कठिनाइयाँ और संकट आ जाते उन्हें देखकर उनमें से रास्ता निकालने का प्रयत्न किया जाता था और शासन की यह आवश्यकता पूर्ण की जाती थी।

उस समय की डाक–व्यवस्था,पत्र भेजने की पद्धति, डाकियों का काम करने वाले पत्र-वाहक, उनका कार्य आदि का विवेचन यहाँ किया गया है।

आज की डाक-व्यवस्था और १८ वीं शती की डाक–व्यवस्था में बहुत अंतर है। आज डाक-व्यवस्था सरकार की व्यवस्था है और उसकी जिम्मेदारी सरकार की है। किन्तु उस समय डाक की व्यवस्था पूर्ण रीति से खानगी बात थी। समाज विकास के साथ सामाजिक आवश्यकताएँ बढ़ती हैं। उपरोक्त काल में पत्र लेखन एवम् डाक योजना समाज की आवाश्यकता न थी। किन्तु आज यह समाज जीवन तथा शासन व्यवस्था का एक आवश्यक अंग बन गया है। तत्कालीन समाज जीवन शादी-विवाह के द्वारा पारिवारिक सम्बन्ध पास पड़ोस के देहातों, कस्बों में प्रस्थापित किये जाते थे न कि दूर प्रांतों में। साथ ही व्यक्तिगत प्रतिदिन व्यवहार में दूरस्थ संस्था, तथा अधिकारियों से सम्बन्ध स्थापित करने की आवश्यकता नहीं थी अत: पत्र लिखने और भे-

जने की न कोई विशेष आवश्यकता थी न योजना बनाने की। प्रत्यक्ष व्यवहार में होने वाले संदेश पहुँचाने का कार्य विश्वासी दूतों द्वारा किया जाता था।

उपरोक्त काल में डाक की योजना या व्यवस्था राज शासन या साहूकारों के आर्थिक व्यवहार के लिये आवश्यक थी। इन दोनों के व्यवहार परस्पर भिन्न होने से इन्होंने अपने लिए अलग डाक-व्यवस्था बनायी। उस समय साहूकार एक "संस्था" थी और आजके (बैंक) बैंक के कार्य साहूकारों के द्वारा चलते थे अतः समाज जीवन तथा शासन में उनका विशेष महत्व था। गरीब किसानों से लेकर बड़े-बड़े सरदार, राजा महाराजा या अधिकारी आवश्यकता पड़ने पर इन साहूकारों से कर्ज लिया करते थे। इनकी दुकानें ("पेढ़ी" मराठी शब्द) दूर प्रांतों में थीं और उनके द्वारा पैसों का व्यवहार होता था। एक दृष्टि से सुचारु रूप से आर्थिक व्यवहार करने वाली यह अन्तर प्रान्तीय संस्था थी। अतः उन्हें अपना स्वतंत्र पत्र व्यवहार और डाक-व्यवस्था करने की आवश्यकता थी।

दूसरी ओर राज्य शासन में हर समय पत्र, खत, आज्ञाएँ भेजने की आवश्यकता रहती अतः शासन कर्ता अपनी ओर से इनके लिए कोई व्यवस्था करता। हर एक राजा अपने राज्य में तथा आवश्यकता पड़ने पर दूसरे प्रान्त से पत्र व्यवहार करता और उसके लिए अपनी खास व्यवस्था करता। प्रधानतः इन कारणों से उपरोक्त काल में डाक-व्यवस्था की आवश्यकता और योजना हुई।

तत्कालीन डाक व्यवस्था में दो बातें उल्लेखनीय हैं। प्रथम यह कि यह व्यवस्था "नैमित्तिक" थी और द्वितीय स्थान की दृष्टि से "स्थल-मर्यादित" थी। (क) जब राजकर्ता को आवश्यकता होती तब वह अपने हरकारे, सवार कासिद इत्यादि भेजकर उनके द्वारा पत्र या आज्ञाएँ भेजते थे। जब साहूकार चाहता या उसको आवश्यकता पड़ती तब वह अपने कासिद या सवार भेज देता। (२) इन दोनों राजा या शासन कर्ता तथा "साहूकार संस्था" का कार्य निश्चित तथा मर्यादित होने के कारण यह व्यवस्था स्थान की दृष्टि से मर्यादित थी। (३) परिस्थिति तथा प्रसंग विशेष के कारण इस डाक-व्यवस्था में परिवर्तन होता था। शांति के दिनों में शासक या साहूकारों की डाक-व्यवस्था में कोई अंतर नहीं रहता किन्तु लड़ाई के दिनों में शासकों को एक स्वतंत्र एवम् विशेष व्यवस्था बनानी पड़ती थी।

(क) मराठे कालीन समाज दर्शन पृ. १५७।

इस व्यवस्था को 'डाक बिठाना"[1] कहा जाता था। इस व्यवस्था का कार्य निम्नलिखित पद्धति से चलता था। जिस स्थान से पत्र भेजा जाता और जिस स्थान पर पहुँचना जरूरी था उन दो स्थानों के बीच फासले के हिसाब से चौकियाँ बनायी जाती। पत्र लेजाने वाला कासिद एक चौकी तक जाता और उस चौकीपर होनेवाले अधिकृत नियुक्त कासिद को खत, पत्र या थैली देता। कभी उससे खत-पत्र ले जाता। चौकियों में होनेवाला अंतर सामान्यत: १० कोस का होता था। (क) प्राप्त पत्र बिना किसी रुकावट अगली चौकी पर भेज दिये जाते थे। यदि इस डाक व्यवस्था में किसी दूसरे राजा का प्रदेश रहता तो उसकी ओर से सहायता एवम् सुविधा प्राप्त की जाती थी। लड़ाई के समय होनेवाले धोखों तथा खतरों को ध्यान में रखकर ही डाक की व्यवस्था की जाती। यह विशेष व्यवस्था लड़ाई या आतंक के काल में बनायी जाती और लड़ाई खत्म होते या शाँति स्थापित होते ही यह व्यवस्था बंद कर दी जाती।

डाक-व्यवस्था में महत्वपूर्ण कार्य करनेवाला अंग कासिद था। इन कासिदों के भिन्न नाम तथा उनके भिन्न वर्ग और श्रेणियाँ उपलब्ध होती हैं। कासिद, हरकारा, राऊत, पियादा, स्मानगीदाम, जथेदार और जासूस।" (ख) ये उनके नाम प्राप्त होते हैं। कासिदों के दो वर्ग थे। प्रथम सरकार, कचहरी, कारखाने और साहूकारों के कासिद और द्वितीय कासिदों का धंधा करनेवाले कासिद। प्रथम प्रकार के कासिदों की नियुक्ति होती थी। यह नियुक्ति अधिकारी या साहूकार करता था। दूसरे प्रकार के कासिदों का एक अलग वर्ग था। उस समय डाक कार्य के लिए अपने कासिद या हरकारे रखनेवाले ठेकेदार थे उन्हें "जथेदार" कहा जाता था। ये जथेदार जिसे चाहते उसे किराये पर हरकारे देते थे और उसके बदले में पैसा लेते थे। कभी कभी शासन के अधिकारी भी इस व्यवस्था का लाभ उठाते थे। (प. २४, २५) इ०।

---

१. लड़ाई के दिनों में निर्माण इस खास व्यवस्था में चौकियां बनायी जाती थीं और इन पर पहरा रखा जाता। युद्धकाल में निर्माण इस खास व्यवस्था को "डाक बिठाना" कहा जाता था। पत्र क्र. २०१ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

(क) मराठे कालीन समाज दर्शन पृ. १५७।

(ख) मराठे कालीन समाज दर्शन पृ. १५३।

(ग) मराठे कालीन समाज दर्शन पृ. १५३।

क़ासिद सामान्यतः पदाति थे। इनके सिवा घुड़ सवार और ऊँटनी सवार कासिद होते थे। कासिद का अर्थ कासिद-जोड़ी लिया जाता था। और ये दो व्यक्ति साथ साथ जाते थे।

इन कासिदों के साथ जो पत्र भेजे जाते थे उनके भी नाम भिन्न प्रकार लक्षित होते हैं जैसे थैली, "खरीता, चिट्ठी, पत्र, कागद, याद इत्यादि" सम्मान और आवश्यकता के अनुसार इनका उपयोग किया जाता था। श्रेष्ठ व्यक्ति या अधिकारी को सम्मानपूर्वक भेजते समय थैली का ही उपयोग किया जाता था। श्रेष्ठता की श्रेणी के अनुसार थैली के कपड़ों में भी फर्क रहता था। थैली के बाद लिफाफे का उपयोग किया जाता था। इस बड़े लिफ़ाफे में लिखे हुए कागज-पत्र रखे जाते और लिफ़ाफे को बंद करके उस पर मुहर की जाती थी। इन दो के अलावा चिट्ठी, पत्र, रुका, याद, कबज इत्यादि के सामान्य प्रकार हैं।

पत्र ले जाने वाले क़ासिदों के साथ कभी ज़बानी खबर दी जाती थी उनके साथ कोई व्यक्ति भेजा जाता जिसके नाम का जिक्र पत्र में रहता। यह व्यक्ति महत्वपूर्ण खबर, जो पत्र में लिखी नहीं जाती, मौखिक रूप से प्रकट करता और उसके लिये मौखिक रूप से उत्तर ले जाता। इस व्यवस्था में व्यक्तिगत विश्वास सबसे महत्वपूर्ण बात थी। इसका उल्लेख प्रस्तुत अनेक पत्रों में मिलता है।

तत्कालीन डाक-व्यवस्था में कासिद ही महत्वपूर्ण बिंदु था। गुण श्रेष्ठता के अनुसार कासिदों के श्रेष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ वर्ग माने जाते थे। लगभग सभी कासिदों के लिए खासकर श्रेष्ठ और मध्यम वर्ग के कासिदों-जासूसों के लिए भिन्न-भिन्न भाषाओं और लिपियों का ज्ञान, भिन्न भेष धारण करने की कला, चतुरता और सुदृढ़ शरीर की आवश्यकता थी। खास कासिदों को पत्र ले जाने-ले आने के कार्य के साथ जासूसी का कार्य भी करना पड़ता। कासिदों का कार्य खतरों से भरा हुआ रहता था। उन्हें चोर, बटमार, शत्रुपक्ष के भेदिये या अन्य लोगों से जान का खतरा रहता था। युद्ध काल में सबसे अधिक और सर्व प्रथम संकट इन पर आता था। शत्रु के हाथों में पड़ने वाले कासिद-जासूसों को कैद किया जाता, उनकी हत्या की जाती, क्वचित प्रसंग में उन्हें तोपों से भी उड़ाया जाता। (ग) इसके विपरीत महत्वपूर्ण या खुश खबर ले आने वाले कासिदो को इनाम भी मिलता था। इन

(ग) मराठे कालीन समाज दर्शन पृ. १५८।

कासिदों के कारण होने वाला खर्च दूसरे पक्ष को देना पड़ता। इन सभी बातों से यह लक्षित होता है कि उस समय की डाक-व्यवस्था में कासिद-पद्धति का विशेष महत्व था। कासिद की प्रामाणिकता, सचाई, निष्ठा पर ही शासन या कार्य की सफलता-विफलता, उन्नति-अवनति, अवलंबित थी। उस समय की डाक-व्यवस्था एक नैमित्तिक, सीमित, स्वतंत्र व्यवस्था थी। आज के समान जन समाज के लिए बनी शासन की आवश्यकता नहीं थी।

प्रस्तुत पत्रों के काल में "डाक-व्यवस्था" की उपरोक्त पद्धति प्रचलित थी; "कासीद जाड़ी भेजना", मुख जबानी कहना" जिसके साथ पत्र भेजा है उसका नामोल्लेख करना" इत्यादि बातें उदाहरण के तौर पर पत्रों में लिखी हुई मिलती हैं। "......के सवार भेजे ... है उनको रु. दीजो"

"अपणे तरफ के तालुका दारां कु ताकीद पोहचाय कासीदोकु कोइ मुजाहीम न होवे " " कासीदो की डाक बीठलाई है" "कासीदो के लार आपणे आदमी देकर आप आपणी हदपार कर देवे" इत्यादि उल्लेखों से तत्कालीन डाक-व्यवस्था का परिचय मिलता है और उपरोक्त डाक-व्यवस्था की पद्धति ही पत्र के काल में प्रचलित होने का अनुमान लगाया जाता है।

❋ आठवाँ अध्याय ❋

आठवाँ अध्याय

प्रस्तुत पत्रों में प्राप्त ऐतिहासिक तथ्य

"इतिहास एक विज्ञान है जो कि स्थान तथा काल से मर्यादित मानव समूह के द्वारा मनुष्य मात्र के विकास में प्रयुक्त व्यक्तिगत एवम् समष्टिगत कार्य-व्यापारों की खोज करके उसमें प्राप्त तथ्यों एवम् निष्कर्षों का उद्घाटन करता है।" (क)

इतिहास विज्ञान होने के कारण उसकी रचना में प्रयुक्त साधनों का संकलन, विभाजन तथा उनका अध्ययन जितना महत्वपूर्ण है उतना कठिन भी है। "इतिहास की रचना में प्रयुक्त साधनों को दो श्रेणियों से विभाजित किया जाता है। प्रथम श्रेणी के साधनों में तत्कालीन किले, इमारतें शिलालेख, ताम्रपत्र, कागद–पत्र, मुद्राएँ इत्यादि वस्तुएं रहती हैं। द्वितीय श्रेणी के साधनों में प्रधानतया दंतकथा, मुहावरे कहावतें काव्यग्रन्थ इत्यादि वस्तुएं रहती हैं।" (ख)

इन साधनों का यथा योग्य उपयोग करके इतिहासकार अपने इतिहास ग्रंथ की रचना करता है। इस रचना में प्रथम श्रेणी के साधनों से प्राप्त तथ्यों को अव्वल दर्जे का स्थान दिया जाता है। प्रथम श्रेणी के साधनों में से तत्कालीन कागद-पत्र एक महत्वपूर्ण और श्रेष्ठ साधन है।

इतिहास की रचना में प्रयुक्त साधनों की दृष्टि से प्रस्तुत पत्रों का असाधारण महत्व है ये पत्र न किसी एक राज्य से सम्बन्धित हैं न किसी एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक व्यक्ति से। अतः किसी राज्य का या किसी कालखंड का सूत्रबद्ध इतिहास इन पत्रों से प्राप्त करना अशक्य है। ये पत्र एक शताब्दी की कालावधि में भिन्न भिन्न राज्यों के, भिन्न भिन्न स्थानों से, अनेक विध व्यक्तियों के द्वारा लिखे गये हैं इसलिए इनमें सूत्रबद्ध इतिहास का चित्रण नहीं है। फिर भी ये पत्र भारतीय इतिहास की उस महत्वपूर्ण १८ वीं शताब्दी के इतिहास की कतिपय प्रधान घटनाओं, प्रधान व्यक्तियों एवम् प्रसंगों के सम्बन्ध में उच्चकोटि की तथा प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करते

(क) एनसायक्लोपीडिआ आफ सोशल साइंसेस जि. ७–८ पृ. ३५८

(ख) साधन–चिकित्सा पृ. १५।

हैं। प्रस्तुत सभी पत्र इस दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं अतएव इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण व्यक्ति, घटनाएँ, प्रसंग, स्थान, तिथि इत्यादि से सम्बन्धित तथ्यों का उद्घाटन करने वाले पत्रों का ही अध्ययन इस अध्याय में किया गया है।

इन पत्रों में निम्नांकित प्रकार की ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है जिसका विवेचन हम आगे करेंगे।

(क) कुछ पत्र इतिहास में उल्लिखित महत्वपूर्ण प्रसंगों या घटनाओं की पुष्टि करते हैं। (प. १५६, ४, ११५, १२४, १२६, ८, १६०, १३१, १३६, १५१)

(ख) कुछ पत्र ऐतिहासिक घटनाओं की तिथि की या तो पुष्टि करते हैं या खोज के लिए नयी सामग्री एवम् संकेत प्रस्तुत करते हैं। (प. १६१, १६, १९६, २०४, २०३)

(ग) कुछ पत्र अवश्य ऐसे हैं जो कि तत्कालीन इतिहास के सम्बन्ध में नयी जानकारी प्रस्तुत करते हैं। (प. ६८, १२, १, १२२, १७६)

इस दृष्टि से महत्वपूर्ण पत्रों को इतिहास की कसौटी पर कस कर इनमें प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों को उद्घाटित करने का प्रयत्न आगे किया जायेगा।

(क) पत्र क्र. १५६

(सावन शुद्ध ५, संवत १८०९)
(१० अगस्त, स. १७५२ ई.)

यह पत्र मराठों के श्रेष्ठ सरदार मल्हारराव होलकर और जयाजी शिंदे (सिंधिया) के द्वारा जयपुर के राजा सवाई माधोसिंह को लिखा गया है।

पत्र में " निजाम-मराठा सम्बन्ध" के बारे में एक विशेष महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख है। पत्र में लिखित घटना का महत्व जानने और स्पष्ट होने के लिए उसके पूर्व की ऐतिहासिक जानकारी आवश्यक है। वह घटना इस प्रकार है।

हैदराबाद के निजाम आसफजाँह की मृत्यु स. १७४८ ई० में हुई। आसफजाँह के पश्चात् "नसीरजंग" को पिता का राज्य मिला। आसफजाँह की पुत्री का बेटा " मुजफ्फरजंग " महत्वाकांक्षी था। उसने निजाम के राज्य पर दावा किया। दोनों ने अपनी अपनी सेना इकट्ठा कर लड़ाई की तैयारी की। "अर्काट" के पास दोनों की सेनाएँ नजदीक आ गयीं। सेना के कुछ पठानों के द्वारा धोखे से "नासीरजंग"

मारा गया। "मुजफ्फरजंग" को निजाम का राज्य मिला। जब मुजफ्फरजंग भी मारा गया तब सलावतजंग हैदराबाद का नवाब बना। सलावतजंग मराठों का दुश्मन था और वह उनका कसकर विरोध करता था। अपने पड़ोस में होने वाले इस दुश्मन को हटाने के लिए पेशवा बालाजी बाजीराव ने आसफजाँह के पुत्र "गाजीउद्दीन को दिल्ली से आकर पिता के—हैदराबाद के राज्य का स्वामी बनने का सुझाव दिया।"(स) मराठों के द्वारा सेना इत्यादि से सहायता करने का वचन दिया। इस सूचना के अनुसार "गाजीउद्दीन" ने अप्रैल १७५२ में दिल्ली से प्रस्थान किया।(ह)

पत्र में गाजीउद्दीन के दिल्ली से प्रस्थान की खबर तथा उनका नर्मदा किनारे पहुँचने का उल्लेख स्पष्ट है।

पत्र में गाजीउद्दीन के दिल्ली से प्रस्थान की खबर तथा उनका नर्मदा किनारे पहुँचने का उल्लेख स्पष्ट है।

पेशवा बालाजी बाजीराव ने फौज सहित पूना से कूच किया और वे "मजल-दर-मजल" गाजीउद्दीन की सेना को मिलने के लिए आते हैं। इस बात की सूचना है। इस प्रकार सम्मिलित सेना की कार्यवाई का उद्देश्य भी स्पष्ट रूप से लिखा है। "दोनों तरफ की फौज मेलो होकर···सलावत जंग के ताई तंबी करणा या मसलत हैरी है।"

सवाई माधोसिंह को फौज सहित शामिल होने की सूचना की गयी और यह भी सूचित किया गया है कि यदि वे खुद नहीं जा सकते तो श्रेष्ठ सरदारों के नेतृत्व में सेना भेज दें।

"आप भी फौज सुधा सामील होणाइ लाईक छै···डीला पधारबो न होवे तो आपरी फौज मातबर सरदार ठाकुर साथ देकर भेजबो करौला।"

अन्त में बताया है कि आप की सहायता से पेशवा को और हमें भी खुशी होगी।

(स) कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया जि. ४ पृ. ३८७।

(ह) न्यू हिस्ट्री आफ़ मराठाज जि. २ पृ. ३२४।

पत्र का महत्व इस कारण से है कि उस समय सलावतजंग के साथ जो लड़ाई हुई उसमें शरीक होने वाले मराठों के श्रेष्ठ सरदार सेनापति के द्वारा यह लिखा गया है और इतिहास की पुष्टि करता है।

पत्र क्र. ४ (पौष वदी ४, सं० १८१५)
(१७ जनवरी १७५९)

पत्र पेशवा बालाजी बाजीराव को गोंड़ राजा "निजामसिंह" के द्वारा लिखा गया। तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का उद्‌घाटन पत्र के द्वारा किया गया है। विशेषतया मराठा सरदारों की नीति तथा आचरण पर इस पत्र से प्रकाश पड़ता है।

पत्र में बीच बीच के कई अक्षर फटे होने के कारण पत्र का पूर्णतया विवेचन कठिन है फिर भी जो अंश प्राप्त होता है उससे कई विशेष बातों की जानकारी मिलती है अतः इसके द्वारा प्राप्त तथ्यों का विवेचन किया गया है।

राजा निजामसाह ने पेशवा के पास "रघुवशराय बाजपेयी" को भेजा था और अपने राज्य की स्थिति बतलायी थी। इस खबर का उत्तर भी पेशवा की ओर से उन्हें मिला था।

'निजामसाह' का कथन "राजि यह अपनी दई आई।" इस बात की सूचना देता है कि निजामसाह का राज्य पेशवाओं की सहायता पर निर्भर था—या यह राज्य पेशवा ने ही उसे दिया था।

पेशवाओं के एक श्रेष्ठ सरदार–जानोजी भोंसले थे। नागपुर और उसके आस पास उनकी जागीर थी। जानोजी भोंसले निजामसाह के राज्य पर आक्रमण करके उसके थानों पर अपना अधिकार करता था। पेशवा ने यह आक्रमण रोक दिया था। फिर भी बार बार जानोजी भोंसले निजामसाह के राज्य में आतंक फैलाने का प्रयत्न करता था।

इस सम्बन्ध में जानोजी के पास निजामसाह ने अपने दूत भेजे और पत्र भी भेजे किन्तु उसका कोई उत्तर नहीं मिला। "राजश्री भोंसले जानोजी के पास... अपने पंडित पठऐते कागद पत्र पठवाएते सु आजुलों न वै पंडित आए न कुछ उनकी लिखि पठि आई...।" इससे स्पष्ट है कि जानोजी ने कोई जवाब नहीं भेजा।

"खरखसो राजिपर हरि तरह तें मडाए रहत है ईहि सें राज्य सब हुदलाहट में परो।" कथन से स्पष्ट है कि जानोजी भोंसले का आतंक उसके राज्य में फैला है

इसलिए राज्य झगड़े में फँसा है।

पेशवा को ताकीद-पत्र भेजने की प्रार्थना की है जिसके अनुसार दोनों-जानोजी और निजामशाह-वर्ताव करने पर बाध्य हों। यही एक मार्ग है जिससे राज्य स्थिर और संघटित रह सकता है।

राजि यह अपनी दई आई...जे मैं वे की गौर हर तरह तैं होई सु अपुन... करने हैं...हम उठि अपनैं पास आई...।" ऊपर लिखित अंश से स्पष्ट है कि निजाम साह के राज्य की गौर पेशवा को करनी है, अतः पेशवा उचित सहायता करके झगड़ा मिटाए।

"यह राज्य पै हम मरि है मारि है राज्य रहै जाइ...।" इसके द्वारा यह स्पष्ट है कि इस राज्य को संभाल रखने के लिए राजा "निजामसाह" तथा उसके लोगों ने बहुत संकट झेले हैं, लड़ाइयाँ लड़ी हैं। अतः यह राज्य नष्ट न होने पावे। राज्य का रहना आवश्यक बात है। यह राज्य तो पेशवा और निजामसाह के यश की वेली है अतः उसे कायम रखना जरूरी है।

पेशवा बालाजीराव की शासन कुशलता इसमें रही कि उसने मराठा सरदारों में होने वाले भेदों को टालकर उनमें सहकार्य बढ़ाकर मराठों की शक्ति एवम् राज्य बढ़ाया। इसमें उसने नागपुर के भोंसले खानदान के पुरुषों को भी सम्मिलित किया था। सिर्फ मराठा-सरदारों में होने वाले झगड़े नहीं बल्कि मराठा सरदार और अधिकारियों से होने वाले अन्य सत्ताधारियों के झगड़े मिटाने का कार्य भी पेशवा बालाजी बाजीराव ने किया। यही दृढ़ संघटन और एकता की भावना मराठों का राज्य उत्तर में फैलने और बढ़ने के मूल में थी।

पत्र क्र. ११५ पौष वदी १० संवत् १८१५—
(२३ जनवरी १७५६ ई०)

सिंधिया खानदान के पराक्रमी पुरुष जानोजी सिंधिया के द्वारा जयपुर के राजा सवाई माधोसिंह को लिखा गया है। पत्र मराठा राजपूत संबंध की दृष्टि से महत्वपूर्ण है पत्र में प्राप्त घटना का उल्लेख इतिहासों में अप्राप्त सा है इससे उसका और भी महत्त्व है।

मराठों ने मुगल बादशाह अहमदशाह के साथ सं० १७५२ ई० में एक सुलह की इसके अनुसार मराठा शासक, मुगल साम्राज्य की भीतरी तथा बाहरी शत्रुओं से रक्षा करने के लिए वचनबद्ध हो गये।" (क) इस संधि के अनुसार कार्य करते

(क) न्यू हिस्टरी आफ मराठाज् जि. २ पृ. ३६५

समय उन्हें राजपूत, जाट और रोहिले आदि से लड़ना पड़ा। (क) प्रस्तुत पत्र इसी प्रकार की घटना से सम्बन्धित है।

किला रणथंबोर बादशाह के अधिकार में था। वह बादशाह के हाथों से छीन लिया गया था। अतः उसे अपने अधिकार में करने के लिए मराठों की ओर से प्रयत्न किया गया।

किले को जीतने के लिए उसे घेरा डाला गया। यह कार्य मल्हारराव होल-कर की तरफ से सरदार मटवाजी राजोले आदि लोगों ने किया। फौज और तोप खाने को भेजकर मोरचे बिठाये गये और इस प्रकार किला जीतने का कार्य जारी रहा।

अकस्मात् जयपुर की फौज ने आकर "छापा घालो लोकांसों लूटवायो ब्राह्मण वा कोई मातबर लोग मोरा छे वा लुटो छे कीले मजकुर के मोरचा उठांयां छा तोबखांनां लुटो छे बीसाद लुटवाई छे।" इस प्रकार छापा डालकर मराठों की सेना तथा तोपखाने का नाश किया। ब्राह्मणों की हत्या का उल्लेख विशेष बात है।

जनकोजी सिंधिया का कथन है कि यह बादशाही किला है जयपुर के राजा का इससे कोई सम्बन्ध नहीं अतः इनके द्वारा इस प्रकार का आक्रमण अयोग्य और अनुचित है।

जयपुर के राजा और राज्य की भलाई की दृष्टि से यह बताया गया कि "राजोला के तफ मातबर आदमी भेजी ने तीणास्या सलुख हरीभांत करीने तोबखानो व बीमात ...... सबही मन मनाये कर दीरा बोला यांमोंही आछी बात छे।" इतना ही नहीं यदि किले पर तुम्हारे लोग हों तो उन्हें वापस बुलाकर किला मटवाजी राजोले के अधिकार में कर देना, ~~इस प्रकार~~ की स्पष्ट सूचना दी गयी है।

जयपुर के राजा को यहभी लिखा गया है कि वह अपने लोगों को ताकीद करें कि सिर्फ किला रणथंबोर नहीं वरन् सरकार के अन्य स्थान, महाल-सुल्क में भी किसी प्रकार झगड़ा निर्माण न करें।

"मराठा–राजपूत सम्बन्ध में" जिन बातों का विवरण इतिहास की कतिपय किताबों में अबतक नहीं मिलता ऐसी ही एक घटना का उद्घाटन एवम् वर्णन इस पत्र में मिलता है। इस दृष्टि से यह पत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(क) न्यू हिस्टरी आफ मराठाज् जि. २ पृ. २६५

मराठा–राजपूत सम्बन्ध की दृष्टि से जो अनेक पत्र उपलब्ध हैं उनसे विपरीत नीति इस पत्र में लक्षित होती है। अतः इस दृष्टि से उसका महत्व है।

पत्र क्र. १२४ (मिती वैशाख वदी ४ संवत १८२७ ३ मई १७७१ ई०)

पत्र जयपुर के राजा सवाई पृथ्वीसिंह को लिखा गया है। पत्र लेखक मराठों के दो श्रेष्ठ सरदार एवम् सेनापति, रामचन्द्र गणेश (कानड़े) और विसाजी कृष्ण (विनीवाले) हैं।

पत्र में मथुरा के पास जाट और मराठों में जो लड़ाई हुई उसका प्रत्यक्ष वर्णन प्रस्तुत है। पत्र में वर्णित प्रसंग को समझने में इतिहास का निम्नलिखित अंश सहायता दे सकेगा।

स. १७६१ ई० के पानीपत के भयंकर रण संग्राम के बाद उत्तर भारत में जाटों की सत्ता बढ़ गयी थी। जाटों के नेता जवाहरसिंह जाट ने मराठों को नर्मदा के दक्षिण में खदेड़ने का प्रण किया और वह उसी दिशा में सतत प्रयत्नशील रहा (क) जवाहरसिंह की मृत्यु के पश्चात् नवलसिंह जाटों का नेता बना। उसने जवाहरसिंह की नीति अपना कर मराठों एवम् राजपूतों को सताने का प्रयत्न किया। पानीपत युद्ध के अनन्तर १० वर्षों के भीतर ही मराठों ने शक्ति संघटन करके उत्तर भारत में अपना अधिकार पुनश्च प्रस्थापित किया। इसमें उन्हें जाटों के साथ लड़ना पड़ा। (ख) इसी से सम्बन्धित पत्र की घटना है।

जाटों के नेता नवलसिंह और मराठों के सरदारों–रामचन्द्र गणेश और विसाजी कृष्ण में यह लड़ाई हुई।

लड़ाई संवत् १८२७ चैत्र सुदी एकादशी के दिन दोपहर शुरू हुई और रात में समाप्त हुई।

लड़ाई में नवलसिंह जाट की हार हुई। लड़ाई में नाश हुआ और जो चीजें मराठों के हाथ आई उसका वर्णन इस प्रकार किया गया है— "जाटने सिकस्त खाई नवलसिंह वा और सीरदार पावसे भाग के डीग में गये कछु रण में गीरे कछु पाड़ाव भये (पकड़े गये) फौज बोहोत मारी गयी नौबते निशाणे हाथी घोरे तोफे पाड़ाव लोकोन ले आये ··· श्री जी के कृपा से फते भई।"

(क) न्यू हिस्टरी आफ मराठाज् जि. पृ. ५०६।
(ख) " " ५०६–१०

पत्र लिखने का कारण भी लिखा है" खुशी की हकीकती मालुम होना सबब लिखी है।

पत्र क्र. १२६ (मिति पुस सुदी ११ संवत १८२८ १६ जनवरी १७७२ ई०)

पत्र मराठों के श्रेष्ठ सरदार महादजी सिंधिया की ओर से जयपुर के राजा सवाई पृथ्वीसिंह को लिखा गया है। यह पत्र इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें प्राप्त संकेत कई प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इस पत्र में एक ही वाक्य महत्व का है। "पातशाहजी से मुलाजमत कर पूस सुदि २ को दिल्ली तखतपर बिठलाया।"

मुलाजमत का विशेष अर्थ है "बड़े व्यक्ति की मुलाकात"। महादजी सिंधिया ने बादशाह की मुलाकात कर ली और उसे दिल्ली आने की और मुगल सम्राटों के सिंहासन पर विराजित होने की सलाह दे दी।

इतिहास की वह सर्वश्रुत घटना है कि बादशाह शाह आलम द्वितीय को दिल्ली से भागकर बिहार, इलाहाबाद, अयोध्या में भटकना पड़ा। आगे चलकर बादशाह, सुजाउद्दोला और बंगाल के सूबेदार मीरकासिम का अंग्रेजों के साथ युद्ध हुआ। इसमें अंग्रेजों की विजय हुई। (क) अतः बादशाह को संधि करनी पड़ी। (स. १७६५ ई०) इस संधि के कारण बादशाह शाह आलम अंग्रेजों का मातहत बन गया। वह बादशाह इलाहाबाद में रहता था। दिल्ली जाकर अपने पूर्वजों के खाली तख्त पर बैठने की इच्छा उसके मन में बार बार हो आती। राजमाता भी उन्हें बारबार बुलावा भेजती। (ख) किन्तु अंग्रेज अपनी ताकत जानते थे। अतः उन्होंने बादशाह को दिल्ली लेकर राजगद्दीपर बिठाने की जिम्मेदारी स्वीकृत नहीं की। बादशाह की प्रार्थना वे किसी न किसी बहाने टालते थे। बादशाह की ओर से मराठों के पास जब यह प्रस्ताव आ गया तब मराठों ने मदद देना स्वीकार किया। बादशाह अंग्रेजों को छोड़कर मराठों के आश्रय में गये। महादजी सिंधिया ने बादशाह से मुलाकात की। उन्हें दिल्ली लाकर तख्त पर बिठाने के कार्य की जिम्मेदारी महादजी सिंधिया, विसाजी कृष्ण और रामचन्द्र गणेश ने अपने ऊपर ली और वे उन्हें स. १७७१ ई० के दिसम्बर महीने में दिल्ली ले गये।

(क) मराठी रियासत मध्य विभाग ४ पृ. १६५।
(ख) न्यू हिस्टरी आफ मराठाज् जि. २ पृ. ५१४।

"पूस सुदि २ को दिल्ली तखत पर विठलाया ।" इस वाक्य से यह स्पष्ट है कि बादशाह को पूस सुदी २ को ६ जनवरी १७७२ ई० के दिन सिंहासन पर विठाया गया ।

यह प्रमाणित तिथि है जिसका आधार इतिहासकारों को महत्वपूर्ण एवम् आवश्यक होगा ।

कुछ इतिहासकारों का कथन है कि बादशाह ने दि. ६ जनवरी १७७२ ई० के दिन दिल्ली में प्रवेश किया । (ग) इतिहासकार ग्रेन्ड डफ ने कुछ आधार बताकर लिखा है कि बादशाह को १७७१ ई० के दिसम्बर के अन्तिम दिनों में सिंहासन पर विठाया गया । (घ)

प्रस्तुत पत्र उस समारोह के प्रमुख व्यक्ति के द्वारा लिखा होने के कारण इसमें दी गयी तिथि इतिहास की दृष्टि से सबसे अधिक प्रामाणित तिथि मानी जा सकती है । पत्र इस घटना के पश्चात् १० वें दिन लिखा गया है अत: उसमें किसी प्रकार का संदेह या असावधानी नहीं हो सकती ।

पत्र घटना एवम् तिथि निर्णय की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

पत्र क्र. ८ (चैत्र वदी १३ संवत १८२९ २१ मार्च १७७३ ई०)

पत्र महाराज जगतराज के नाती गुमानसिंह और खुमानसिंह के द्वारा लिखा गया है । पत्र मराठों के श्रेष्ठ अधिकारी " पंडित त्र्यंबकराव " को लिखा गया है ।

"विदीवार हकीकति की खबर भेजी है तथा गुसाईं परतापसाहि भेजे है ।" इसका उल्लेखन पत्र के प्रारम्भ में है । पत्र में कई महत्वपूर्ण घटनाओं का संकेत मिलता है ।

"इन दननि में खबरि सुनिबे में आई है के श्री पंडित विसाजी क्रस्न रुहेलन की न्दाउ मारी ··· फते पाई ।"

बादशाह आलम द्वितीय को दिल्ली के तख्तपर विठाने के अनन्तर मराठों ने बादशाह के शत्रुओं को दबाने का कार्य शुरू किया । प्रथमत: रुहेलों को दबाने का विचार कर विसाजी कृष्ण विनीवाले फौज सहित रुहेल खंड में घुसे । जाबेताखां का

(ग) न्यू हिस्टरी आफ मराठाज् जि. २ पृ. ५१४ ।
(घ) हिस्टरी ऑफ दि मराठाज-ग्रेन्ड डफ जि. २ पृ. २२५ ।

पीछा करती हुई शुक्रताल, विजनौर, नजीबगढ़ को जीतती हुई मराठी सेना सारे रुहेल खंड में फैल गयी और उसका विध्वंस करने लगी। मराठों के इस भयंकर आक्रमण के कारण रुहेलों के मन में मराठों का अत्यधिक डर समा गया। (च) इस ऐतिहासिक घटना का संकेत उपरोक्त उल्लेखन से होता है।

इसके साथ ही मराठों के द्वारा (जिसमें विसाजी कृष्ण प्रमुख थे) दिल्ली के वादशाह को थोड़े दिनों में खोई हुई सल्तनत प्राप्त करा देने की घटना का उल्लेख है। यह प्रसिद्ध घटना है जिसका वर्णन पत्र क्र. १२६ के संदर्भ में किया गया है।

विसाजी कृष्ण विनीवाले की श्रेष्ठता सूचित करते हुए लिखा गया है, "पं. श्री विसाजी क्रस्न ऐसे ई सिरदार हैं जो वस्तकरो चाहे सो सिद्धि होह।" और हम हरियेक तरह उनिसों अपने वनाउ कौ भरोसौ राखत है।"इससे यह भी सूचित किया गया है कि राजा खुमानसिंह और गुमानसिंह अपना कार्य इनके द्वारा पूर्ण करने का भरोसा रखते थे।

पत्र में इस बात का भी संकेत मिलता है कि पं. विसाजी कृष्ण ने वरदान पत्र कर दिया है और सहायता का "करार मदार" भी हो गया है। वह इक़रार उपरोक्त काल में भी क़ायम है।

श्रेष्ठ अधिकारियों के नेतृत्व में चार-पांच हजार घुड़सवार भेज देने की प्रार्थना की गयी है। यह सेना-सहाय्य जल्दी देने की सूचना भी कर दी गयी है– "अब या काम की देर नाही करने है।"

अंत में फिर एक वार विसाजी कृष्ण के पराक्रम का उल्लेख करके यह वताया गया है जिन्होंने वादशाह को सिंहासन पर विठाने का महान कार्य अपने जिम्मे लेकर पूर्ण किया, उनके लिए हमारा काम-सामान्य है "साधारन नई है।"

पानीपत संग्राम के पश्चात् १०–१२ वर्षों के भीतर मराठों के द्वारा उत्तर भारत में जो सफल शासन प्रवन्ध हुआ इसका पूरा संकेत पत्रों में उल्लिखित वातों के द्वारा मिलता है। राजनीति एवम् इतिहास की दृष्टि से पत्र का मूल्य अधिक है।

पत्र १६० असोज सुदी १ सं. १८३० अक्टूबर १७७३

पत्र मराठों के सरदार तुकोजी होलकर की ओर से जयपुर के राजा सवाई

(च) मराठी रियासत मध्य विभाग ४ पृ. २२४।

पृथ्वीसिंह को लिखा गया है। मराठा–इतिहास की एक भयंकर घटना का उल्लेख पत्र के द्वारा प्राप्त होता है।

" या दीना में गारदीयां ने तलब के वासते रावसाहिब के हजुर हंगामा कीया। "

पेशवों की सेवा में गारदियों का एक दल काम करता था। इनके नेता सुमेरसिंह, खड्गसिंह और मुहम्मद युसुफ थे। इनके दल को " गार्डस् " रक्षकों का कार्य दिया गया था और ये लोग पेशवों के निवास की रक्षा करते थे।

बहुत दिनों से उन्हें अपना वेतन नहीं मिला अत: अपने वेतन को प्राप्त करने के लिए उन्होंने पेशवा नारायण के पास जाकर झगड़ा किया।

" कहवत वौहत होय गइ और तरवार चलाइ सौ रावसाहिब नरायन रावजी देवलोक पधा–या।"

इस कथन से स्पष्ट है कि पेशवा और गारदियों में बहुत बातचीत हो गयी जिसके अंत में गारदियों ने तलवार चलाकर नारायणराव की हत्या की।

गारदियों के द्वारा पेशवा नारायणराव की हत्या कोई आकस्मिक सामान्य घटना नहीं थी। इसके पीछे एक बड़ा भारी षड़यंत्र था। जिसके मूल में नारायणराव को हटाकर रघुनाथराव को पेशवा बनाने की तीव्र इच्छा कार्य करती थी। रघुनाथ राव की वह अतृप्त आशा ही थी। इस षडयंत्र में रघुनाथराव और उसकी धूर्त पत्नी आनन्दीबाई का हाथ था। अत: वह षड़यंत्र सफल हुआ और पेशवा नारायणराव की हत्या कर दी गयी।

हत्या की खबर सुनते ही पेशवा के सब कारबारी और रघुनाथराव भी दौड़ आये और जल्लादों को पकड़ा गया। शहर का बंदोबस्त कर दिया गया।

"हम भी दादा साहीब की मुलाजमत कर सीताबही आवते है।"

पत्र लेखक दादा साहेब–रघुनाथराव पेशवा की मुलाकात कर शीघ्र उत्तर में आने की बात कहता है। इससे स्पष्ट है कि पत्र लेखक पत्र लेखन के समय पूना में था।

पत्र में हत्या की तिथि नहीं है और न किसी प्रकार इस घटना से सम्बन्धित महत्वपूर्ण संकेत ही मिलता है। एक महत्त्वपूर्ण घटना तथा जयपुर नरेश को सूचना देने का उल्लेख है, इस दृष्टि से पत्र का महत्व आंका जा सकता है।

पत्र क्र. १३१ (मिति माघ सुदी १ संवत् १८३५ १८ जनवरी १७७९ ई०)

पत्र मराठों के श्रेष्ठ सरदार एवम् कुशल पराक्रमी सेनापति महादजी सिंधिया ने लिखा है। पत्र का प्राप्तिकर्ता जयपुर के राजा सवाई प्रतापसिंहजी हैं।

इतिहास में ग्रथित एक महत्वपूर्ण लड़ाई का जिक्र किया गया है जिसमें पत्र प्रेषक ने सेनापति के नाते भाग लिया था और विजय भी प्राप्त की थी। पत्र में प्राप्त वर्णन एवम् संकेत इतिहास और राजनीति की घटनाएँ उद्घाटित करते हैं इस दृष्टि से पत्र का मूल्यांकन अधिक महत्व का है। इस प्रसंग में उपस्थित श्रेष्ठ व्यक्ति के द्वारा पत्र लिखे जाने के कारण प्रामाणिकता की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है।

"मुंबईवाला फीरंगी ईगरज सरकार से बिगाड़कर लड़ाई का सरंजाम मातबर करके बोरघाट उपर पुनेसे दसकोस आये।"

अल्पवयीन पेशवा सवाई माधवराव को पेशवा पद मिलते ही "सखाराम बापू" "मोरोबा दादा" "नाना फड़नवीस" इन कारबारियों में शासन सत्ता अपने हाथों में रखने की होड़ लगी। उसके कारण संघर्ष भी हुए। मराठों की इस दुर्बलता से लाभ उठाने की इच्छा से बम्बई के अंग्रेज अधिकारियों ने पूना पर आक्रमण करके राघोबा को अल्पवयीन पेशवा नारायणराव का रक्षक बनाकर अपना स्वामित्व स्थापन करने का दाव रचा। सेना तथा लड़ाई का सरंजाम लेकर वे बोरघाट से आगे पूना की ओर बढ़े।(प)

इस आक्रमण की खबर सुनकर मराठा सरदार एवम् कारबारी आपसी भेद भूलकर एक बने और उन्होंने इस आक्रमण का मुकाबला करने का निश्चय किया। श्रेष्ठ सरदार तथा सेनापति अपनी अपनी फौज लेकर निकले। पूना से दस कोस की दूरी पर तेलगांव के नजदीक दोनों सेनाएँ आ पहुँची।

मराठों ने अंग्रेजी सेना को चारों तरफ से घेरकर उन पर तोपें और बंदूकें चलाकर ऐसा भीषण आक्रमण किया कि अंग्रेजी सेना अपने सेनापति एवम् सैनिकों के भयंकर नाश को देखकर पीछे हटकर बड़गांव के पास गयी। बड़गांव के पास जाने में इस सेना को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बड़गांव पहुँचने पर मराठी सेना ने अपना दबाव बढ़ाया। अँग्रेज सेना को अनाज और पानी मिलना मुश्किल हो गया। आखिर अंग्रेज अधिकारियों ने आपस में सलाह करके मराठों के

(प) न्यू हिस्ट्री आफ मराठज्। जि. ३ पृ. ७९।

पास सुलह का पैगाम भेजा। इस बात का वर्णन संक्षेप में इस प्रकार लिखा गया है ... "चारों त्रफ से लगाव करके तोफा की वगैरे मार दीई...श्रीमंतजी का कृपासूं आपणी फते हुई...ईगरेज बोहत मारे गये बाकी रहे सो बड़गांव के असरे जाकर सलुख का पैगाम करके भले आदमी हजूर मोकल्या।"

"सरकार का माहाल मुलुख बाके त्रफ था सो सरकार मो पाछे दिया तह-नामा ठेरायके मातबर इंगरेज सरकार मे बोलराखी।"

इस कथन से स्पष्ट है कि अंग्रेजों ने मराठों का जो मुल्क जबरदस्ती से छीन लिया था उसे वापस लौटाने का इकरार संधि में रखा गया। श्रेष्ठ अंग्रेज अधि-कारियों ने संधि स्वीकार करली।

'फीरंग्या के साथ फौज देकर मुंबई को पोहचाय दीयै।"

सधि को स्वीकार करने पर मराठा शासकों ने उदार नीति को अपनाकर अंग्रेजी फौज को अनाज-सामग्री देकर बम्बई को पहुँचा दिया। पराजित शत्रु के प्रति मराठों के इस उदारतापूर्ण व्यवहार की प्रशंसा अंग्रेज करते रहे।

"इंगरेज के त्रफ श्रीमंत रघुनाथराव दादा थे उनकी बी हवाले कर देकर साष्टी वगैरे मुलुख छोड़ दिया।"

अन्तिम संकेत सबसे महत्वपूर्ण है। रघुनाथराव पेशवा अंग्रेजों की ओर थे उन्हें मराठों के अधिकार में दिया गया। अंग्रेज मराठों के बीच जो संधि हुई उसमें सबसे महत्वपूर्ण शर्त रघुनाथराव को मराठों के अधिकार में देने की थी। मराठा-राज्य का नाश करने में जिन व्यक्तियों के नाम लिए जाते हैं उनमें सर्व प्रथम पेशवा रघुनाथराव का नाम है।

रघुनाथराव, पेशवा बाजीराव प्रथम का तृतीय पुत्र था। बाजीराव की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवा बना। पानीपत के भयंकर आघात से दुख पाकर स. १७५१ ई० में बालाजी की मृत्यु हुई। बालाजी बाजीराव के पश्चात् उसका पुत्र माधवराव पेशवा बना। माधवराव के पेशवा बनते ही रघुनाथ राव के मन में पेशवा बनने की एक अमिट आस उत्पन्न हुई। माधवराव, उसके पश्चात् नारायणराव और तदनंतर अल्पवयीन पेशवा सवाई माधवराव के जीवन काल पर्यन्त रघुनाथराव पेशवा बनने की इच्छा से षड्यंत्र रचता रहा। कई बार उसने पेशवाओं के दुश्मन निजाम के पक्ष की सहायता प्राप्त करके अपनी इच्छा पूर्ण करने का असफल प्रयत्न किया। निजाम की शक्ति दुर्बल बनने पर और अंग्रेजों की

शक्ति बढ़ने पर रघुनाथराव ने अंग्रेजों की सहायता लेकर मराठों में फूट का निर्माण कर, पेशवा बनने का कई बार प्रयत्न किया किन्तु दुर्भाग्य से रघुनाथराव की पेशवा बनने की आस कभी पूर्ण रूप से सफल न हुई।

अंग्रेज भी अपनी शक्ति बढ़ाने का सतत प्रयत्न करते थे। मराठा राज्य में हस्तक्षेप करने का मौका भला कैसे छोड़ देते। रघुनाथराव का पक्ष लेने का बहाना कर अंग्रेजों ने कई बार मराठा राज्य पर आक्रमण किया। अन्त में रघुनाथराव को नहीं किन्तु उसके पुत्र बाजीराव रघुनाथ को सं० १८०२ ई० में पेशवा बनाकर उसके रक्षक के रूप में अंग्रेजों ने सारी सत्ता अपने हाथों में ले ली।

तेलगांव–वड़गाँव के अंग्रेज–मराठा युद्ध में भी अंग्रेज रघुनाथराव को मराठों के हाथों में देने को तैयार नहीं थे किन्तु नाना फड़नवीस और महादजी सिंधिया के दबाव से अंग्रेजों ने रघुनाथराव को मराठों के सुपुर्द कर दिया।

पत्र लड़ाई के पश्चात् लड़ाई के घटनास्थल से—वड़गांव से—लिखा जाने के कारण और लड़ाई के श्रेष्ठ सेनापति महादजी सिंधिया के द्वारा लिखा जाने के कारण एक विशेष महत्व रखता है।

मराठों के इतिहास में इस युद्ध का महत्व इसलिए है कि इसी युद्ध में अंतिम बार सारे मराठा सरदार इकट्ठा हुए और उन्होंने दुश्मन को हराया। इसके पश्चात् मराठा–सरदार आपसी फूट के कारण कभी संघटित रूप में मैदान में नहीं उतरे।

पत्र क्र. १३६ (असोज सुदी १ संवत् १८४० २७ सितम्बर १७८३ ई०)

पत्र मराठों के पराक्रमी सरदार एवम् सेनापति के द्वारा जयपुर के राजा सवाई प्रतापसिंह को लिखा गया।

पत्र में दिल्ली के मुसलमान सरदारों के सत्ता हथियाने के सम्बन्ध में संकेत मिलते हैं। इस संघर्ष में बादशाह के पक्ष एवम् आसन को स्थिर करने के लिए महादजी सिंधिया को हस्तक्षेप करना पड़ा और अपनी ओर से बागी सरदारों को सजा देनी पड़ी। इन बातों का उल्लेख संकेत रूप में पत्र में प्राप्त है।

"हमदानी ने मिरजा सफीखां को दगा कीया।" इस कथन में इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना सम्बन्धित है जो इस प्रकार है।

दिल्ली का राज्य शासन अपने अधिकार में कर लेने के लिए दिल्ली के सरदारों में संघर्ष चल रहा था। इस संघर्ष में दो पक्ष थे एक पक्ष "नजफखां" का था और

दूसरे पक्ष का नेता हमदानी (मुहम्मद वेग हमदानी) था। मिर्जा शफीखाँ नजफखाँ के पक्ष का था। वादशाह शाह आलम द्वितीय और शाह जादा जवानवख्त का महादजी सिंधिया एवम् मराठों के प्रति अपनापन और उनकी सहायता प्राप्त करने की इच्छा का समर्थन मिर्जा शफीखाँ करता था। दूसरी ओर हमदानी मराठों का कट्टर दुश्मन था और शासन में मराठों का प्रभाव देखकर जलता था। मराठों की सहायता एवम् श्रेष्ठता का समर्थन करने वाले पक्ष को दुर्वल करने की इच्छा से मुहम्मद वेग हमदानी ने धोखे से २३ सितम्बर १७८३ को मिर्जा सफीखाँ को मार डाला। मिर्जा शफीखाँ के पक्ष के लोगों ने महादजी सिंधिया से मदद के लिए प्रार्थना की। (फ)

> " इहांते राजश्री अम्वाजी ईंगले के साथ फौज व पलटनें देई हमदानी तंवीखातरि भेजा है।"

मिर्जा शफीखाँ की मृत्यु के कारण तथा हमदानी के पक्ष के लोगों के हाथों में सत्ता हो जाने से वादशाह और मराठों के पक्ष के लोगों पर आने वाले संकटों का ख्याल करके महादजी सिंधिया ने अपने श्रेष्ठ सेनापति अंवाजी ईंगले को फौज सहित भेजे दिया और "हमदानी" का वंदोवस्त करने के कार्य में अपनी फौज के साथ सहायता करने के लिए जयपुर नरेश को सूचित किया गया है। "राज अपने जमियत मुध्रा ईंगले मसार निलेसे सांमिल होई हमदानी का पारपत करोगे।"

इस प्रकार सहायता करने की सूचना अनेक पत्रों में मिलती है जिससे यह माना जा सकता है कि जयपुर के राजा मराठों के कार्य में सदैव सहायता करते रहते थे।

पत्र की तिथि के सम्वन्ध में यह कहना होगा कि इसमें विक्रम संवत का प्रारंभ चैत्रवदी १ से मानना योग्य होगा।

दिल्ली शासन में भिन्न -भिन्न पक्षों में होने वाला सत्ता-संघर्ष का चित्रण तथा एक महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख पत्र में मिलता है इस दृष्टि से पत्र महत्व-पूर्ण है।

पत्र क्र. १५१ (चैत्र सुदी ९ संवत १६५१ १६ अप्रेल १७९६ ई०)

पत्र दौलतराव सिंधिया के द्वारा जयपुर के राजा सवाई प्रतापसिंह को लिखा है।

(फ) न्यू हिस्टरी आफ मराठाज् जि. ३ पृ. १४२।

पत्र अत्यंत महत्वपूर्ण है और उसमें कई ऐतिहासिक तथ्यों का उद्घाटन किया गया है।

खर्डा (भोपाल के निकट) की यह लड़ाई दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। प्रथमतया सवाई माधवराव पेशवा के समय का यह अन्तिम बड़ा कार्य था। द्वितीय मराठा और निजाम के बीच की भी यह अन्तिम लड़ाई थी।

"नवाब नीजाम अलीखांन बहादुर के उपर मोहिम दर पेश होके।"

स्पष्ट है कि यह मुहिम पेशवा की ओर से आयोजित की गयी। इस मुहिम का कारण यों बताया जाता है —निजाम ने मराठों को चौथ देने का इकरार किया था। कई सालों तक पेशवाओं की ओर तकाजा किया गया किन्तु निजामा ने चौथ की रकम नहीं पटाई। मराठों के दो प्रबल सेनापति महादजी सिंधिया और हरिपंत फड़के मर गये थे अतः मराठों के पक्ष को दुर्बल जानकर निजाम पैसा देने की बात टालता था। (ब) कोई अन्य मार्ग न होने से नाना फड़नवीस ने निजाम पर चढ़ाई करने की योजना की।

नाना फड़नवीस ने मराठा राज्य के सभी सरदारों को अपनी-अपनी फौजें लेकर आने को लिखा। शिंदे (सिंधिया), होलकर, गायकवाड़ भोसले इत्यादि सरदारों की फौजें तैयार होकर निकलीं। पेशवाओं की सेना भी पूना से निकली। पूना से पूर्व की ओर १५० मील की दूरी पर "खर्डा" नामक स्थान के पास मराठा एवग निजाम की सेनाएँ आ पहुँचीं। यहीं पर पाड़ाव पड़े थे।

"चैत वदी २ से पांचेताई मुकाबला रह्या पसटी के रोज लड़ाई सुरु हुई।" इससे स्पष्ट होता है कि इन दो सेनाओं में ३-४ दिन छोटी बड़ी लड़ाइयां होती रहीं और "षष्टी" के रोज प्रत्यक्ष लड़ाई शुरू हुई।

"नवाब के फौज पलटण ने बाजू के उपर श्रीमंत के फौज पै चाल करके मार कीया ... ऐ मोहरा संभाल के उधर भी तोफें की मार गीरी अगे पलटनो ने बढ़के कीई (चढ़ाई की) और फौज के घोड़े चलाय के नवाब का मोहला पीछे हटाय दीया नवाब सिकस्त खां के पीछे तीन कोस ताई हट गए तोफे निशाने नकारे पाड़ाव कर लाएँ —।"

नवाब की सेना ने जब मराठों की सेना पर चढ़ाई की और तोपें, बन्दूकें

(ब) मराठी रियासत उत्तर विभाग – पृ. ४५३।

चलायीं तब मराठी सेना में से शिन्दे और होलकर की सेना ने आगे बढ़कर आक्रमण किया। मराठी सेना ने भी बन्दूकें और तोपें चलायीं। इस भयंकर आक्रमण से डरकर निजाम पीछे हट गया और भागकर "खर्डा" के किले में आश्रयार्थ चला गया। मराठों ने किले को घेरा और तोपों की मार दी। निजाम की सेना की तोपें भी मराठों ने अपने कब्जे में कर लीं। इतना ही नहीं निजाम की सेना का दाना-पानी बन्द कर दिया। दो ही दिनों में निराश होकर निजाम ने सुलह का प्रस्ताव भेज दिया।

"श्रीमंत वा नवाब की दोस्ती कदींम से चली आई तीसमे ... मसीरुल मुलूक कारभारी ने पलस कीया था ईस वास्ते नवाब के तरफ सु उसको लायके श्रीमंत के त्रफ हाजर कर दीया।"

यह एक सत्यतापूर्ण कथन है। निजाम की ओर से मराठों की चौथ देना बाकी था। मराठों की ओर से उसके लिए तकाजे होते। निजाम के कारबारियों में "मशीर-उल-मुल्क" वजीर था। वह मराठों का कट्टर दुश्मन था और खास करके नाना फड़नवीस के प्रति जलता था। उसने मराठों से प्राप्त पत्रों के उत्तर अपमान-जनक भाषा में दिये और मराठा दूतों का तथा शासकों का अपमान भी किया था। इस लड़ाई के मूल में "मशीर-उल-मुल्क" की नीति रही। अतः "खर्डा" की लड़ाई में विजय पाते ही मराठों ने संधि में शर्त लगायी और उसके अनुसार "मशीर-उल-मुल्क" को मराठों के हाथों सोंप वे उसे पूना ले गये और वहाँ बन्दी के रूप में एक साल रहा।

" मामले का जुवाब सवाल लगा है दीन पाच च्यार में सव फरच्या हो जायगा। "

इस कथन से यह स्पष्ट है, पत्र की तारीख तक दोनों पक्षों में सुलह के सम्बन्ध में बातचीत चली थी और दौलतराव की कल्पना थी कि चार पांच दिनों में वह संधि पूर्ण हो जायेगी। संधि के पूर्व ही यह पत्र लिखा गया था।

इतिहास से विदित है कि पेशवा सवाई माधवराव "मई" महीने के प्रारम्भ में पूना लौट आया जब उसका अपूर्व स्वागत किया गया। अतः निजाम मराठा सन्धि इसके पूर्व हो गयी होगी।

इस लड़ाई में शिंदे, होलकर, गायकवाड़, भोसले, पटवर्धन आदि सभी सरदार अपनी-अपनी सेना सहित इकट्ठा हुए। उन्होंने एक बनकर निजाम को हराया।

मराठी राज्य की दृष्टि से यह एक महान कार्य था। इस कार्य के पीछे नाना फड़नवीस की बुद्धि और राज नीति कार्य करती रही। इस लड़ाई के पश्चात् मराठा सरदार कभी एक नहीं हुए।

एक शताब्दी के काल में निजाम-मराठों में दक्षिण के शासन और स्वामित्व के लिए कई लड़ाइयाँ हुई। प्रथम महत्व पूर्ण लड़ाई निजाम-उल-मुल्क और पेशवा बाजीराव प्रथम में स. १७२८ ई० में हुई जिसमें निजाम की हार हुई। यह अंतिम लड़ाई निजाम अली और अंतिम श्रेष्ठ पेशवा सवाई माधवराव में हुई जिसमें फिर शवा की विजय और निजाम की हार हुई।

पत्र की तिथि के सम्बन्ध में यह कहना आवश्यक है कि यहाँ संवत का प्रारंभ चैत्र महीने से मानना आवश्यक है।

(ख) पत्र १६१ (मिती मार्गशार्ष वदि १३ संवत १८३० १२ नवम्वर १७७३ई०)

पत्र तुकोजी होलकर के द्वारा जयपुर के राजा सवाई पृथ्वीसिंह को लिखा गया है।

पत्र में कासीराव होलकर (तुकोजी होलकर के पुत्र) विवाह के लिये जयपुर के राजा को निमत्रित करने की वात का उल्लेख है। इसके साथ ही विवाह की तिथि दी गयी है। "मिती पोस वदी १" (सं. १८३०) और पत्र उसके पूर्व मार्गशीर्ष महीने में लिखा है।

पत्र का महत्व इसलिये है कि न इस घटना का उल्लेख मराठी इतिहासों में मिलता है न तिथि का, अतः कुछ मौलिक जानकारी प्राप्त करा देने वाला यह पत्र इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

पत्र क्र० १६२ (फाल्गुन वदि ६ सवत १८३२ ता० १० फरवरी १७७६ ई०)

पत्र अहिल्यावाई होलकर के द्वारा जयपुर के राजा सवाई पृथ्वीसिंह को लिखा गया है।

पत्र "फागुन वदी ६ संवत १८३२" (१० फरवरी १७७६) को लिखा गया है। पत्र में "ढुंढीराव कनस्या" (घोंडोराव फणसे) की विवाह तिथि निश्चित करने का तथा राजा को पधारने का निमंत्रण दिया गया है। यह विवाह की तिथि "फागुन सुदी ८ सं० १८३२" (ता० २६ फरवरी १७७६ ई०) की दी गयी है।

पत्र का महत्व इस दृष्टि से है कि जयपुर के राजा को बुलावा भेजने का कार्य

पत्र में अहिल्याबाई के द्वारा हुआ है । इस पत्र में जिस घटना का उल्लेख है उसके सम्बन्ध में मराठी पत्रों में जानकारी मिलती है किन्तु यहाँ निश्चित तिथि के सहित घटना का उल्लेख इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

पत्र क्र० १९९ (मिति पौष सुदी १ संवत् १८३९ १९ जनवरी १७८३ ई०)

पत्र बालाजी जनार्दन (नाना फड़नवीस) के द्वारा जयपुर के राजा सवाई प्रतापसिंह के नाम लिखा गया है ।

पत्र का महत्व भाषा की दृष्टि से भी है ।

पेशवा सवाई माधवराव (पेशवा नारायणराव का पुत्र) का विवाह निश्चित किया गया था । उसका मुहूर्त भी टहराया गया था । उस समय सरंजाम पधारने के लिए जयपुर नरेश को निमंत्रित किया गया है ।

निमंत्रण मूल मराठी में था और उसका अनुवाद हिन्दी में करके अन्य भाषी लोगों को भेजा गया था । अन्य प्रदेशों में राजनैतिक एवम् सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने के पश्चात् इन प्रदेशों की प्रादेशिक बोलियों या भाषा को अपने व्यवहार का माध्यम मराठा सरदारों ने बनाया । राजनैतिक क्षेत्र में इसकी आवश्यकता रही हो किन्तु सामाजिक एवम् सांस्कृतिक जीवन और व्यवहार के लिए भी मराठी के स्थान पर "हिन्दी" भाषा का प्रयोग एक विशेष महत्वपूर्ण तभी उल्लेखनीय बात है ।

प्राप्त पत्र विवाह का निमंत्रण है । यह "हिन्दी लेखा" मराठी निमंत्रण का अनुवाद ही लक्षित होता है । मराठी साधनों में प्राप्त मूल निमंत्रण इस प्रकार है— "श्री. राजश्री रावसाहेब यांचा लग्नाचा निश्चय माघ शु ९ स जाहला वाहे. तरी आप सहपरिवारें लग्नसारंमास या वयाचे करावे." (मराठी रियासत उत्तर विभाग जि. १ पृ. ४८१) पत्र में प्राप्त हिन्दी निमंत्रण इस प्रकार है—

"श्रीमंत राजश्री पंडित मुख्य प्रधान श्री रावसाहेब को व्याहा महा सुदी नवमी को करिवे को नहचो कीया है तो आप वने सरंजाम व्याह को आईयो ।"

ऊपर के निमंत्रण निर्देश से मराठों की भाषागत धारणा लक्षित होती है ।

पत्र की और एक बात उल्लेखनीय है । नारायणराव की मृत्यु के पश्चात् सवाई माधवराव का जन्म हुआ । नारायणराव की हत्या के अनन्तर कुछ समय रघुनाथराव पेशवा के नाते कारोबार करता था । मराठों के कारबारी और मुतसद्दियों को रघुनाथराव का पेशवा बनना नहीं जचता अतः प्रमुख कारबारी इकट्ठा होकर उन्होंने "बारभाई मंडल" स्थापन किया । उन्होंने सवाई माधवराव को ४० दिन की

आयु में छत्रपति से पेशवा पद दिलाकर उसके नाम से शासन चलाया । इस योजना में बुद्धिमान नाना फड़नवीस थे । बुद्धिमत्ता के कारण उन्होंने पेशवा की ओर से और उनके नाम पर अनेक महत्वपूर्ण काम किये । अपने कर्तव्य और पेशवा घराने के प्रमुख आधार एवम् सलाहकार बने ।

सवाई माधवराव पेशवा की शिक्षा एवम् व्यक्तिगत जीवन में प्रमुख मार्गदर्शक का कार्य नाना फड़नवीस ने किया । पेशवा सवाई माधवराव के काल से नाना फड़नवीस एक बुजुर्ग के समान कार्य करते रहे अतः यह निमंत्रण बालाजी जनार्दन याने नाना फड़नवीस के नाम से भेजा गया था ।

पत्र क्र. २०४ (फाल्गुन वदी ७ संवत ३७५० २२ फरवरी १७९४ ई०)

पत्र तुकोजी होलकर ने राजा सवाई प्रतापसिंह को लिखा है ।

पत्र में मराठों के श्रेष्ठ सरदार एवम् मुगल बादशाह के वकील-ह-मुतल्लक महादजी सिंधिया की मृत्यु की निश्चित तिथि दी गयी है ।" महादजी सींदे यांके ताई तप को आजार होय माह सुदि १३ के रात (सं. १८५०) परलोक परापत हुवो इवात की खबर अटे आइ ।"

महादजी सिंधिया की मृत्यु तिथि जो ऊपर दी गयी है वही अन्य मराठी इतिहासों में मिलती है (ता. १२.२.१७९४) । अतः यह पत्र उसी तिथि की पुष्टि करता है।

पत्र क्र० २०३ (मिती चैत वदी १ संवत १८५० १७ मार्च, १७९४ ई०)

पत्र सिंधिया के कारबारी शिवाजी बल्लाव बक्षी के द्वारा जयपुर के राजा सवाई प्रतापसिंह को लिखा है ।

पत्र इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि उसमें एक विवादास्पद तिथि का प्रामाणिक निर्देशन किया गया है । पूना से प्राप्त कागद-पत्र के आधार पर निम्नलिखित घटना और तिथि का निर्देशन किया गया है ।

पूना से प्राप्त कागद-पत्र के आधार पर निम्नलिखित घटना और तिथि का निर्देशन किया गया है ।

"श्रीमंत पंत प्रधान आणने वकील मुतलक आमीरल उमरा महाराजा दवलतराव सिंधे बाहादर मनसुर जंग याकु मिति फालगुण सुदि २ दुज के दिन हिंदुस्तान की मुक्तारि के सिर पाव दिया ।"

महादजी सिंधिया की मृत्यु पूना के निकट "वानवडी" में १३ फरवरी १७९४ ई० के दिन हुई । उनके कोई औरत पुत्र नहीं था । सं. १७९२ ई० में अपने नसीब में

पुत्रप्राप्ति नहीं यह जानकर अपने भतीजे आनंदराव के पुत्र "दौलतराव" को गोद लेना निश्चित किया परन्तु महादजी की मृत्यु तक यह कार्य न हो सका। महादजी की मृत्यु के पश्चात दौलतराव को सिंधिया की जागीर तथा अमीर उलउमरा का पद कब दिया गया इसके सम्बन्ध में अनेक भिन्न मत इतिहासकारों ने दिये हैं। एक मत "नातू" के इतिहास में है "महादजी की मृत्यु के पश्चात् तेरहवें दिन दौलतराव को पेशवा ने सिंधिया की जागीर पर नियुक्त किया।" दूसरा मत है कि अप्रैल महीने के अंत में उसे सिंधिया की जागीर दी गयी।" तीसरा कथन इस प्रकार है "दौलतराव सिंधिया को नायक वकील मुतल्लक के अधिकार एवम् वस्त्र श्रीमंत पेशवा ने एकादशी के सुमुहूर्त पर–१० मई १७६४ ई० को दिये।" (उपरोक्त तीनों मत मराठी रियासत उत्तर विभाग जिल्द २ पृ. ४१४ पर दिये हैं।)

पत्र में प्राप्त अंश से यह स्पष्ट होता हैं कि उत्तर हिंदुस्तान की मुखतारी के सिरपाव–याने चिन्ह और वस्त्र फाल्गुन सुदि २ को—३ मार्च १७६४ ई० को दिये। अतः सिंधिया की जागीर देने का या उत्तर हिंदुस्तान की मुखत्यारी देने के इस कार्य की निश्चित तिथि ३ मार्च १७६४ ई० पत्र में प्राप्त है जो महादजी की मृत्यु के पश्चात न तेरहवाँ दिन है न मई महीने का।

"मिति चैत सुदि ६ प्रतिपदा का सुमोहर्त आसवरिक तयारी करण की फरमाई।"

इस कथन के द्वारा लक्षित होता है कि फाल्गुन सुदि २ को सम्मान चिन्ह और अधिकार दिये गये उनको देने की आज्ञा हुई फिर भी उन्हें उत्सव समारोह के साथ ग्रहण करने के लिए मंगल समय "मुहुर्त" चैत सुदि १ प्रतिपदा निश्चित किया गया।

"दिल्ली से हजरत के मरातववा लिखत मुकतारी के पुनाकु भेजा।"

इस कथन से स्पष्ट होता है कि दिल्ली के बादशाह की ओर से सम्मान सूचक चिन्ह पूना को भेजे गये हैं।

("हजरत के मरातव" का एक अर्थ महापुरुष के डोरे, रस्सियाँ" इ०)

पत्र में लिखित बातों से दौलतराव शिंदे को उत्तर हिंदुस्तान की मुखतारी के मान चिन्ह देने के सम्बन्ध में विवादास्पद तिथि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। अतः इतिहास की दृष्टि से एक नया प्रमाण इस पत्र ने प्रस्तुत किया है।

(ग) पत्र क्र. ६८ (मिति वैसाख वदी ५ संवत् १७८३) स० १७२७ ई०

इस पत्र के अन्तर्गत कई महत्वपूर्ण बातों का संकेत मिलता है।

यह पत्र राजश्री राणा सबलसिंह तथा कुँवर नरेंद्रसिंह के द्वारा प्रधान अंबोजी को लिखा गया है। जब अंबोजी प्रधान उनकी तरफ जा रहे थे।

इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि छत्रपति की शासन व्यवस्था में अष्ट प्रधान होते थे पंत प्रधान (पेशवा) अमात्य, मंत्री, सुमंत, सचिव, पंडितराव, सेनापति और न्यायाधीश को छोड़कर शेष प्रधानों को युद्ध आदि भी करने पड़ते। (क)

पत्र में उल्लिखित पंडित अंबोजी प्रधान छत्रपति शाहू की नौकरी में होने वाले कोई प्रधान हैं।

यह पत्र मालवा उज्जैन अर्थात् नर्मदा के उत्तर में स्थित किसी परगने के अर्थात् छोटे मोटे राज्य के राजा द्वारा शिकायत के तौर पर लिखा गया है। इसमें उल्लेख है कि दक्षिण के कुछ शासकों—दावलजी सोमवंशी, रघुजी भोसले इत्यादि के द्वारा इस परगने से गुजरते हुए इसकी बरबादी की गयी। इससे स्पष्ट होता है कि यह छत्रपति के आश्रय में रहनेवाला छोटा मोटा राजा था।

इस पत्र से यह भी स्पष्ट है कि इसके पहले छत्रपति के पेशवा बालाजी विश्वनाथ और तदुपरान्त उनका पराक्रमी पत्र पेशवा बाजीराव प्रथम के आने का उल्लेख है। बाजीराव प्रथम का इस परगने में आने का समय स० १७२६ ई० दिया हुआ है साथ ही इनके द्वारा इस परगने के संरक्षित करने का उल्लेख है जो इस प्रकार है,—"गुदस्ते साल राजश्री बाजीराव जी आये थे तो अपने कर रख गये...।"

इस पत्र से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यह परगना छत्रपति के राज्य में (अधिकार में) था क्योंकि राजा का वाक्य है "साहेब हमारी दस्तगीरी करें...तो हमारा नीवाह होता हये अवर नहीं तो हमकुं भी श्री छत्रपति के हजुर मो रखो हम उहां चाकरी करेंगे" "परन्तु इस राह से हमारा नीरवाह नजर नहीं आवता।"

पत्र का महत्व राजनीति की दृष्टि से इसलिए है कि मराठों ने उत्तर भारत में अपना राज्य विस्तार करने का विचार और निश्चय किया। अपने इस कार्य के प्रारम्भ में उन्होंने प्रथमतया मालवा जीतने या अपने अधिकार में करने के सतत प्रयत्न किये। मालवा में स्थित छोटे मोटे जमीदारों को उन्होंने अपने स्नेहपूर्ण व्यवहार से अपनी रक्षा ऐवम् सुव्यवस्था के लिये मराठों की सहायता प्राप्त करते थे।

इतिहास की दृष्टि से पत्र उल्लिखित "गुदस्ते साल राजश्री बाजीराव जी

(क) मराठी रियासत २ पृ. १६४।

आये थे।" इस उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि बाजीराव ने उत्तर की ओर अपना राज्य फैलाने का कार्य सतत चालू रखा था। उसे पेशवा पद मिलने के (सं० १७२० ई०) उपरान्त कुछ साल अपने राज्य के शत्रुओं से लड़ना झगड़ना पड़ा, निजाम की ओर से छत्रपति के राज्य परे होने वाले आक्रमणों को रोकना पड़ा फिर भी मालवा-उज्जैन की ओर से पेशवा बाजीराव ने अपना ध्यान नहीं हटाया और वे मालवे में जाकर अपना अधिकार जमाते रहे।

उत्तर भारत में मराठा राज्य बढ़ाते समय पेशवों ने जो नीति अपनायी उसका वर्णन प्रस्तुत पत्र से प्राप्त होता है।

पत्र क्र. १२ (आषाढ़ सुदी ३ संवत् १७९५. २७ जून, १७३९ ई०)

यह पत्र महाराजा छत्रसाल बुंदेला के दो पुत्र महाराजा हृदयशाह (हीरदेसाहि) और जगतराज के द्वारा लिखा गया है। पत्र में कई महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख है।

"राजा हीरदेसाहिजू देव और राजा जगतराजजू देवनै जागीर दई राउ बाजीरावजू और पंडीत चिमनाजु कौ लाख पाँच की।" इस उल्लेख के द्वारा एक महत्वपूर्ण घटना का संकेत मिलता है।

सं० १७२९ ई० में इलाहाबाद के सूबेदार मुहम्मदखां बंगश ने महाराजा छत्रसाल के राज्य पर आक्रमण किया। जैतपूर के युद्ध में महाराजा छत्रसाल और उसके पुत्रों ने आत्मसमर्पण कर दिया और वे बंगश बन गये। छत्रसाल ने पेशवा बाजीराव और उनके भाई चिमाजी आप्पा से सहायता के लिए याचना की जो इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है। पेशवा बाजीराव ने छत्रसाल की मदद करके जैतपूर की हार को विजय में परिणित किया और महाराजा छत्रसाल के राज्य एवम् सम्मान की रक्षा की। इसलिए कृतज्ञता एवम् राजनीतिज्ञ कारणों से प्रेरित होकर उन्होंने पेशवा को अपना तृतीय पुत्र मानकर राज्य का तीसरा भाग देने का वचन दिया। (क)

छत्रसाल के पुत्र "हीरदेसाहि (हृदयशाह) और जगतराज ने अपने पिता का उपरोक्त वचन अपना निजी वचन माना।

यह जागीर "राउ बाजीराहजु मुख्य प्रधान श्री पंडीत चिमनाजी को" दी थी। इसमें दोनों नामोल्लेख महत्वपूर्ण हैं। बंगश छत्रसाल की लड़ाई के समय

(क) महाराजा छत्रसाल बुंदेला पृ. ९७।

पेशवा वाजीराव का छोटा भाई "चिमाजी आपा" उपस्थित था और उसने सेवा सहित क्षत्रसाल की सहायता की। ये दोनों भाई आखिर तक एक दूसरे का अभिन्न साथ देते रहे। इस जागीर में पेशवा वाजीराव के साथ चिमाजी का नामोल्लेख इतिहास का एक मौलिक महत्वपूर्ण संकेत है।

महाराजा छत्रसाल ने पेशवा वाजीराव और चिमाजी को पांच लाख की जागीर देने का वचन दिया किन्तु उनके जीवनकाल में यह कार्य नहीं हो सका। पत्र के काल तक जून १७३६ ई० तक पांच लाख की जागीर नहीं दी गयी थी। पत्र में लिखित अंश "पहीली लाख सवादोई की हाल दई लाख पौने तीन की सो अपने परीगने में ते तकसीम देखीं के भरि देहि।" इसकी सूचना देता है कि सवा दो लाख की जागीर अव दी गयी है और शेष पोने तीन लाख की जागीर परगने के बँटवारे को देखकर दी जाएगी।

"जव इहाकांमु आई लगे तव भली फौज सा आइ सामिल होइ।" इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि इनका राज्य उस काल तक खतरे से खाली नहीं था। अतः राज्य की रक्षा के लिए पेशवाओं की ओर से सहायता की आशा रखी गयी और उनसे काफी सेना के साथ आने की प्रार्थना की गयी।

पत्र की तारीख आषाढ़ सुदी ३ सुक्रे संवत १७९५ (२७ जून १७३६ ई०) है और पत्र वुन्देलखंड के भौरासो स्थान से लिखा गया है।

पत्र के ऊपर दाहिनी ओर लिखा है "नकल" अतः यह पत्र मूल पत्र की प्रतिलिपि है।

पत्र का महत्व इस लिए है कि लगभग सभी इतिहासकारों ने यह लिखा है कि यह जागीर केवल पेशवा वाजीराव को ही दी गयी थी किन्तु पत्र में प्राप्त उल्लेख से यह स्पष्ट है कि यह जागीर पेशवा वाजीराव और उनके छोटे भाई चिमाजी आपा दोनों को दी थी। पत्र में प्राप्त चिमाजी के नाम का उल्लेख एक मौलिक वात है जिसका उल्लेख अन्यत्र अप्राप्य है। पत्र एक नयी मौलिक सूचना देता हैं।

पत्र क्र. १ (स. १७५८ ई० के पूर्व.)

यह पत्र मूल पत्र की प्रतिलिपि होगी। इसमें पत्र का अन्तिम भाग और दिनांक इत्यादि नहीं है।

पत्र पेशवा वालाजी वाजीराव (नाना साहेव) के द्वारा वुन्देलखंड के राजा जगतराज को लिखा गया है। पत्रों में कुछ महत्वपूर्ण वातें हैं।

महाराजा छात्रसाल की मृत्यु के पश्चात् उसका राज्य प्रधानतया तीन भागों में विभाजित हुआ। प्रथम भाग हृदयशाह को पन्ना मऊ इत्यादि के आसपास का ४२ लाख रु० आमदनी का मिला। द्वितीय भाग जैतपुर, चरखारी बाँदा और आसपास का ३६ लाख रु० आमदनी का जगतराज को मिला। तृतीय कालपी, झाँसी इत्यादि के आसपास का ३३ लाख रु० आमदनी का भाग पेशवा को मिला।

अपने राज्य में जगतराज स्वतंत्र रूप से राज्य करते थे। पत्र के संकेत से यह स्पष्ट होता है कि जगतराज अपने पौत्र कुँवर गुमानसिंह को युवराज्य का टिका करना चाहते थे। इस कार्य में वे पेशवा बालाजी बाजीराव की सहायता चाहते थे।

इतिहास से यह प्रमाणित है कि "जगतराज के १७ पुत्र थे। सब से बड़े पुत्र का नाम दिवान सेनापति था। इनसे महाराज जगतराज प्रसन्न न थे इसलिए अपने अन्य पुत्र "कीरतराज" को जगतराज ने युवराज बनाया। (क) "कीरतसिंह के दो लड़के थे उनके नाम गुमानसिंह और खुमानसिंह थे।" (ख) जगतराज की मृत्यु मऊ में सं. १८१५ ई० में हुई। "किन्तु कीरतसिंह की मृत्यु इसके पहले हो चुकी थी।" (ख)

यह स्पष्ट है कि गुमानसिंह को युवराज्य का टिका करने की उपरोक्त बात कीरतसिंह की मृत्यु के पश्चात् एवम् जगतराज की मृत्यु के पूर्व की है।

जगतराज की सूचना का पेशवा बालाजी बाजीराव का उत्तर महत्वपूर्ण एवम् राजनीति की दृष्टि से श्रेष्ठ है। "गुमानसींग तुम्हारे छोटे बेटे के छोटे बेटे यां सिवाए आपके जेठे बेटे होंगे तो ऐ बात कैसी पेस जाई को देगे।" पेशवा के इस कथन से कई बातों पर प्रकाश पड़ता है। (१) युवराज्य का टिका बड़े बेटे को ही दिया जाता था। (२) जगतराज इस राजनीति की परंपरा को तोड़ना चाहते थे। (३) अपने अन्य पुत्रों का अधिकार छीनकर वे (कीरतसिंह के बेटे) "छोटे बेटे के छोटे बेटे"—गुमानसिंह को युवराज बनाना चाहते थे।

पेशवा के उत्तर से यह भी स्पष्ट है कि (१) पेशवा बालाजी बाजीराव इस सूचना से सहमत नहीं हैं। वे राजनैतिक परम्परा को निभाना चाहते हैं, तोड़ना नहीं। यदि जगतराज के पुत्रों में से कोई इसमें आपत्ति उठाए तो जगतराज की सूचना

(क) बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास पृ. २३७।
(ख) " " पृ. २३८।

कैसी कार्यान्वित होगी। पेशवा ने वताया है कि यह मुकदमा समान्य नहीं तो राज्य का है अतः उसमें अत्यधिक समय और खर्च होगा। (४) पेशवा का बुद्धि कौशल इसमें लक्षित होता है कि उसने जगतराज की सूचना स्पष्ट रूप से नहीं टाली किन्तु इस सूचना के कार्यान्वित होने में आने वाली कठिनाइयां प्रस्तुत की।

इतिहास से यह वात स्पष्ट है कि जगतराज ने अपनी यह इच्छा छोड़ दी न गुमानसिंह युवराज वना न अन्य किसी को युवराज पद दिया गया। इसके लिए इतिहास का यह कथन प्रमाण माना जा सकता है। "गुमानसिंह और खुमानसिंह ने जगतराज की मृत्यु का समाचार अजयगढ़ में पाया। इनके पिता कीरतसिंह को जगतराज ने युवराज वताया था। इसलिए खुमानसिंह और गुमानसिंह ने राज्य पर दावा किया।" (ग)

पत्र पर मिति का उल्लेख नहीं अतः उसका निश्चित काल वताना कठिन है फिर भी यह पत्र जगतराज की मृत्यु के (सं. १८१५ के) पूर्व का लक्षित होता है।

"पेशवा–वुन्देला" सम्वन्ध की दृष्टि से यह पत्र महत्वपूर्ण है और इससे यह भी स्पष्ट होता है कि वुन्देला राजा अपने राजनैतिक कार्यों में पेशवों की सहायता एवम् मार्गदर्शन लिखा करते थे।

पत्र क्र. १२२, १७६

पेशवों तथा जयपुर के राजाओं में "पगड़ी वदल" या पगड़ी वदल भाईचारा" स्थापित करने की वात दोनों शासकों की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण वात है जयपुर के राजा सवाई जयसिंह और पेशवा वाजीराव प्रथम में जो आत्मीयता निर्मित हुई वह आगे ही चलती रही। सवाई जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् राजगद्दी की प्राप्ति के कारण उत्पन्न झगड़ों में पक्ष विपक्ष सहायता प्रदान करने एवम् दोनों पक्ष के राजाओं में सुलह करने की और उसके पालन में कमी कड़ाई की आचरण के नीति के कारण मराठों और रजपूतों में मनमुटाव हो गया। पेशवों और मराठों की ओर आखिर तक जयपुर के राजाओं से स्नेहभाव रखने का एवम् निभाने का प्रयत्न किया गया। इस स्नेहभाव का व्यवहार "पगड़ी वदल भाईचारे" के द्वारा उल्लिखित है।

(ग) वुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास पृ. २३८।

प्रस्तुत पत्रों में ४ पत्र इस विषय से सम्बन्धित हैं। इनमें दो महत्व के हैं उनका विवेचन किया जाएगा।

पत्र क्र. १२२ (पुस सुदि २ संवत १८२५ ३० दिसम्बर १७७० ई०

पत्र मुख्य प्रधान पेशवा माधवराव ने जयपुर के राजा सवाई पृथ्वीसिंह को लिखा है।

इस पत्र में कई संकेत प्राप्त हैं।

पत्र के प्रारम्भ में लिखा है " तीन पीढी को स्नेह चलता आया तीसकी अभि वृधि करना।"

तीन पीढ़ियों का स्नेह दोनों ओर से सत्य एवम् स्पष्ट है। जयपुर के राजा सवाई जयसिंह और पेशवा बाजीराव प्रथम में यह स्नेहभाव प्रथमतया स्थापित हो गया। जयपुर नरेश सवाई जयसिंह की मृत्यु (स. १७४३ ई०) के पश्चात् उसके पुत्र ईश्वरीसिंह और माधोसिंह गद्दीपर बैठे। ईश्वरीसिंह की मृत्यु सन् १७५० ई० में हुई और माधोसिंह की मृत्यु स. १७६३ ई० में हुई। माधोसिंह की मृत्यु के पश्चात् पृथ्वीसिंह गद्दी पर बैठा।

पेशवों की ओर से भी बाजीराव से यह तीसरी पीढ़ी थी। पेशवा बाजीराव प्रथम की (स. १७४० ई०) मृत्यु के अनन्तर इसका ज्येष्ठ पुत्र बालाजी (नानासाहेब) पेशवा बना। बालाजी बाजीराव की मृत्यु स. १७६१ ई० में हुई। उसके पश्चात् माधवराव पेशवा बना अतः दोनों ओर से तीन पीढ़ियों का स्नेहभाव स्पष्ट है।

"पघड़िबदल होना ऐसा हेत आपके दील में है सोहि हमारे दिलमें है।"

"पगड़ीबदल भाईचारा" स्थापन करने की प्रबल इच्छा जयपुर के राजा पृथ्वीसिंह के मन में थी। उसके काल में मराठों की शक्ति सारे भारत में सर्व श्रेष्ठ थी। पेशवों की मदद जयपुर राज्य की स्थिरता एवम् सुरक्षा के लिए आवश्यक थी। पेशवा और मराठों की सहायता प्राप्त कर उसे साथी बनाने के लिए जयपुर के राजा पृथ्वीसिंह ने यह पगड़ी बदल भाईचारे की प्रार्थना की होगी।

उत्तर भारत की राजनीति में मराठों के लिए मित्र प्राप्त करने के लिए पेशवा सदैव तैयार थे अतः पेशवा माधवराव ने पृथ्वीसिंह की प्रार्थना स्वीकृत की।

"अब हम आपके ताई बड़े माहाराज की जगा जानत है सो हेत उनका चित में था सो आप उसकु सेवट निभावोगे।"

पेशवा माधवराव ने लिखा है कि हम आपको बड़े महाराज के स्थान पर मानते हैं। बड़े महाराज का संकेत "सवाई जयसिंह" है। आगे लिखा है कि जो इच्छा उनके मन में थी वही इच्छा तुम पूर्ण करोगे। मराठों के साथ मित्र भाव स्थापित कर एक दूसरे की मदद करने तथा एक दूसरे के राज्य सम्बन्ध एवम् रक्षण में सहायता प्रदान करने की इच्छा प्रधानतया उनके—राजा सवाई जयसिंह के-मन में थी। यही आशा महाराजा पृथ्वीसिंह से की गयी।

आपकी ओर से भेजे गये कागद प्राप्त हुए किन्तु श्रेष्ठ व्यक्तियों को जल्दी भेजने की सूचना है।

इस पत्र के द्वारा मराठा-राजपूत सम्बन्ध में स्नेहभाव की वृद्धि करने की इच्छा का उल्लेख है।

पत्र क्र. १७६ (मिति कुआँर वदी ८ संवत १८२६ १२–१३ सितम्बर १७७० ई०)

पत्र जयपुर के राजा सवाई पृथ्वीसिंह को पेशवा माधवराव की ओर से लिखा गया है।

पत्र में दो प्रधान घटनाओं का उल्लेख मिलता है। प्रथम "पगड़ी बदल भाईचारे" के सम्बन्ध में और द्वितीय जाट के बंदोबस्त के सम्बन्ध में।

प्रारम्भ में राजा के द्वारा भेजे गये कागद पत्र प्राप्त होने की तथा स्नेह वृद्धि के बारे में की हुई प्रार्थना भी सुनी गयी इसका उल्लेख है।

अब तो पगड़ी बदल भाईचारा हुवा। "पगड़ी बदल भाईचारा होने से "दील की सफाई वा सनेह की मजबुती दोनों त्रफु की आगु से अति बीसेस हुई सो अब वा राज अर या राज दोन नाही येक ही जाणोगे।"

उक्त कथन से स्पष्ट है कि भाईचारा स्थापित होने से दोनों राज्यों में स्नेह वृद्धि हुई। दोनों राज्यों में एका निर्मित हुआ और दो राज्य मानों एक ही हो गये।

"आपने पघड़ी व मैंसरपेंज भेजी सो पहोची बड़े सत्कार से लीई अब याहां से भी पघड़ी व मैंसरपेंच राजश्री देवराव महोदव ईनके साथे भेजी है सो सतकार से आपनें लेणा।"

"पघड़ी बदल भाईचारा" के सम्बन्ध में होनेवाली रीति-रस्मों में एक दूसरे को "पगड़ी भेजना" एक महत्वपूर्ण रस्म है। इस प्रकार भेजी हुई "पगड़ी" को समारोह से धारण किया जाता था। जयपुर के राजा पृथ्वीसिंह की ओर से भेजी

गयी पगड़ी पेशवा माधवराव के सरकार से ग्रहण की और अपनी ओर से जयपुर के राजा को पगड़ी भेजी जो सरकार से लेने की सूचना की गयी है।

इस "पगड़ी वदल भाईचारे" के साथ दोनों राज्यों में सुलह हुई उस सुलह को स्वतंत्र रूप से लिखा गया है। उसे स्वीकृत करके अपनी मुहर से उसे लौटाने की सूचना की गयी है।

पत्र के उत्तरार्थ में जाटों के बारे में लिखा गया है।

जाटों ने अपनी ताकत बढ़ाकर राजस्थान, बुन्देलखंड के अनेक स्थानों में आतंक फैलाया। जयपुर के राज्यों पर भी वे आक्रमण करते रहे। मराठों को भी उन्होंने सताया था। अब जब जयपुर और मराठी राज्य में एका हो गया तब जाट दोनों का दुश्मन बना अतः उसका बन्दोबस्त करना जरूरी था।

"जाटने सजा देणे कु सरकार के सरदार श्री रामचन्द्र गणेश वा वीसाजी क्रसन वा राज्यश्री तकुजी हूलकर वा माधजी सींधे भेज्ये हैं सो आपके मनसूबे वा सलाह सु जाटकु नतीजा देवेंगे।"

जाटों के आतंक से पीड़ित इस राजा की सलाह के अनुसार जाटों को सजा देने के लिए मराठों के श्रेष्ठ सरदार भेजे गये। ये चारों सरदार श्रेष्ठ सेनापति भी थे अतः जाट के विरुद्ध यह जोरदार योजना बनायी गयी।

"हिंदोस्तान को मनसूबा करने को होय सो दोनों तरफ सो उचित होये सो करेंगे।"

यह एक संकेत है। उत्तर भारत के राज्य शासन के सम्बन्ध में जो व्यवस्था एवम् प्रबन्ध करना है वह दोनों जयपुर के राजा और पेशवा मिलकर करें। यह कथन स्पष्ट करता है कि दोनों को उत्तरी भारत के शासन में अधिकार प्राप्त करने की इच्छा थी।

पत्र मराठा-राजपूत एवम् मराठा-जाट सम्बन्ध की सूचना देता है।

* नौवाँ अध्याय *

नौवाँ अध्याय

राजनैतिक एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन का प्रतिविम्ब

प्रस्तुत पत्र अठारहवीं शताब्दी से सम्वन्धित है। भारतीय इतिहास की दृष्टि से इस शताब्दी का काल अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजनैतिक परिस्थिति तथा सामाजिक जीवन की दृष्टि से भी यह शताब्दी महत्वपूर्ण हैं। राजनैतिक अस्थिरता और केन्द्रीय शासन में होने वाले अनेक विध परिवर्तनों के कारण राजनैतिक एकता नष्ट हुई। इनके परिणाम तथा सामाजिक जीवन पर होने वाले आघातों के कारण सामाजिक जीवन भी अस्त-व्यस्त हो गया था। अतः तत्कालीन राजनैतिक एवं सामाजिक स्थित्यंतर का अध्ययन कठिन है और कठिन होते हुए भी महत्वपूर्ण है।

औरंगजेव की मृत्यु के पश्चात् केन्द्रीय मुग़ल शासन दुर्वल वन गया। शाहज़ादों में और तदनन्तर प्रवल सरदारों में शासन-सत्ता के लिये और रोहिलों, जाटों तथा मराठों के दिल्ली का राज्य-शासन अपने हाथों में रखने के लिये होने वाले संघर्षों के कारण केन्द्रीय मुगल सत्ता दिन-व-दिन दुर्वल वनती गयी। इरानी-दुरानी, शिया-सून्नी, देशी-परदेशी, हिन्दु-मुसलमान इत्यादि भेदों के कारण निर्मित अनेक विध संघर्षो एवम् लड़ाइयों ने केन्द्रीय सत्ता को विनाश की गर्त में धकेल दिया।

संघर्ष कालीन इस स्थिति में अपने को स्वतन्त्र वनाने की भावना सर्वत्र लक्षित होती है। छोटे-वड़े राजा, ठाकुर, जमींदार, सरदार मौका प्राप्त होते ही स्वतंत्र वनने का और अपनी ताक़त वढ़ाने का प्रयत्न करते थे। प्रवल सरदार एवं राजा लोग स्वार्थ से प्रेरित होकर लाभ की दृष्टि से इन संघर्षों में मददगार होते थे। निरंकुश वनने की भावना से प्रेरित इन लोगों को शासन व्यवस्था के भीतर रखने के लिये तथा उनसे कर उगाहने के लिये कड़ाई से काम लेना पड़ता। इन्हें शासन के भीतर रखकर कार्य करा लेने के लिये कभी उनसे उनकी जमींदारी छुड़ा लेने की तो कभी जागीर वन्द करने की धमकी देनी पड़ती या कार्यवाई करनी पड़ती। जब इस प्रकार की नौवत आ जाती तो ये सरदार, जागीरदार, ठाकुर, जमींदार अपनी भूमि और अधिकार कायम रखने के लिये अपनी ओर से सभी प्रयत्न करके "सरकार के हुकमी चाकर" वनते।

स. १७५२ ई० में बादशाह और मराठों में जो संधि हुई उसके अनुसार मराठों को बादशाह और साम्राज्य की भीतरी तथा बाहरी शत्रुओं से रक्षा करने की जिम्मेदारी उठानी पड़ी। अत: मराठों का मुसलमान सरदार, राजपूत, रोहिले, जाट इत्यादि से तथा छोटे बड़े राजा जागीर, जमींदार, ठाकुर आदि से भिन्न भिन्न प्रकार से सम्बन्ध आ गया। शासन व्यवस्था का भार संभालते समय मराठों का जो सम्बन्ध इनसे आ गया उसका विशद नहीं तो एक संक्षिप्त स्वरूप पत्रों में मिलता है।

मुगल सामाज्य की रक्षा का कार्य करने के साथ ही मराठों को अपने स्वतंत्र राज्य की रक्षा और शासन का कार्य करना था। अत: पंजाब से बंगाल तक और काश्मीर से कृष्णा तक फैले हुए देश में शांति एवम् सुव्यवस्था रखने का और दूसरी ओर अपने मराठी राज्य की सुरक्षा एवम् संवर्धन करने का कठिन कार्य मराठों को करना पड़ा।

प्रस्तुत पत्रों में से अधिकांश पत्र राजनैतिक परिस्थिति से सम्बन्धित हैं फिर भी तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का रूप इनसे स्पष्ट रूप से और विशद रीति से नहीं मिलता। प्राप्त आधारों से संकेत रूप में मिलने वाले वर्णन को स्पष्ट करने का प्रयत्न इस अध्याय में किया गया है।

प्राप्त पत्र प्रधानतया राजनैतिक कारणों से लिखे गये हैं फिर भी कुछ पत्र जरूर ऐसे हैं जो तत्कालीन सामाजिक एवम् साँस्कृतिक जीवन के कुछ अंगों का निर्देश करते हैं। जो प्रस्तुत पत्र आजतक अप्राप्त और अप्रकाशित हैं अत: इस मूल और प्रामाणिक स्रोत से प्राप्त तत्कालीन राजनैतिक सामाजिक एवम् सांस्कृतिक स्थिति के निर्देश (उल्लेख) अपना स्वतंत्र और विशेष महत्व रखते हैं।

तत्कालीन स्थिति का अध्ययन दो भागों में किया है। प्रथम राजनैतिक और द्वितीय सामाजिक एवम् सांस्कृतिक।

(क) राजनैतिक

मराठा-बुंदेला सम्बन्ध

मराठों का बुंदेलों से प्रथम सम्बन्ध महाराजा छत्रसाल के जीवनकाल में आ गया। राजा शिवाजी और महाराजा छत्रसाल की भेंट सन् १६६७ ई० में हुई। तब से यह सम्बन्ध माना जाता है। मराठों का चिर सम्बन्ध पेशवा बाजीराव के काल में स्थापित हो गया। छत्रसाल वंश के युद्ध में पेशवा बाजीराव और उसके छोटे भाई

चिमाजी आपा ने सामयिक सहायता दी। इस सहायता के कारण छत्रसाल के राज्य की और प्रतिष्ठा की रक्षा हुई। इस सहायता से प्रभावित होकर तथा राजनैतिक कारणों से प्रेरित होकर छत्रसाल ने बाजीराव को अपना तृतीय पुत्र माना और इसके उपलक्ष्य में बाजीराव और चिमाजी को राज्य का तीसरा भाग-पाँच लाख की जागीर देने का वचन दिया। महाराजा छत्रसाल के जीवन काल तक यह जागीर पेशवों को नहीं मिली। स. १७३६ ई० में २। लाख की जागीर पेशवा बाजीराव और चिमाजी को सम्मिलित रूप से दी गयी। (क) यह जागीर छत्रसाल के दो श्रेष्ठ पुत्र हृदयशाह और जगतराज ने दे दी और इसी समय शेष पौने तीन लाख की जागीर शीघ्र देने का इकरार किया। (क)

महाराजा छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र अपने अपने राज्य की रक्षा एवम् शासन में ही उलझ गये। पेशवा बाजीराव के समय प्रस्थापित सम्बन्ध महाराजा छत्रसाल के वंशजों ने कायम रखे। बाजीराव के जीवन काल में छत्रसाल के पुत्र-पौत्र बाजीराव को अपने समाचार भेजा करते थे। (ख) बाजीराव की मृत्यु के पश्चात् बालाजी बाजीराव (नानासाहेब) पेशवा बना। बालाजी के शासन काल में मराठों का राज्य उत्तर भारत में फैल गया और उसने अपनी जड़ जमायी। बुंदेल खंड के विभिन्न राजा, महाराजा, महाराज कोमार अपने अन्तर्गत राज्य कार्यों में पेशवा की सहायता मांगते रहे और प्राप्त करते रहे।

राजनीति की दृष्टि से कठिन समस्या पर पेशवा बालाजी को राय मांगते थे और उनके सुझाव के अनुसार आचरण किया करते थे। (ग) कभी जो जुल्म किया जाता उसकी शिकायत पेश करते। (घ) और मराठों से सहायता की याचना करते रहते। (ङ)

पेशवा बालाजी के काल में ही अनेक मराठा सरदार और पेशवा का भाई रघुनाथराव शासकीय कारणों से निर्मित लड़ाइयाँ लड़ते रहे और विजय प्राप्त करते रहे। राजनैतिक अस्थिरता के दिनों में राज्य पर आने वाले संकट देखकर उनसे मुक्त होने के लिए छत्रसाल के वंशज मराठा सरदारों और शासकों की सहायता की याचना करते रहे। (च)

(क) प. १२। (ख) प. ३२।
(ग) प. १। (घ) प. १०।
(ङ) प. ६२। (च) प. ५५।

कभी अपने ऊपर किये गये जुल्म का वर्णन करके उसके परिमार्जन के लिए विनती करते थे। (छ)

कभी कुशल समाचार के पत्र भेजा करते थे।(ज) पानीपत के भयंकर रण-संग्राम में मराठों की हार हुई इससे लाभ उठाकर मराठों के दुश्मनों ने मराठों के पैर उत्तर भारत से उखाड़ने का भरसक प्रयत्न किया। दस साल के भीतर मराठों ने फिर अपना प्रभुत्व स्थापित किया उन्होंने दिल्ली के बादशाह को तख्त पर बिठाया और बादशाह की ओर से वे शासन चलाने लगे। इस काल में भी बुंदेल खंड के ये राजा और राजवंश के लोग मराठों से ईमानदार रहकर उनसे सहायता की आशा रखते रहे।(झ) कभी स्थानिक मराठा अधिकारियों से या शासकों से किसी कठिनाई की गुंजाइश रहती थी तब वे शिकायत पेश करके, न्याय प्राप्त भी करते।(ट)

सामान्यतया इन पत्रों से मराठा-बुंदेला संबन्ध के बारे में यह कहा जा सकता है कि ये संबन्ध मैत्रीपूर्ण रहे। कभी किसी प्रकार की समस्या निर्माण होने पर पत्र व्यवहार करके उसे सुलझाने का प्रयत्न किया करते थे। बुंदेलखंड का महाराजा छत्रसाल का राज्य-उनके पुत्र-पौत्रों में बँट जाने से अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हुआ। इनमें से अधिकतर राजा मराठों के प्रति ईमानदार रहे। अपनी आवश्यकतानुसार वे मराठा शासकों से सहायता प्राप्त करते रहे और मराठा-शासक भी उन्हें मदद देते रहे।

मराठा-जाट-सम्बन्ध

पानीपत के सं० १७६१ ई० के युद्ध में सूरजमल जाट मराठों की सहायता करने की इच्छा से फौज सहित दिल्ली आ गया। किन्तु लड़ाई के पूर्व ही किसी कारणवश वह अपने राज्य में लौट गया। पानीपत की भगदड़ में भागने वाले पुरुषों तथा स्त्रियों को सूरजमल ने आश्रय दिया और मराठों के प्रति अपनी सदयता एवम् मित्रता प्रकट की। सूरजमल की मृत्यु के पश्चात् जवाहरसिंह जाटों का नेता बना। नजीबखाँ रोहिले का पराभव करने से उसका अभिमान बढ़ गया। और अपना राज्य विस्तार कर उत्तर भारत के अधिकांश भाग पर अपना स्वामित्व प्रस्थापित करने के प्रयत्न में वह लगा। अपनी महत्वाकांक्षा में मराठों को बाधक समझ कर उसने

(छ) (प. १५)। (ज) (प. ६२)।
(झ) (प. ८, ५४)। (ट) (प. ६४)।

मराठा–विरोध की नीति अपनायी। पानीपत युद्ध के पश्चात् मराठों का उत्तर भारत का शासन दुर्बल हुआ। इससे लाभ उठाकर मराठों के पैर उत्तर भारत से उखाड़ने का तथा उन्हें नर्मदा के दक्षिण खदेड़ने का प्रण जवाहरसिंह जाट ने किया। अपने प्रण को पूर्ण करने के प्रयत्न में वह लग गया।

जयपुर के राजा सवाई जयसिंह ने जवाहरसिंह जाट के पूर्वजों को उत्तेजित कर उनकी शक्ति वढ़ाने में सहायता प्रदान की थी। जवाहरसिंह जयपुर राजा के उपकार भूलकर उस राज्य पर आक्रमण करने लगा। जयपुर के राजाओं की सम्मान मर्यादा नष्ट करके वह उन्हें सताता रहा। (ठ) अतः ये राजा मराठों के पास सहायता के लिए याचना करते थे। मराठों ने भी जयपुर के राजाओं की मदद करके इस दुश्मन को दवाने के प्रयत्न प्रारम्भ किये। इसके कारण जाटों के साथ कई लड़ाइयाँ हुईं। वढ़ती हुई मराठा शक्ति के सामने जाटों को हार खानी पड़ी। (ठ)

सन् १७६८ ई० में जवाहरसिंह की मृत्यु हुई।(ड) इसके पश्चात् नवलसिंह जाटों का नेता वना उसने जयपुर और मराठों के साथ जवाहरसिंह की नीति चालू रखी अतः उसको दवाने के लिए दोनों को प्रयत्न करने पड़े।(ढ) मराठों का पक्ष शक्तिशाली होने से नवलसिंह की हार हुई।(ण) धीरे-धीरे जाटों की शक्ति क्षीण होती गयी और उत्तर भारत के शासन में उनका प्रभुत्व नष्ट हुआ।

रोहिला लोगों से मराठों का सम्बन्ध

(१) "दसवीस रोहिले फकीर होके आये हैं इनसें वहम कोई नही जो कहोगे नही रखणे तो मुलक से काड देंगे।"(त)

वादशाह शाह आलम द्वितीय को दिल्ली के सिंहासन पर विठाने के पश्चात् मराठा सरदार विसाजी कृष्ण ने रोहिलों के प्रदेश पर ऐसा जवरदस्त आक्रमण किया कि रोहिला लोग अपना मुल्क छोड़कर तितर वितर होकर चारों ओर भाग गये। रोहिलों के मुल्क से निकट प्रदीपशाह नाम के किसी राजा के प्रदेश में फकीर होकर (सव कुछ गंवाकर) आने वाले रोहिलों को अपने राज्य में रखने के सम्बन्ध में प्रदीपशाह सलाह पूछ रहे हैं। पानीपत के युद्ध के पश्चात् ११ वर्षों के काल में

(ठ) प. १७४। (ड) प. ४६।
(ढ) प. १२३। (ण) प. १२४।
(त) प. ३।

मराठों ने अपने दुश्मन रोहिलों को इस प्रकार हराकर, भगाकर सारे भारत में अपने पराक्रम की धाक जमा ली और पानीपत की हार का बदला चुकाया।

(७) रोहिलों के प्रदेश पर आक्रमण करके उन्हें करारी हार देकर विजय प्राप्त करने के मराठों के पराक्रम का उल्लेख एक अन्य स्थान पर मिलता है। "पं० श्री० पंडित बीसाजी करन रुहेलन की न्याउ मारी फतै पाई।"(य)

अतः मराठा और जाटों का सम्बन्ध जो पत्रों के आधार पर मिलता है उसमें मराठों के द्वारा जाटों के दमन का ही उल्लेख मिलता है।

मराठा-राजपूत सम्बन्ध

जयपुर के राजा सवाई जयसिंह और पेशवा बाजीराव के काल से राजपूत मराठा सम्बन्ध दृढ़ हो गया। इन दो राज्यों में और व्यक्तियों में जो मित्रता निर्माण हुई वह सवाई जयसिंह के काल में दिनों दिन बढ़ती गयी और यह स्नेह दोनों के जीवनकाल पर्यन्त दृढ़ रूप से स्थापित हुआ। (द) सवाई जयसिंह ने पेशवा बाजीराव की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र पेशवा बालाजी बाजीराव के साथ वही स्नेह दिखाया और उत्तर के राजशासन में दोनों एक दूसरे की सहायता करते रहे। सवाई जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् जयपुर की गद्दी के कारण झगड़ा हो गया। पेशवा बालाजी बाजीराव ने माधोसिंह और ईश्वरीसिंह में समझौता किया। किन्तु ये दोनों राजा आपस में झगड़ते रहे और जयपुर तथा मराठों का पहले जैसा स्नेह नहीं रहा। फिर भी राजा सवाई जयसिंह के कार्य तथा मित्रता के स्मरण में मराठों ने जयपुर के राजाओं की सहायता की और आगे करते रहे। (ध)

जब जवाहरसिंह जाट अपनी शक्ति और राज्य बढ़ाता था तब उसने जयपुर के राज्य पर भी आक्रमण करना प्रारम्भ किया। राजा माधोसिंह की मराठों के साथ मित्रता भी उसे खलने लगी। जवाहरसिंह ने मराठों को नर्मदा पार खदेड़ने के अपने प्रयत्न में जोधपुर के राजा विजयसिंह की सहायता प्राप्त की। (प. ४६) और उन्होंने माधोसिंह के परगने में आतंक फैलाकर उसके कुछ स्थान जीत लिये।(न) माधोसिंह ने मराठों से प्रार्थना करके उन्हें सहायता के लिए बुलाया। मराठों ने भी राजा माधोसिंह की मदद करने का तथा जाट को दबाने का प्रयत्न किया। "जाट को वा राज के फौज को कजीयो मुनवा में आयो...भारी फौज वा तोपखाना मुं सीताव सामील होय...मुखालफ सजाको पोहचे।(प)"

(य) प. ८ (द) प. २००
(ध) प. १३३ (न) प. ४६ (प) प. १७२

"जाट ने कैलासवासी वा राजसुं घणी वे मरजाद कीइ थी'''हाल अठा सुं फौज और राजकी तरफ रवाना कीइ सो वेशाही पोहची. जाणोला और भी फौज को तांतो लगायो छे।" (फ)

जवाहरसिंह जाट की मृत्यु के पश्चात् नवलसिंह जाटों का नेता बना उसने भी मराठा-विरोध नीति चलायी। यद्यपि मराठा सरदारों ने जयपुर के राजाओं की सहायता की थी फिर भी कभी स्वार्थबुद्धि से प्रेरित होकर और मतलबी अधिकारियों की बातों में आकर वे मराठों के और अपने राज्य के दुश्मन जाटों की सहायता करते थे। मराठों के साथ किये गये इकरार को भूलकर जाटों की सहायता करने पर मराठा सरदार जयपुर राजा के इस कार्य का स्पष्ट रूप से निषेध करके उन्हें समझाते रहे। "राजके वा म्हाके फौज भेजाको करार ठरो छो'''अबताई फौज राज की आई नहीं'' और नवलसींघ जाट के पास आपकी तरफ सों हरलाल खान सामने भेजो छै''सो फौज वाके तरफ भेजा छो सों या बात आपको योग्य नहीं छै।" (ब)

माधोसिंह की मृत्यु के पश्चात् जयपुर की राजगद्दी पर क्रमशः राजा पृथ्वीसिंह और प्रतापसिंह बैठे। इन राजाओं में पराक्रम का अभाव था। अपने अधिकारियों के बहकावे में आकर वे मराठों से स्थापित मित्रता को भूलने लगे। यद्यपि दोनों राज्यों-जयपुर और मराठा-में पगड़ी-बदल भाईचारा होता रहा फिर भी जयपुर के राजा और अन्य अधिकारी मराठों के विरुद्ध आचरण करते रहे। मराठों के अधिकार में होनेवाले मुल्क में ऊधम मचाकर अधिकारियों को तकलीफ देते थे। (भ) मराठों के गांव-तथा जगहों पर अधिकार करते थे तथा करार को भूलकर इकरार में ठहरी जगह मराठों के अधिकारियों को नहीं लोटाते थे। (भ)

कभी-कभी जयपुर के राजा और अधिकारी एक ओर मराठों से मित्रता का बहाना करते किन्तु दूसरी ओर मराठों के आधीनस्थ प्रदेश-पर आक्रमण-चढ़ाई भी करते थे। जयपुर नरेशों की यह नीति मराठा सरदार जान गये थे अतः स्पष्ट रूप से यह बात लिखकर निषेध करते थे एवम् कभी कड़े शब्दों में समझाया करते थे। "देश में फौज आय कर देश मुलक लुटि छे इस वास्ते लिखा था'''जो इठ तो सलुख की बात करो छो उठे काम जैसो करो छो सिकार को गढ़ रणथंबोर थे लियो वैसो न चाहिये'''जो आपने सलुख करता होय तो सिकार को गढ़ छोड़ दयो।" (म)

(फ) प. १२३ (ब) प. १२३
(भ) प. १३८ (म) प. ११६।

जयपुर के राजा सवाई प्रतापसिंह के काल में मराठा-विरोधी की नीति बहुत बढ़ गयी थी। ये राजा मराठों के शत्रुओं से मिलते और मराठों के मुल्क पर चढ़ाई करके अपना अमल स्थापित करते। (य)

ऐसी स्थिति में मराठों को इस बात की शिकायत करके धमकी भी देनी पड़ती थी।

"राज की फौज तुरकारने सामिल कर सरकार का अमल में बखेड़ा कियो छे केताय अमल उठाय दीया ... फौज पाछे बुलाय लेउगा न्ही तो ... पारपत कर आगे भी समझ लेणो पड़सी।" (र) सूचना, सुझाव, शिकायत और धमकी से जब काम नहीं बनता तब मराठा-सरदारों को अन्य विचार करना पड़ता। सवाई जयसिंह के काल स्थापित स्नेह का ख्याल करके जयपुर के राजा पर आक्रमण करने या उसके मुकाबले में सेना भेजने की बात वे टालते रहे। महाराजा प्रतापसिंह परस्पर स्नेह-मंत्री को भूलकर मराठों से झगड़ा करते थे। दूरदर्शिता के अभाव में इस प्रकार के आक्रमण जारी ही रखे जाते तो मराठों को अपने राज्य की रक्षा के लिए लड़ाई के सिवा अन्य मार्ग नहीं रहता। ऐसी स्थिति में ये सरदार या सेना पति सेना भेज देते थे और उसकी खबर भी जयपुर के राजा को दिया करते थे।— "बड़े महाराज के वचन के सबब आज लगायत जैपुर की मरजाद चाहकर राखी हाल ... ईहांसो बीग्रह करणे की आई सो इस बात का मुजाका न्ही ... सदासीव मलहार बक्षीकु देसहजार फौज सो बीदा कीये हैं ... दुरन्दाजी बीचार कर करणो सो करोला।" (ल)

राजा का उदाहरण देखकर स्थानीय अधिकारी भी अपने अधिकार का दुरुपयोग करते थे। मराठों के असल में होनेवाली प्रजा या अधिकारियों को तकलीफ देते, लड़ाई-झगड़ा कर बैठते। जब आपस में किसी प्रकार सुलह नहीं होती तब स्थानीय अधिकारियों के सम्बन्ध में शिकायत करने की नौबत आजाती। (व)

प्रारंभिक स्नेहपूर्ण आदरयुक्त व्यवहार के विपरीत मराठा-राजपूतों का यह विश्वासहीन शत्रुवत व्यवहार देखकर आश्चर्य होता है। इस परिवर्तन के मूल में तत्कालीन राजस्थान की राजनीति का विशेष प्रभाव दिखाई पड़ता है।

(य) प. १८३ (ल) प. १३३
(र) प. १३२ (व) प. १३६, १४१, १४४, १५० इत्यादि।

स्वतंत्र होने की भावना और प्रयत्न

१८ वीं शताब्दी में केन्द्रीय सत्ता दुर्बल बन गयी थी। केन्द्रीय शासन अस्थिर एवम् अस्त-व्यस्त हो गया था। इस राजनैतिक अशान्ति और अस्थिरता से लाभ उठाने की इच्छा प्रबल बनने लगी। स्थान स्थान पर छोटे बड़े राजा, सरदार, जागीरदार, जमींदार, ठाकुर आदि लोग अपने को शासन से अलग करने का, स्वतन्त्र बनने का प्रयत्न करते थे। शासकों-अधिकारियों का स्वामित्व न मानकर वे अपने ही अधिकार चलाया करते थे। जिसके कारण उन्हें जागीर या जमीन दी गयी कर्तव्य तथा कार्य भूल जाते थे। अपने स्वामी, अधिकारी या शासकों की ओर से दी गयी आज्ञाएँ टालने का प्रयत्न वे करते थे। ये जमीनदार जागीरदार आदि इकरार में ठहरी हुई चौथ, लगान, कर, आदि के द्वारा दी जानेवाली रकम नहीं देते। पैसा देना वह टालते रहते थे और उसके लिये वहाने बनाते थे। (ष)

शासकों को बिना पैसा शासन चलाना कठिन हो जाता अतः पैसा वसूल करने के लिए उन्हें हर तरह प्रयत्न करने पड़ते। इन प्रयत्नों में कभी कड़ाई से तो कभी समझौते से कार्य करना पड़ता। कभी इन ठाकुरों, जागीरदारों को दिये गये अधिकार जब्त कर लेने की अथवा दी गयी जागीर छीन लेने की धमकी देनी पड़ती। (श) ऐसे समय ये जागीरदार, ठाकुर लोग अपनी ईमानदारी की बात बताकर पैसा देने को तैयार होते। — "हम सरकार की सिवाइ दोलतिखाही और विचार न राखौ न अन्न राखै ··· पैसा देवे को हाजिर है।" (स)

पैसा देवे को त्यार है ··· सरकार के हुकम ते जुदे नाही।" (ह)

कभी ये लोग अपनी ईमानदारी की बात करते हैं, पूर्ववर्त्ती शासकों की श्रेष्ठ उदारता, न्याय प्रियता की दुहाई देते हैं और अपने बेवतन होने की तथा सहायता करके उबारहेने की प्रार्थना करते थे। उदा०— "रावसाहिब ने काहू की (जिमीदारी) छुटाई नाही हमारी ये जिमीदारी छुड़ावत है।" (ह)

"श्री रावसाहिब जी के राजभर बेलतन नाही भयौ सुहम वे उतन भऐ बैठे है खाख मे पड़े है जु हमको खाख में से ठाढ़े करवी तो हम ठाढ़े होत है।" (ळ)

"हमारी तो यह उतन है अपनी उतन पर को नाही लरतु भिरतु जा भाति सिखावन आइ है सो करि है।" (क्ष)

(ष) प. १४०   (श) प. १५
(स) प. ३५   (ह) प. ३६
(ळ) प. ४८   (क्ष) प. ५३

इन जागीरदारों के मन में अपने वतन के प्रति जो प्रेम और स्वामित्व की भावना है वह स्पष्ट रूप से अनेक पत्रों में लक्षित होती है। किसी भी शर्त को वे मानते हैं। टाला हुआ पैसा देने को तैयार हैं जब जमींदारी छुड़ावने की नौवत आती है तब अपना निषेध स्पष्ट शब्दों में बताकर जमींदारी न छोड़ने का निश्चय भी प्रकट करते हैं।

"जिमीदारी तो हम बिन नानासाहिब की सनदे छोड़ने वाले नाही।"(अ)

कभी ये जागीरदार अपने पास वाले जागीरदार, जमींनदार पर आक्रमण करके उसकी भूमि-जगह छीन लेने का प्रयत्न करते तब ये लोग अपनी रक्षा के लिए मराठा सरदारों-शासकों से सहायता की याचना करते हैं। (आ)

ये जागीरदार जब स्वतंत्र बनने के प्रयत्न में मराठों के थाने, किले, गढ़ियाँ अपने अधिकार में करते थे और समझाने पर भी समझते नहीं तब बल प्रयोग की नौबत आ जाती। कड़े शब्दों में कभी ये शासक अपने बल प्रयोग की बात इन जागीरदारों, राजाओं के सामने रखते थे। "नहीं तो गढ़ी वाले का शीर काटकर जोरावारी से गढ़ी सर करेंगे।" (इ)

इस प्रकार शासक और अधिकारी अपना अधिकार कायम करने का प्रयत्न करते थे तो दूसरी ओर ये जागीदार स्वतंत्र होने के लिए अथक प्रयत्न करते थे। इसी स्थिति का चित्रण इन पत्रों में मिलता है।

सामाजिक एवम् सांस्कृतिक चित्रण

सामाजिक चित्रण—

तत्कालीन समाज में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और अन्य। इनमें श्रेष्ठ वर्ण ब्राह्मण था। ये ब्राह्मण वेदशास्त्रों का अध्ययन, पठन-पाठन एवम् अध्यापन करते थे। यही उनके जीवन का प्रधान कार्य था। सारे ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखे गये थे अतः उनका अध्ययन या अध्यापन करने वाला निश्चय ही कोई विद्वान पंडित होता था।

समाज में इस प्रकार के ज्ञानी ब्राह्मणों को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त होता। ये ब्राह्मण वेदशास्त्रों के अध्ययन अध्यापन में अपने जीवन का अधिक काल बिताते थे। उनका आचरण भी शुद्ध एवम् पवित्र रहता था। अतः इनके प्रति श्रद्धा का आदर, सम्मान का भाव समाज के सारे स्तरों में रहता था। "ब्राह्मण हमारे इष्टदेव हैं।"(ई) कथन ब्राह्मण वर्ग के प्रति होनेवाली श्रद्धा को स्पष्ट करता है।

(अ) प. ३५,३६। (आ) प. १६२। (इ) प. १६२। (ई) प. ७५।

शिक्षा व्यवस्था:—

आज के सामाजिक जीवन में शिक्षा को बड़ा महत्व प्राप्त हुआ है। हमारे जीवन का वह प्रधान अंग बन गया है। तत्कालीन समाज में शिक्षा का इतना महत्व लक्षित नहीं होता। तत्कालीन शिक्षा तथा उसकी व्यवस्था को देखने पर यह लक्षित होता है कि यह शिक्षा दो भागों में विभक्त की गयी थी। एक साहित्य शास्त्र इत्यादि की "पंडिताई-शिक्षा" और दूसरी युद्ध-सेना, शस्त्रास्त्र चलाना तथा शासन में उपयुक्त "व्यवहार्य" शिक्षा। दोनों प्रकार की शिक्षा भिन्न रीति से भिन्न व्यक्ति या संस्थाओं के द्वारा दी जाती थी। प्रथम प्रकार की शिक्षा के सम्बन्ध में उल्लेख प्राप्त है अतः उनका ही अध्ययन प्रस्तुत है।

वेदशास्त्र, साहित्य इत्यादि की शिक्षा विद्वान एवम् पंडित ब्राह्मणों के द्वारा दी जाती थी। शिक्षा ग्रहण करने के लिए आने वाले विद्यार्थी को गुरु के घर या पाठशाला में ही जाकर रहना पड़ता था। विद्यार्थी के खाने पीने तथा रहने इत्यादि की सारी व्यवस्था और जिम्मेदारी गुरु पर रहती थी। शिक्षा का कार्य करने वाले गुरु को धन और गांवों की सनद दी जाती थी जिससे उनका और उनके विद्यार्थियों का निर्वाह चलता था। (उ) छोटे बड़े राजपरिवार के लोग भी इन विद्वान गुरुजनों से शिक्षा प्राप्त करते थे। कदाचित इनकी शिक्षा व्यवस्था का ढंग अलग होगा। जब कोई राजवंश का व्यक्ति या राजा किसी गुरु से शिक्षा ग्रहण करता तब शायद गुरु-दक्षिणा या अपना कर्तव्य समझ कर गुरु को जमीन-भूमि दिया करता था। (ए) इस प्रकार प्राप्त भूमि या गाँवों के सहारे गुरु के कुटुम्ब तथा विद्यार्थी-गण का निर्वाह होता था। इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्त होकर ये ब्राह्मण अपना अध्ययन एवम् अध्यापन का कार्य करते रहते थे।

जब राजनैतिक परिवर्तन हो जाते तब शासन की व्यवस्था में भी बदल होता। शासकीय व्यवस्था में होनेवाले बदलों में इन ब्राह्मणों को दी गई वृत्ति भी छीन ली जाती या जब्त कर दी जाती। इस प्रकार जीविका छूटने पर गुरु तथा विद्यार्थियों के सामने कठिन समस्याएँ आ जातीं। (ए) अपनी वृत्ति पुनः प्राप्त कर लेने के लिए उन्हे प्रयत्न करना पड़ता प्रार्थना करनी पड़ती। ऐसे काल में अपना शिक्षा का कर्तव्य निभाने के लिए जिस किसी प्रकार अपने कुटुम्ब एवम् विद्यार्थियों का निर्वाह चलाना पड़ता था। वृत्ति देने वाले राजा या अधिकारी लोग विद्वान पंडित ब्राह्मणों की योग्यता देखकर ही उन्हे वृत्ति दिया करते थे। बार बार होनेवाले राजनैतिक एवम्

(उ) प. ६०। (ए) प. ६०।

शासकीय परिवर्तनों के परिणाम निर्मित कठिनाइयाँ शिक्षा व्यवस्था में व्याघात निर्माण करती थीं। कभी-कभी इसके कारण वृत्ति छूट जाने से गुरु तथा शिष्य निर्जीविक (जीविका रहित) होकर रहना पड़ता तब उन पर क्या गुजरती हो इसका अंदाजा करना कठिन है। इन सब कठिनाइयों से मार्ग निकालकर ये विद्वान पंडित अपना कार्य करते रहते।

ऐसे विद्वान ब्राह्मणों की योग्यता देखकर बादशाह की ओर से भी उन्हें "ग्रामदान" दिया जाता। मुसलमान बादशाह की ओर से विद्वान ब्राह्मणों को वृत्ति के रूप में गाँव मिलना एक विशेष बात है। इसके उदाहरण कम मिलते हों किन्तु इसका अभाव नहीं था। यह बात पत्रों के उल्लेख से स्पष्ट होती है। "पातशाह की ओर ते दो गाउ हते।" (ए)

स्त्री शिक्षा—

प्रस्तुत पत्रों में से कुछ पत्र स्त्रियों के नाम से लिखे गये हैं। (अ) ये पत्र उनके ही द्वारा लिखे गये थे यह निष्कर्ष निकालना कठिन है। उस काल में पत्र लिखने का कार्य पत्र लेखक करते थे तथा आये हुए पत्र भी पढ़कर सुनाने का कार्य भी अन्य व्यक्तियों द्वारा किया जाता था। तत्कालीन परिस्थितियों में परिवार, समाज एवम् शासन में स्त्री का महत्वपूर्ण स्थान था। राज्य-शासन में कुछ प्रमुख मराठा-स्त्रियों के नाम गिने जा सकते हैं। इन स्त्रियों में राजा शिवाजी की माता जिजाबाई, राजाराम की पत्नी ताराबाई और अहिल्याबाई होलकर थीं। इनकी शिक्षा (लिखना, पढ़ना, हिसाब) के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। फिर भी उनके द्वारा राज्य-निर्माण एवम् शासन-व्यवस्था में महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। उससे यह स्पष्ट होता है कि इन्हें तत्कालीन राजनीति में आवश्यक होने वाली शिक्षा जरूर मिली हो जिनके द्वारा उनके व्यक्तित्व का आवश्यक विकास भी (डेवलपमेंट आफ पर्सनेलिटी) निश्चय ही हुआ है। अहिल्याबाई होलकर के द्वारा लिखे गये पत्रों से यह स्पष्ट होता है कि उसने अपने राज्य का शासन कार्य सुचारु रूप से चलाया इसके अतिरिक्त मल्हारराव होलकर के समय से राजस्थान या अन्य स्थानों के शासन में जो अधिकार या प्रभुत्व था वह भी कायम रखने का प्रयत्न उसने किया। (आ)

रामाबाई नामक शास्त्री की पत्नी की ओर से लिखा गया पत्र (इ) स्त्री की सामाजिक एवम् पारिवारिक कठिनाइयों का कुछ चित्रण करता है। पत्र में रामाबाई

(अ) प. २०, १८५, १९२, १९५, २०२। (आ) प. १९५, २०२।
(इ) प. २०।

ने अपने पति की मद्य-प्राशन की बात बताकर उसके कारण निर्मित कठिनाइयों का उल्लेख किया है।

आचार हीनता और परिणाम

चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के आधार पर बने हिन्दू-समाज में सामाजिक जीवन में सुव्यवस्था, स्थिरता एवम् शान्ति रखने के लिए निर्मित बन्धनों का पालन प्रत्येक वर्ण के व्यक्तियों के लिए आवश्यक है। हर एक वर्ण के व्यक्तियों के लिए भिन्न आचार तथा व्यवहार के बन्धन हैं। इन बन्धनों का पालन प्रत्येक व्यक्ति से अपेक्षित है। श्रेष्ठ वर्ण के व्यक्तियों के लिए ये बन्धन कड़े हैं और निम्न वर्ण लोगों के लिए ये बन्धन परिणाम में कम हैं तथा उनके आचार-व्यवहार में लचीलापन होता है। आचार के जो नियम प्रत्येक वर्ण के लोगों के लिए निर्दिष्ट हैं उनका उल्लंघन सामाजिक अपराध माना जाता है। इतना ही नहीं उस व्यक्ति को तथा उसके परिवार के लोगों को अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ सहनी पड़ती हैं।

इस वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण वर्ण को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अतः ब्राह्मण वर्ण के लोगों को आचार-व्यवहार के कड़े नियम पालना आवश्यक है। सदाचार एवम् सुनीति के व्यवहार की आशा उनसे सदा सर्वदा रखी जाती है। इन आचार-गत नियमों में खाने पीने के बन्धन महत्वपूर्ण हैं। ब्राह्मण वर्ण के व्यक्तियों से यह आशा रखी जाती है कि वे कभी भी मद्य-मांस सेवन न करें। इसके विपरीत यदि कभी शास्त्री-विद्वानों के द्वारा मद्य-पान या प्राशन होता तो उसका निषेध होता। उसकी खबर चारों ओर फैल जाती। उस विद्वान व्यक्ति का सामाजिक सम्मान नष्ट होता इतना ही नहीं तो उसके परिवार का निर्वाह होना भी कठिन हो जाता।

"सासत्र-बावा के वरतमान अयसे है की कलाल के इहाँ से दारु मंगाकर पीते है सो दोय चार वार'''बातका बोवाठ हुआ आवर इहां हमारा भी नीभाव होता नही।" (क)

ऐसी स्थिति में जीवन यापन के लिए परिवार के लोगों को किसी का आधार लेना पड़ता। शासन के अधिकारियों से यदि परिचय हो तो उससे भी सहारा और सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। शासन के अधिकारी भी सदयता से

(क) प. २०।

द्रव्य और वस्त्र-प्रावरण देकर सहायता करते। (क) इस सामयिक सहायता से कुछ काल काम चलता किन्तु उससे भविष्यत् का प्रश्न नहीं हल हो सकता अतः भविष्यत् में सुचारु रूप से निर्वाह हो इसलिए भी सहायता की आशा अधिकारी श्रेष्ठ व्यक्तियों से रखी जाती थी। (क)

अन्याय और परिमार्जन

समाज-जीवन सुचारु रूप से चले इस लिए सामाजिक नीति नियमों का आयोजन किया जाता है। राजनैतिक आघातों से समाज-जीवन में गड़बड़ी मच जाती है तब शासन की ओर से प्रयत्न किये जाते हैं और समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों की सहायता पाकर वह जीवन व्यवस्थित किया जाता है। परिवार समाज का अंग हैं अतः पारिवारिक शांति और सुव्यवस्था का परिणाम समाज जीवन पर होता है। सामान्यतः परिवार में किसी कारण अनबन या झगड़ा निर्माण हुआ तो उसका निवारण परिवार के श्रेष्ठ व्यक्ति करते थे। जब उनसे कोई निराकरण नहीं होता तो पंचायत या अधिकारियों से सहायता की आशा करके उनके पास शिकायत पहुँचा दी जाती। व्यक्तिगत अन्याय में दखल देकर उसका परिमार्जन करने का कार्य अधिकारी, राजा करते थे। जब इस प्रकार के किसी अन्याय का शिकार कोई स्त्री हो जाती तो उसका परिमार्जन एक विशेष एवम् महत्वपूर्ण बात होती थी। (ख)

राजा, सरदार इत्यादि के द्वारा दान या इनाम के रूप जब कोई भूमि-गाँव दिये जाते तब अपेक्षित रहता है कि उसका लाभ सारे परिवार को हो और परिवार के लोगों के जीवन में सुख-शांति बनी रहे। किन्तु इस प्रकार प्राप्त दान का लाभ परिवार के कुछ लोग उठाकर अन्य किसी पर अन्याय करें तो यह बात ठीक नहीं। व्यक्तिगत अन्याय की शिकायत दान-दाता के पास की जाती और ये दाता भी उस अन्याय का परिमार्जन कर देते थे।

"दीक्षीत श्री वीदयावर को वड़े महाराजा सवाई जयसिंघ ने पुनार्यगाम दिये हते···दीक्षीत जी की कनिष्ट मार्जी दुर्गाबाई के पास ग्रहणो जेवर था सो पुत्र ने सीन ली ये है अवर दुर्गाबाई कु खाणकु देते नहि···दीक्षीत के पुत्र तथापोताकु ताकीद करके··· गहणा जेवर वाजवी होय सो दीलवाना···उणामे भी एक गाम बाईजीकु दीलवाय जो···।" (ख)

(क) प. २०। (ख) प. ३०।

सामाजिक या अर्थ विषयक व्यवहारों के कारण कभी-कभी समाज में झगड़े निर्माण होते हैं। ये झगड़े जब आपस में नहीं मिटते तब शासकीय व्यवस्था का आधार लिया जाता हैं। इन झगड़ों में कभी किसी पक्ष के एक या अनेक व्यक्तियों पर अन्याय की नौबत आ जाती। ऐसी स्थिति में बिना शासकीय हस्तक्षेप अन्याय-परिमार्जन अशक्य हो जाता है। जब कभी ये भिन्न पक्ष के लोग भिन्न राज्यों के निवासी होते हैं तो यह मामला निश्चय ही शासकीय स्तर पर चलता है। अपनी प्रजा के प्रति होने वाला अन्याय दूर हो उसे न्याय मिले इसलिए शासन कर्ता प्रयत्न करते। कभी बड़े-बड़े सरदार और राजाओं को भी इसी प्रकार के मुकदमों या झगड़ों में ध्यान देना पड़ता और अन्याय के परिमार्जनार्थ आवश्यक सूचनाएँ या सुझाव देने पड़ते। इस प्रकार तत्कालीन समाज में अपनी प्रजा के हित की रक्षा तथा होने वाले अन्यायों का परिमार्जन करने की दृढ़ भावना शासकों में दिखाई देती है। (ग)

चोर, ठग, डाकू इत्यादि की ओर से समाज के व्यक्तियों को तकलीफ दी जाती या उनके आर्थिक व्यवहार में धोखा दिया जाता था। जब इस प्रकार की कोई घटना किसी प्रसिद्ध या प्रतिष्ठत व्यक्ति के प्रति होती हैं तब उसका निराकरण करने के लिए बड़े शासकों को उसमें दखल देनी पड़ती। ठग का पता लगाना, जामिन के पास तलाश करना और ठग को पकड़कर पहरेदारों सहित शिकायत करने वाले के पास भेज देना, आदि सारे कार्य करके दूसरे पक्ष या राजा या शासकों की सहायता करने का कार्य उन्हें करना पड़ता। इस प्रकार के व्यवहार में राजनीति के अलावा सामाजिक कर्तव्य की भावना महत्वपूर्ण रहती है।

अंग्रेज अधिकारी मिस्टर अँडरसन् के नाम की झूठी मुहर करके साहूकार के पास से पैसा लेजाने वाले ठग का पता लगाने के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण पत्र उल्लेखनीय है। (घ)

शांति और स्थैर्य (Peace and Tranquitity) समाज-जीवन की मूल आवश्यकताएँ हैं। इनकी ओर ध्यान देकर, अन्याय का परिमार्जन करके समाज जीवन सुव्यवस्थित रखने का भरसक प्रयत्न तत्कालीन शासक, सरदार एवम् राजा करते थे।

समाज में शांति, स्थैर्य, सुव्यवस्था रहे इसलिए शासक प्रयत्न करते थे किन्तु इससे भी अधिक समाज-जीवन सुखपूर्ण हो, मुल्क आबाद हो, तरक्की होती रहें इसलिये

(ग) प. १२८, १४६।   (घ) प. १३५।

अवसर मिलते ही शासक और अधिकारी प्रयत्न करते थे। जब कोई कार्य, पुण्यकर्म या दान धर्म के उपलक्ष्य में किसी अधिकारी को जमीन-जागीर की सनद दी जाती थी तब गाँव-जगह में रहने वाली रैयत के सुख का ध्यान रखकर सनद में शर्तें रखी जातीं। प्रधानतया यह शर्त रखी जाती थी कि सनद प्राप्त करने वाला व्यक्ति अपने जागीर की आबादी की आबादानी करे।

"तालुका मजकुर की अबादानी कराउनो साइर की आमदर्फत कराउनो हुकुम हुजुर परवानगी।" (फ)

(ग) धार्मिक परिस्थिति

भारतीय लोगों के जीवन में "धर्म" एक महान प्रेरणा है, शक्ति है। इस शक्ति ने ही भारतीय लोक-जीवन चेतनामय बनाया। भारत के निवासियों में हिन्दूधर्माव-लंबी लोगों की संख्या अधिक है। इन लोगों ने अनेक धर्मांन्ध पाशव अत्याचारों का मुकाबला कर अपना धर्म और अपनी धर्म भावना को जीवित रखा। आगे चलकर संतों-महंतों ने इस भावना को अक्षुण रखने का प्रयत्न किया। स्वानुभूति, सदाचरण सदुपदेश इत्यादि द्वारा जनमानस की यह धर्मभावना उन्होंने प्रज्जवलित रखी धर्म भाव-ना का दर्शन व्यक्ति के आचरण में होता है व्यक्ति के आचरण के द्वारा ही हम उसकी धर्म भावना नापते हैं। समाज की धर्म भावना भी नियमों के पालन एवम् धार्मिक आचरण से ही जानी जा सकती है। तत्कालीन समाज की यह भावना तीर्थ-यात्राएँ, संत-महंतों की सेवा, दूर दूर के दर्शन और पूजाएँ, विद्वान पंडितों की सहायता, पवित्र क्षेत्रवासी ब्राह्मण पुरोहितों को द्रव्यदान, इत्यादि आचारों से लक्षित होती है। प्रस्तुत पत्रों में इसके कुछ उदाहरण मिलते हैं।

(धार्मिक) तीर्थयात्रा

भारतीय हिन्दू-समाज के व्यक्तियों के मन में पवित्र तीर्थ क्षेत्रों का पर्यटन करने की इच्छा रहती है। अपने जीवन में कम से कम एक बार तीर्थयात्रा कर अपने जीवन के ज्ञात-अज्ञात पाप धोकर पुण्यमय जीवन का मार्ग प्रशस्त करने का यत्न करते हैं। यातायात की असुविधाएँ, चोर, बटमार, डाकू, लुटेरे इत्यादि का सतत डर उस समय रहता था। एक स्थान से दूसरे स्थान में जाना भी जिस समय असुरक्षित और कठिन था। उस समय देश के सुन्दर भागों में स्थित इन पुण्य क्षेत्रों का पर्यटन जरूर ही एक कठिन समस्या रही हो। इस पर्यटन में सर्व प्रकार की कठिनाइयों की आशंका रहती थी। फिर भी अवसर मिलते ही तीर्थयात्रा करने को तत्कालीन सभी वर्णों के सभी

(फ) (प. १९)।

स्तरों के लोग तैयार रहते थे। उस समय इक्का-दुक्का आदमी तीर्थयात्रा के लिए नहीं निकलता था। यात्रियों का एक दए-सा निकलता था समाज के प्रतिष्ठित या धनवान व्यक्तियों के परिवार के लोग तीर्थयात्रा के उद्देश्य से तैयार होते तब उनके साथ उनके परिचित, पड़ोसी भी जाते थे। इस प्रकार एक बड़ा दल ही बन जाता। (क)

तीर्थयात्रा में जब कोई श्रेष्ठ व्यक्ति या शासक के परिवार का व्यक्ति रहता तब अन्य प्रदेशों के राजा या शासकों से मदद एवम् रक्षा के लिए प्रार्थना की जाती और वे लोग भी इस पुण्यक. में सहायता प्रदान करते थे। (भ) जब इस तीर्थयात्रा में प्रमुखतया कोई श्रेष्ठ परिवार की स्त्री रहती तब तो इस प्रकार की सहायता के लिए विशेष रूप से प्रयत्न किया जाता। कभी पेशवा या बड़े सरदार भी अन्य प्रांतों के राजाओं को लिखकर सहायता एवम् रक्षा की व्यवस्था करने का सुझाव देते थे। (म)

प्रस्तुत पत्रों में बदरीकाश्रम, पुष्कर (व) तथा नाथद्वरा और मथुरा तीर्थों (म) का उल्लेख मिलता है।

"कावरें" भेजना

एक विशेष धार्मिक प्रथा का उल्लेख यहाँ करना जरूरी है। प्रत्येक हिन्दू मनुष्य के हृदय में तीर्थ क्षेत्रों में जाकर पवित्र नदियों के जल से स्नान करने की इच्छा रहती है। किसी पर्वकाल या तीर्थयात्रा के समय तीर्थक्षेत्रों में स्नान करने के लिए लोग जाते हैं। पवित्र जल में स्नान करके पुनीत होकर, पवित्र जल से देवताओं की मूर्तियों का भी अभिषेक किया जाता है। इस पवित्र जल का उपयोग संध्यादि कर्मों में भी किया जाता। पवित्र जल से स्नान, संध्या और अभिषेक किसी यात्रा के अवसर पर ही करना शक्य हो जाता है। यह एक नैमित्तिक बात हो सकती है। तीर्थ क्षेत्र से दूर रहकर इसकी इच्छा करना असंभव सा है। इस त्रुटि को किंचित् मात्रा में पूर्ण करने का प्रयत्न ब्राह्मण वर्ग के श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा किया जाता था। पवित्र तीर्थक्षेत्रों से ये लोग जल की कावरें (कावर=गागर) मंगाते थे और तीर्थ-क्षेत्र निवासी पुरोहित इन्हें कावरें भेज देते थे। (म) (य)

कावरों में प्राप्त पवित्र जल का अंश अपने स्नान के पानी में मिलाते, उसी पानी से संध्यादि कर्म करते और मूर्तियों की पूजा में उसी जल का प्रयोग करते थे

(क) प. १२७।   (भ) प. १२७, १५३।
(य) ९७, १।   (म) प. १५३।

कावरें मंगा लेने में खर्च करना पड़ता ताकि कावरें लाने वाले को किराया या खर्च का देना देना पड़ता। (म) अत: धनी आदमी ही इसका आयोजन कर सकता था। इस प्रकार भेजी गयी कावरों का उल्लेख कुछ पत्रों में मिलता है।

तीर्थ-क्षेत्रवासी पुरोहित इन कावरों के साथ प्रसाद भी भेजा करते और उसे श्रद्धा से ग्रहण करने की सूचना दिया करते थे। इसके साथ भविष्य में दान-धर्म करने के सम्बन्ध में प्रार्थना करते थे।

पूजा-अर्चा

तीर्थ-क्षेत्रों में जाने वाले यात्री अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार वहाँ दान धर्म, पूजा-अर्चा करते थे। वहाँ से लौट आने पर भी अपनी ओर से द्रव्य भेजकर वे स्थानीय पुरोहितों को पूजा-अर्चा करने के सम्बन्ध में लिखते थे और इस प्रकार पुण्य प्राप्ति की इच्छा करते थे। स्थानीय पुरोहित जब कावरें या महाप्रसाद भेजते थे तब इसके साथ अथवा कभी चिठ्ठी लिखकर अपने यजमानों को पूजा-अर्चा दान-धर्म करने की विनति करते थे। प्रस्तुत पत्रों में इसके कुछ उल्लेख मिलते हैं।

उदयपुर राज्य के अन्तर्गत वल्लभ संप्रदाय के वैष्णवों का "नाथद्वार" प्रसिद्ध स्थान है। उसकी पूजा प्रतिवर्ष करने की प्रथा भगवंतराव ने चालू रखी थी। यह पूजा-परंपरा के अनुसार करके यश-पुण्य प्राप्त करने की बात का उल्लेख मिलता है। "नाथजी की पूजा पीछले दस्तूर माफक हुवा करे तिस माफक जस पुन्य करोगे।"(र)

"गंगाजी नियत धर्म करो सो कागद में लीखी दीजो।" (ल)

'भागीरथी नीमत्र धर्म करो सो कागद मे लीख दीजो "। (व)

संत-महंतों की सेवा

संत-महंतों की सेवा करने की रीति हिन्दू समाज में प्राचीन से चली आयी है। जन साधारण से लेकर राजा महाराजा तक सभी अपने काल के संतों की सेवा सहायता करते रहे। राजा शिवाजी के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि वे श्री समर्थ रामदास स्वामी तथा श्री तुकाराम महाराज के शिष्य-समान थे। अपनी ओर से उपहार इत्यादि भेजकर वे उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते थे। महाराजा छत्रसाल तथा पेशवा बाजीराव आदि के सम्बन्ध में भी यह बात स्पष्ट है। मराठा सरदार और शासक भी संत-महंतों की सेवा-सहायता करते थे। जब शिन्दे, होलकर-आदि खानदान के लोग

(म) प. ६४८। (र) प. ३।
(ल) प. ६। (व) प. ४८।

उत्तर भारत में अपनी जागीर स्थापन करके रहने लगे तब वे वहाँ के संत-महतों की भी काल और परिस्थिति के अनुरूप करते थे। कुछ स्वयं इस प्रकार सेवा सहायता करते थे और अन्य राजा या शासकों को लिखकर सेवा सहायता प्रदान करने की सूचना देते थे। मल्हारराव होलकर के द्वारा लिखे गये एक पत्र में सलेमाबाद के महन्त स्वामी यादोराम की सहायता करने का सुझाव प्रस्तुत किया गया है। (प)

दान-धर्म

भारतीय लोगों के जीवन में दान-धर्म का अपना एक अलग महत्व रहा है। यह दान धर्म की भावना समाज के सभी वर्गों और स्तरों के लोगों में दिखाई देती है। इस दान के मूल में हमारे धार्मिक एवम् सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना रही है। अतः राजा से लेकर किसान तक यह दान की भावना हमें दिखाई देती है। तत्कालीन समाज में ब्राह्मण वर्ण के विद्वान लोग अपना जीवन वेद-शास्त्र इत्यादि के अध्ययन और अध्यापन में बिताते थे। अतः ऐच्छिक जीवन के साधन जुटाने का प्रयत्न वे अल्प मात्रा में करते थे। उनका और उनके परिवार के लोगों का निर्वाह दान-धर्म में प्राप्त धन तथा धरती की उपज से चलता था। राजा या शासक भी ऐसे विद्वान ब्राह्मणों को विशेष अवसरों पर दान दिया करते थे जिनसे समाज के इन विद्वान पंडितों का जीवन सुचारू ढंग से चले।

पर्वकाल में तीर्थ-क्षेत्रों में जाकर स्नान करने की प्रथा भारतियों में प्राचीन से प्रचलित है। उत्तर में जैसे गंगा-स्नान के लिए दक्षिण के लोग जाते थे वैसे ही उत्तर के लोग दक्षिण में विशेषतया गोदावरी के स्नान को नासिक-त्र्यंबकेश्वर में जाया करते थे। पर्वकाल में तीर्थ क्षेत्र पर जाकर स्नान करके पुण्य प्राप्ति के उपलक्ष्य में क्षेत्रवासी ब्राह्मण पुरोहितों को दान-धर्म किया जाता था। नासिक तथा त्र्यंबकेश्वर के अनेक पुरोहितों के पास इस प्रकार के दान पत्र हैं। इस प्रकार दिये जाने वाले दान में दाता तथा प्राप्तिकर्ता के बड़प्पन के अनुसार दान ही बड़ा रहता था। राजाओं के द्वारा ऐसे अवसरों पर गाँव दान दिये जाते थे। (स) यह दान हमेशा के लिये चालू रहे इसलिए यह दान ताम्रपत्र पर लिखा जाता था। दान देने से पुण्य मिलता है यह हमारी प्रबल भावना रही है। दिया हुआ दान वापस लेना अयोग्य अनुचित है इतना ही नहीं वह दान वापस न लिया जाये इसलिये धर्मभावना का आधार लेकर बंधन निर्माण किये गये हैं। इस दान को अर्पण की वस्तु या चढ़ावे की दृष्टि से देखा जाता

(प) पृ. १५७। (स) पृ. १८।

है। (ड) दिया हुआ दान वापस लेने से "नरक प्राप्ति" होती है यह विचार दान दाताओं के सामने धर्मशास्त्रियों ने रखा है। दिये हुए दान का और उसके सम्बन्ध में पाप-पुण्य का विचार स्पष्ट करने वाले उदाहरण मिलते हैं। प्रथम उदाहरण में पर्वकाल में नासिक क्षेत्र में "महाराजा सालीमसिंह के द्वारा दिये दान का उल्लेख है (ख) और द्वितीय पूना के पास चिंचवड़ निवासी देवराज के व्यक्ति को दिये गये दान का उल्लेख है। (ह) दोनों दानपत्रों के अन्त में संस्कृत वचन का अशुद्ध भाषा में प्रयोग लक्षित होता है।

भविष्य-कथन (ज्योतिष)

मनुष्य अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में जानने के लिए आतुर रहता है। वर्तमान जीवन सुखपूर्ण है तो भविष्यत् काल में वह किस प्रकार का होगा ? वर्तमान जीवन दुखपूर्ण है तो भावी जीवन कैसा रहेगा। यह जानने का वह प्रयत्न करता है। मनुष्य के भावी जीवन के सम्बन्ध में ज्योतिष-शास्त्र से अनुमान लगाया जाता है। प्राचीन काल से ही इस देश के लोगों में ज्योतिष-शास्त्र के सिद्धान्तों के द्वारा भावी जीवन जानने की इच्छा रही है। समाज, ज्योतिष-शास्त्र का अध्ययन करने वाले विद्वानों का आदर करता था। केवल सामान्य व्यक्ति नहीं तो बड़े-बड़े अधिकारी, शासक, राजा इत्यादि भी इस शास्त्र के आधार पर अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में होने वाले रहस्य जानने तथा इस प्रकार के भविष्य कथन के परिणाम देखने के लिए उत्कंठित रहते थे। (अ) विद्वान ज्योतिषी भी गणित सिद्धान्तों के आधार पर ऐसे लोगों को समय-समय पर या पूछने पर सूचनाएँ देते थे। (अ) यदि भविष्य-कथन के अनुसार घटनाएँ घटी हों और यदि उनसे किसी प्रकार लाभ हुआ हो तो उसके उपलक्ष्य में ज्योतिषी को इनाम या उपहार दिया जाता। यह उपहार घटना के महत्व के अनुसार ही रहता था।

कभी कभी राजा लोग भी राज्य प्राप्ति आदि के सम्बन्ध में ज्योतिषियों को प्रश्न करते थे। और फल के अनुसार इनाम दिया करते थे। कभी किसी महत्वपूर्ण कथन के और उसके सत्य होने के उपलक्ष्य में गांव भी इनाम दिया जाता था। इस प्रकार के "ग्रामदान" को ताम्रपत्र द्वारा प्रमाणित किया जाता। (इ) उदा०··· "जती मनोहरराम···श्री राज के राज्य प्राप्त के वास्ते प्रश्न कीयो येक महीनामें राज्य राज को होसी सो जीही माफक हुवो··· अब जतीजी ने येक गांव हीडोण का···तांबा-पत्र कर उदक देवोना।" (ई)

(ग) प. ८।
(ह) प. ८८।
(अ) प. ८६. १६७।
(इ) प. १६७।

मुहुर्त-काल पर विश्वास

"मुहुर्त या शुभ-समय देखकर ही शुभ कार्य करने की हिंदुओं की प्रथा है। इसी प्रथा के अनुसार राजनैतिक कार्य राज्य-तिलक, युवराज्य तिलक या राज्य पर बैठने या बिठाने का कार्य मुहुर्त देखकर ही संपन्न किया जाता था। विवाह, जनेऊ आदि सस्कार मुहुर्त देखकर ही किये जाते थे। विवाह का कार्य मुहुर्त पर कर लेने का उल्लेख विवाह के निमित्त भेजे गये पत्रों में मिलता है। (अ)

अधिकार-पद, सम्मान-चिन्ह ग्रहण करने के लिए भी मुहुर्त काल देखा जाता था। (आ)

मराठा-लोग लड़ाई पर निकलते समय मुहुर्त देखा करते थे। दशहरे के शुभ मुहुर्त पर लड़ाई के लिए प्रस्थान करने की एक परम्परा सी महाराष्ट्र में निमित हुई। (इ-१) मराठा लोग घर से या अपने आवास-स्थान से मुहुर्त पर प्रस्थान करते और पड़ावों में रहते थे। इसके लिए एक विशेष शब्द प्रयोग में मिलता है, (डेरे दाखल होना)। (ई) इन पड़ावों से ही वे आगे कूच करते अतः राजनैतिक कार्य, धार्मिक सस्कार, सामाजिक समारोह तथा युद्ध कार्य के लिए भी मुहुर्त देखकर कार्य करने की एक प्रथा सी लक्षित होती है।

(ध) सांस्कृतिक (समारोह)

मकर-संक्रमण

भारतीय संस्कृति प्राचीन और महान है। इस प्राचीन संस्कृति ने भारत निवासियों का जीवन संपन्न एवम् सुखपूर्ण बनाया है। जब हम वर्ण, आश्रम तथा सामाजिक, आर्थिक आदि स्थर भेदों को लांघकर इनसे परे एक सांस्कृतिक जीवन को देखते हैं तो हमें इस संस्कृति की महानता के रहस्य दिखाई देते हैं। हमारा सामाजिक जीवन सांस्कृतिक कार्यक्रमों ने सुखपूर्ण बनाया है। सामाजिक जीवन में उत्सव, त्योहार, मेले, समारोह आदि का निर्माण हमारी संस्कृति की विशेष देन है। इन मेले-त्योहारों ने ही हमारे सामाजिक जीवन में जो संघटन तथा सुख और आनन्द का निर्माण किया वह नापना कठिन है। इन समारोहों के अभाव में हमारा जीवन खुश्क बनेगा। इन मेले-त्योहारों ने ही हमारा सामाजिक जीवन रहा भरा रखा है।

(अ) प. १६१, १६६। (आ) प. २०३।
(इ-१) प. १२१। (ई) प. १७२, १२१।

ये उत्सव, समारोह प्रांत विशेष के साथ भिन्न-भिन्न होते हैं। संक्राति का समारोह महाराष्ट्र में एक अनोखा महत्व रखता है। मकर संक्रमण के दिवस पर तिल को शकर या गुड़ से मिलाकर सम्बन्धियों तथा मित्रों में बाँटा जाता है। दूर स्थानों में निवास करने वाले अपने सम्बन्धियों को "तिलगुड़" भेजा जाता है और साथ साथ अपने स्नेह की वृद्धि करने की प्रार्थना की जाती है। महाराष्ट्र में यह समारोह बड़े ठाठ के साथ मनाया जाता है। अन्य प्रांतों के लोगों पर भी महाराष्ट्र के इस समारोह का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। तद्देशीय राजा, शासक या अन्य अधिकारी मराठा-सरदारों को मकर संक्रमण के अवसर पर "तिलगुड़" भेजा करते थे। काशी नरेश चेतसिंह के द्वारा दौलतराव सिंधिया को भेजे गये "तिलगुड़" का उल्लेख इस प्रकार है। "मकर संक्रात के तिल शरकरायुक्त हर (इस) साल कीये हैं सो कृपा करके कबूल फरमाईयेगा।" (क)

मेला

सांस्कृतिक दृष्टि से मेलों का अपना महत्व है। इस अवसर पर भिन्न प्रांत के भिन्न वर्ग तथा जाति के लोग एक स्थान पर आ जाते थे। यह मेला किसी पवित्र तीर्थ क्षेत्र के स्थान पर भरता है। मेला एक ओर सांस्कृतिक दूसरी ओर सामाजिक तथा आर्थिक जीवन से सम्बन्ध रखता है। भिन्न स्थानों से व्यापार करने वाले सौदागर अपनी चीजें लेकर आ जाते थे और उन्हें खरीदने की इच्छा से स्थान स्थान के लोग वहाँ आते थे। (अ) और अपनी आवश्यकता की तथा विलास (Luxury) की चीजें खरीदते थे। राजा, शासकों को इन मेलों के कारण कर के रूप में पैसा मिलता था अतः राजा या शासक इन मेलों का आयोजन करते थे। (क) समाज के लोगों को तो देनंदिन जीवन से परे एक विशेष स्वच्छंद जीवन का आनंद मिलता और साथ ही देश पर्यटन का। यातायात के खतरों के दिनों में इस प्रकार के मेले देश पर्यटन का अच्छा अवसर प्रस्तुत करते थे।

राजस्थान में स्थित पुष्कर के मेले का आयोजन करने की विनती महादजी सिंधिया जयपुर के राजा प्रतापसिंह को कर रहे हैं। "पोखर का कार्तीक में मेला हमेशा सो भरता आया है सो हाल भी राज दरबार सो बेपारी उगैरेह को ताकीद करवाए के मेल्या को बेपारी उगैरेह आवै सो करावसी। (क)

(क) प. १०७, १४८। (अ) प. १८७।
(क) प. १४८।

अत: मेला यह एक ऐसा उत्सव या समारोह है जिसमें राजा, अधिकारी, व्यापारी, शासक और सामान्य जनता का पर्याप्त सम्बन्ध रहता है।

छत्री

मृत व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात उसकी हड्डियाँ या शव को जमीन में गाड़ देते हैं और उस पर पत्थर का चबूतरा बनाते हैं। इस चबूतरे को "समाधि" कहा जाता है। सामान्यत: किसी श्रेष्ठ, महत्वपूर्ण व्यक्ति या संत महंतों की इस प्रकार समाधियाँ बनाते हैं। उनके शिष्य उस समाधि क्षेत्र को पवित्र स्थान मानकर उनके दर्शन करते हैं। खानदान के श्रेष्ठ व्यक्ति की मृत्यु होने पर इस परिवार के या उनके निकट सम्बन्धी लोग ऐसे व्यक्ति की समाधि बांध देते हैं। राजनैतिक क्षेत्र में होने वाले श्रेष्ठ व्यक्ति की समाधि बांधने की भी परम्परा हम इतिहास में देखते हैं। कहीं इस प्रकार की समाधि पर गोलाकार छत होने वाली इमारत बांधी जाती है। उसे छत्री कहते हैं। आगे चल कर समाधि पर बांधी हुई इमारत को छत्री कहा जाता था। छत्री की देखभाल एवम् सुरक्षा की योजना की जाती है। इसके लिए आवश्यक खर्च के वास्ते कुछ गांव-या भूमि इनाम दी जाती थी। और इस जमीन की आय से खर्च चलाया जाता था। (ख) राजनीति के कार्य में श्रेष्ठता प्राप्त करने वाले व्यक्ति की समाधि बांधकर छत्री बनाने की परम्परा उस काल में अधिक प्रचलित थी।

महाराजा छत्र साल की अपूर्ण छत्री मउसहनियां धुवेला ताल के निकट स्थित है। (क)

पूना के निकट वानवड़ी में महादजी शिंदे की छत्री है।

पत्र में उल्लेखित जानराव वावले की छत्री सवाई जैपुर के हथरोई की तरफ़ स्थित है। उसके "खर्च के लिए वीस वीघे ज़मीन इनाम दी गयी थी।" (ख)

भाषा

तत्कालीन भाषा के बारे में पत्रों के अध्ययन में विभिन्न प्रसंगों में चर्चा की गयी है। तत्कालीन भारत में प्रान्तीय भाषाओं का विकास हो चुका था। अपने-अपने प्रान्तों में प्रान्तीय भाषाएँ लोक व्यवहार की भाषाएँ बन चुकी थीं। सामाजिक कार्यों में उसका ही व्यवहार होता था। कुछ प्रान्तों में ये प्रान्तीय भाषाएँ विकसित होने के कारण उनका प्रयोग राज्य-शासन या राजनैतिक क्षेत्र में किया जाता था मराठी, राजस्थानी, बुंदेली आदि इसके उदाहरण हो सकते हैं।

(क) महाराजा छत्रसाल बुन्देला पृ. १०१। (ख) प. १५०।

जब सामाजिक या राजनैतिक व्यवहार अपने प्रांत की सीमाएँ लाँघता है तब वास्तविक रीति से भाषा का प्रश्न उठता है। सत्ताधारी प्रबल शासक कभी-कभी अपनी प्रान्तीय भाषा का प्रयोग अन्य प्रान्तों में भेजे गये पत्रों में करते थे। किन्तु इसी प्रकार किसी अन्य भाषा में प्राप्त पत्रों को पढ़ना उसमें उल्लिखित बातों को समझ लेने के लिए उसी भाषा के जानकार से सहायता लेनी पड़ती थी। इसके कारण कई समस्याएँ निर्माण होने की संभावना रहती थी।

प्रस्तुत पत्रों के काल में ये प्रान्तीय भाषाएँ राजनैतिक व्यवहार की भाषाएँ थीं फिर भी उस समय सारे देश में एक भाषा निर्माण होकर विकास पा रही थी। यह भाषा देश के विभिन्न प्रान्तों के लोग समझते थे और उसमें पत्र-व्यवहार भी होता था। यह भाषा (हिन्दी) हिन्दवी थी। इसका प्रयोग पत्र-व्यवहार में किया जाता। इस भाषा में राजनैतिक पत्रों का लिखा जाना महत्वपूर्ण बात है। काशीराज चेतसिंह ने जयपुर के राजा प्रतापसिंह को पत्र लिखकर यह सुझाया था कि आगे चलकर राजा प्रतापसिंह हिंदवी भाषा में पत्र लिखें ताकि राजा चेतसिंह स्वयं उसे पढ़ सकें। "आपका कृपा पत्र आया करे सो हिंदवी लिखा आवै जो हम आप पढ़ लेवें।" (क) राजा प्रतापसिंह के द्वारा हिंदवी में पत्र लिखा जाने का तथा राजा चेतसिंह का उसके प्रति आग्रह इस बात का सूचक है कि अखिल देशीय तथा अनेक प्रदेशों से सम्बन्धित समस्याओं में इस अन्तर्प्रान्तीय भाषा का व्यवहार दिया जाता था। राजा चेतसिंह के द्वारा मराठा शासकों को लिखे गये अन्य पत्रों में (ख) प्राप्त इसी "हिंदवी" भाषा का रूप आज की हिन्दी भाषा का अत्यन्त निकटवर्ती रूप है।

विशेष राजकीय महत्व की और गोपनीय जो बातें होती थीं उन्हें महाराष्ट्र तथा अन्य स्थानों के राजा या शासन के उच्च अधिकारी इसलिए हिन्दी भाषा में लिखते थे कि उन क्षेत्रों के राजा उन्हें स्वयं पढ़ सकें। महाराष्ट्र के राजा तथा शासकों को भी विशेष रूप से हिन्दी क्षेत्र के राजा या अधिकारी हिन्दी में ही पत्र लिखते थे क्योंकि वे स्वयं हिन्दी जानते थे और उन पत्रों को स्वयं पढ़कर उनकी गोपनीयता स्वयं जान सकते थे। यह बात उस समय की मुगल शासन की राजभाषा में लिखे पत्रों से संभव नहीं थी क्योंकि ऐसे पत्रों का पढा लेने के लिए और ठीक अर्थ समझाने के लिए विशेषज्ञों की आवश्यकता थी। इस प्रकार से राजकीय क्षेत्र में अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार की भाषा की प्रतिष्ठा इन पत्रों के द्वारा सिद्ध होती है।

(क) प. २०५। (ख) प. १०७, १०८।

प्रथम-परिशिष्ट

ना मा नु क्र म णि का

इस परिशिष्ट के (क) विभाग में कुछ प्रमुख और प्रसिद्ध व्यक्तियों का परिचय दिया गया है।

(ख) विभाग में पत्रों में उल्लिखित व्यक्तियों की सूची दी गयी हैं।

व्यक्तियों का परिचय प्रमुखतया निम्नलिखित ग्रन्थों के आधार पर दिया गया है।

(१) मध्ययुगीन चरित्र कोश।
(२) बुन्देलखड का संक्षिप्त इतिहास।
(३) पूर्व आधुनिक राजस्थान।
(४) मराठी रियासत के अनेक भाग।

विभाग (क)

व्यक्ति—परिचय

(१) अंताजी पंडित : प. १८, २०

इनका पूरा नाम अंताजी माणकेश्वर गंधे था। अहमदनगर जिले में स्थित कामर गांव के ये निवासी थे। बचपन दरिद्रता में बीता किन्तु होशियारी और पराक्रम के कारण राजा शाहू ने उन्हें अपनी नौकरी में रखा। आगे चलकर अंताजी पेशवाओं की नौकरी में नियुक्त हुआ।

बाजीराव—बंगश की लड़ाई में उन्होंने सेना सहित बाजीराव की मदद की। स. १७५३ ई० में दिल्ली के बादशाह और वजीर में युद्ध हुआ। तब पेशवा की ओर से अंताजी ने बादशाह की सहायता की। इस लड़ाई में मराठों ने जाटों की नाकों में दम कर दिया। सहायता करने के उपलक्ष्य में बादशाह ने अंताजी को इटावा और फफूंद परगने जागीर में दिये। उत्तर में जागीर मिलने के पश्चात् भी अंताजी ने दक्षिण में अपने गांव से सम्बन्ध कायम रखा। सं. १७५५ ई० में नागोर की

(१) (१) भारत इति. सं. (मं. त्रै. इ. २–४ पृ. १०८)
(२) मराठी रियासत मध्य विभाग ३ पृ. २०५।
(३) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. ९२, ९३।
(४) राजवाड़े खंड ३ पृ. २३३।

लड़ाई में उन्होंने दत्ताजी की मदद की। स. १७५७ में अंताजी ने अब्दाली की सेना पर जबरदस्त आक्रमण किया। दिल्ली की बादशाही राजनीति में इसका महत्वपूर्ण स्थान था। वे मराठों की ओर से दिल्ली दरबार में राजदूत का काम करते थे।

पानीपत के युद्ध में मल्हारराव होलकर के साथ दिल्ली को जाते समय फरूखाबाद के जमींदार ने उनकी हत्या कर दी।

(२) अंबाजी इंगले : प. १९९

सिंधियाओं के प्रबल सरदार थे। स. १७८४ ई० में महादजी शिंदे के साथ दिल्ली की व्यवस्था में अंबाजी मदद देते थे। उत्तरी भारत में मराठों की ओर से जिम्मेदारी के अनेक काम करते रहे। जब राजस्थान में उदयपुर, मेवाड़ आदि स्थानों में राजाओं के विरुद्ध सरदार बगावत करने लगे तब अंबाजी ने स्थानीय राजाओं की सहायता करके उनकी शासन व्यवस्था ठीक कर दी। स. १७९५ ई० में सिंधिया के प्रतिनिधि के रूप में उनकी नियुक्ति हुई। तब से अंबाजी अपने को सर्वसत्ताधारी समझने लगे। उसी समय लखबादादा नामक व्यक्ति उनका प्रति द्वंद्वी हुआ। दोनों में सत्ता के लिए संघर्ष चला। उसमें अंबाजी की हार हुई। किन्तु कुछ काल पश्चात् उन्होंने सिंधिया का विश्वास प्राप्त किया और वे सिंधिया की फौज के सेनापति बने। स. १८०३ ई० के युद्ध में अंग्रेजों ने कूटनीति से अंबाजी को अपने पक्ष में कर लिया किन्तु इससे अंबाजी को कुछ लाभ नहीं हुआ। अंबाजी को राजद्रोही ठहराया गया। उन्हें यातनाएँ दी गयीं। आयु के ८१ में वर्ष में ४–६–१८०९ ई० को अंबाजी की मृत्यु हुई।

(३) अली बहादुर : प. क्र. १५४, १९९, २०० । (ई० स. १७६० से १८०२)

बाजीराव प्रथम के पुत्र समशेर बहादुर और मेहेरबाई की वह सन्तान थी। समशेर बहादुर का दूसरा नाम कृष्णसिंह था। इनके जन्म के सम्बन्ध मतैक्य नहीं। कहीं इनका जन्म ई. स. १७५८ बताया गया है, (क) तो कहीं ई. स. १७६० (ख)

---

(२) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. ९४।
(क) रियासतकार देसाई–मराठी रियासत।
(ख) भारत इति. सं. मंडल त्रैमासिक पृ. ६, १०६।
(३) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. ८६।

अलीबहादुर अपने पिता समशेर बहादुर से भी अधिक पराक्रमी और शूर थे। उन्हें महादजी शिंदे की मदद करने के लिए भेजा गया था। बुन्देलखंड में होने वाली पेशवों की जागीर की व्यवस्था करने के लिए पेशवा ने अलीबहादुर को भेजा था। महादजी के साथ उत्तर के राजकाज में उन्होंने कई महत्वपूर्ण काम किये।

बुन्देलखंड की राजनीति में हस्तक्षेप करके अलीबहादुर ने लगभग एक लाख मालगुजारी का मुल्क अपने अधिकार में कर लिया।

गुलाम कादिर के अत्याचारों से बादशाह की मुक्ति करने के लिए राणेखाँ के साथ अलीबहादुर दिल्ली गये थे। पेशवों के आदेश से सागर के निकट "बाँदा" में उन्होंने अपनी अलग जागीर स. १७८८ ई. में कायम की। पूना से कारीगर ले जाकर बांदा में उन्होंने अठारह कारखाने बनाये। अलीबहादुर के दो पुत्र थे। समशेर बहादुर द्वितीय तथा जुल्फकार। कलिंजर का किला जीतने के लिए लड़ते हुए स. १८०२ में अलीबहादुर की मृत्यु हुई।

(४) अहिल्याबाई होलकर : प. १८५, १९२, १९५, २०२

अहिल्याबाई के जन्मकाल के सम्बन्ध में निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। कुछ आधारों से उसका जन्म स. १७२५ ई. मे माना जाता है सन् १७३३-३४ ई. के लगभग अहिल्याबाई का विवाह मल्हारराव होलकर के पुत्र खंडेराव के साथ हुआ था। उस समय खंडेराव की आयु १० वर्ष की थी।

खंडेराव के दुर्व्यसनी होने के कारण अहिल्याबाई की वृत्ति में उदासीनता बढ़ने लगी। खंडेराव की अहिल्याबाई के सामने एक भी नहीं चलती थी। अधिक दिन सौभाग्य सुख उनके नसीब में नहीं था। सन् १७५४ ई. में जाटों के साथ जो युद्ध हुआ उसमें मल्हारराव के साथ खंडेराव भी थे। युद्ध में खंडेराव मारे गये। अहिल्याबाई अपने पति के साथ सती होना चाहती थी किन्तु मल्हारराव की प्रार्थना के कारण अहिल्याबाई ने अपना निश्चय बदल दिया। कुशल राज्यशासक के सारे गुण उनमें थे अतः मल्हारराव होलकर ने राज्य का सारा कारोबार अहिल्याबाई को सौंप दिया। सन् १७६६ ई. में मल्हारराव की मृत्यु हुई। इसके पश्चात् राज्य का सारा भार अहिल्याबाई को संभालना पड़ा। मल्हारराव की मृत्यु के पश्चात्

(४) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. २६४।

अहिल्याबाई के पुत्र मालेराव गद्दी पर बैठे किन्तु १० महीने के भीतर ही उसका देहान्त हो गया। होलकर घराने में गादी की वारिस कोई नहीं था। इससे लाभ उठाने की इच्छा से रघुनाथराव ने अहिल्याबाई के राज्य पर आक्रमण करने की योजना बनायी। अहिल्याबाई ने पेशवा माधवराव के पास अपने दूत भेजे और अन्य सरदारों को अपने पक्ष में मिलाकर युद्ध की तैयारी की अतः रघुनाथराव को अपनी योजना छोड़नी पड़ी। अहिल्याबाई ने जानोजी के पुत्र तुकोजी को गोद लिया। राज्यशासन का कार्य अहिल्याबाई करती और सेनाधिपत्य तुकोजी करता था। राजस्थान के राजकाज में भी अहिल्याबाई ने दखल देकर अपनी जिम्मेदारी पूर्णतया निभायी। शासकीय गुणों के साथ साथ उनमें उदारता, सदाचरण, न्यायप्रियता आदि लोकोत्तर गुण मौजूद थे। अहिल्याबाई ने लोकोपयोगी कार्य में बहुत सा पैसा खर्च किया। अन्नक्षेत्र, धर्मशालाएँ, कुएँ, सड़कें और घाट बांध दिये तथा कतिपय मंदिरों का जीर्णोद्धार भी किया। अहिल्याबाई ने ३० साल राज्य शासन किया। १३ अगस्त १७९५ ई. के दिन अहिल्याबाई का देहान्त हो गया। इतिहासकार मालकम उनकी स्तुति करते नहीं अघाता। भारतीय इतिहासकार तो उनकी कीर्ति सुगन्धी से मोहित हो जाते हैं।

(५) केदारजी शिन्दे : प. ११२, ११७, ११६, १२०, १२१

केदार जी, महादजी शिन्दे के भतीजे और तुकोजी के पुत्र थे। पूना में रघुनाथराव और माधवराव के गृहकलह के कारण शिन्दे खानदान के अधिकार का निर्णय नहीं हुआ। नारोशंकर राजेबहादुर के द्वारा केदारजी शिन्दे को २५-११-१७६३ ई. में सरदारी के अधिकार मिले। रघुनाथराव पेशवा ने १० जोलाई, १७६४ ई. को ३ लाख रुपयों के नजराने के बदले में मानाजी को सरदारी के अधिकार दे दिये। अतः दोनों में मनोमालिन्य एवम् संघर्ष चला। स. १७६७ ई. में केदारजी की मृत्यु हुई।

(६) खंडेराव होलकर : प. १५८, १६२

खंडेराव, मल्हारराव होलकर के पुत्र और अहिल्याबाई होलकर के पति थे। युद्धकला में खंडेराव बहुत ही निपुण थे। स. १७५४ ई. की अजमेर की लड़ाई में उन्होंने रघुनाथराव की भरसक सहायता की। चौथ का पैसा वसूल करने के

---

(५) मराठी रियासत मध्य विभाग ४।

(६) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. २८६।

लिए खंडेराव ने सूरजमल जाट पर आक्रमण कर दिया। इसी युद्ध में खंडेराव मारे गये।

(७) खुमानसिंह : प. ६, ८, १३, ७०, ८९

जगतराज के पुत्र कीरतराज के दो पुत्र थे गुमानसिंह और खुमानसिंह। जगतराज की मृत्यु के पश्चात् पहाड़सिंह ने जैतपुर राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। खुमानसिंह और गुमानसिंह ने लड़ने का प्रयत्न किया किन्तु वे हार गये। पहाड़सिंह स. १८२२ ई. में बीमार हो गये। अपने वंशजों को भावी युद्ध से बचाने के लिए उन्होंने गुमानसिंह तथा खुमानसिंह को अपने पास बुलाकर उन्हें अलग-अलग रियासतें दे दीं। एक लाख बासठ हजार की आमदनी की रियासत खुमानसिंह को दी। गुमानसिंह को चरखारी का राज्य मिला। हिम्मतबहादुर ने बुन्देलखंड पर आक्रमण किया किन्तु उसकी हार हुई। हिम्मतबहादुर की हार के पश्चात् बुन्देले फिर अपने आपसी कलह में लग गए। चरखारी के राजा गुमानसिंह और उनके भाई खुमानसिंह में भी वि. सं. १८३९ में युद्ध हो गया। नोने अर्जुनसिंह की सहायता से गुमानसिंह की जीत हुई और खुमानसिंह मारे गये।

(८) गुमानसिंह : प. ८, ९

जगतराज के पुत्र कीरतसिंह के ये पुत्र थे। जगतराज की मृत्यु के पश्चात् पहाड़सिंह राजा बने तब खुमानसिंह ने और गुमानसिंह ने राज्य पर दावा किया। गुमानसिंह को सवा नौ लाख आय की रियासत दी। इस भाग में बाँदा और अजयगढ़ परगने आए। गुमानसिंह ने अपने काका वीरसिंह को अपने राज्य में बुला लिया और उन्हें मवई के पास ८० हजार की जागीर दी। संवत् १८३५ में गुमानसिंह की मृत्यु हुई। उनके कोई पुत्र न था इसलिए उन्होंने वखतसिंह को गोद लिया था।

(९) चैतसिंह : प. १०६, १०७, १०८, २०५ (ई. स. १७७० से १८१०)

काशीराज चेतसिंह को अंग्रेजों ने स. १७७५ ई. में लखनौ के नवाब के अधिपत्य से मुक्त करके स्वतन्त्र किया। अंग्रेज अधिकारी हेस्टिंग्ज ने उनसे बहुत पैसा वसूल किया और अधिक पैसा प्राप्त करने के लिए उन्हें यातनाएँ दीं। एक बार राजा चैतसिंह को कैद भी किया। अतः काशी की जनता हेस्टिंग्ज के खिलाफ हो

(७) बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास पृ. २३८, २५७।
(८) बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास पृ. २३८–२३९।
(९) म. च. को. पृ. ३८२–८३।

गयी और उन्होंने हेस्टिंग्ज के निवास को घेर लिया। तब हेस्टिंग्ज ब्राह्मणों का भेष बनाकर नागपूर कर भोसले की पालकी में सवार होकर निकल भागा। महादजी सिंधिया ने काशीराज को आश्रय दिया और इन्हें पांच लाख की जागीर भी दी। महादजी के पश्चात् दौलतराव सिंधिया ने उनकी मदद और रक्षा की। इस खानदान के लोग काशी नरेश के नाम से प्रसिद्ध हैं। चेतसिंह के बाद हेस्टिंग्ज ने महीपत नारायण नाम के व्यक्ति को गद्दी पर बिठाया। आज उसी खानदान के लोग गंगा के पार रामनगर में रहते है।

(१०) जगतराज : प. १, ६, १२

महाराज छत्रसाल के दूसरे पुत्र जगतराज को बाँदा, चरखारी, अजयगढ़, बिजावर आदि के परगने मिले थे। मुहम्मदखाँ बंगश ने जगतराज के काल में जैतपुर पर फिर आक्रमण किया। दलेलखाँ नामक शूर सरदार बंगश की सेना में था। जगतराज ने मराठों से सहायता प्राप्त कर दलेलखाँ को हरा दिया। दलेलखाँ युद्ध में मारा गया। तब बंगश भी हार मान कर लौट गया। जगतराज के सत्रह पुत्र थे। बड़े पुत्र दीवान सेनापति थे किन्तु जगतराज ने "कीरतराज को" युवराज बनाया कीरतसिंह के दो लड़के थे। उनके नाम थे गुमानसिंह और खुमानसिंह। जगतराज की मृत्यु के पहले कीरतसिंह की मृत्यु हो चुकी थी। कीरतसिंह को जगतराज ने युवराज बनाया था। अतः जगतराज की मृत्यु के पश्चात् खुमानसिंह और गुमानसिंह ने उनके राज्य पर दावा किया। जगतराज की मृत्यु वि. सं. १८१५ में हुई।

(११) जनकोजी शिन्दे (सिंधिया) प. ११३, ११५

जनकोजी, जयाप्पा सिंधिया के शूर पुत्र थे। उत्तरी भारत के राजकाज में वे होलकरों के साथ रहे। सं. १७५० ई. में अब्दाली के साथ लड़ाई हुई जिसमें जनकोजी ने अब्दाली को हराकर उसकी सेना-सामग्री का भयंकर नाश किया। सन् १७५५ ई. में उन्होंने राजस्थान में मेड़ता पर अधिकार कर लिया। पानीपत की लड़ाई में सन् १७६१ ई. में उन्हें वीर गति प्राप्त हुई (जनकोजी की मृत्यु १७६१ ई. में हुई)।

(१२) जयाजी शिन्दे : प. १०६, ११०, १११

---

(१०) बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास पृ. २३७-२३८।
(११) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. ३९०।
(१२) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. ४००।

जयाप्पा सिंधिया, राणोजी सिंधिया के ज्येष्ठ पुत्र थे। पिता के पश्चात् जयाप्पा जागीर के अधिकारी बने। सन् १७५१ ई. में फर्रुखाबाद की लड़ाई में जयाजी ने राहिलों को करारी हार दी। जयाप्पा ने सूरजमल की सहायता की और मल्हारराव होलकर के साथ सूरजमल की सुलह करवा दी। जब जोधपुर के रामसिंह का पक्ष उन्होंने लिया तब विजयसिंह ने धोखे से जल्लादों के द्वारा जयाप्पा की हत्या करवा दी। जयाप्पा की मृत्यु ३०-६-१७५५ ई. में हुई।

(१३) जवाहरसिंह : प. २१, ४६

जवाहरसिंह भरतपुर के सूरजमल जाट के सूरमा पुत्र थे। राजशासन एवम् लड़ाई की कला में जवाहरसिंह कुशल था। सूरजमल की मृत्यु के पश्चात् जवाहरसिंह भरतपुर की गद्दी के स्वामी बने।

सन् १७६३ ई. में नजीबखाँ ने सूरजमल जाट पर आक्रमण करके उन्हें मार डाला। मल्हारराव होलकर के कारण नजीबखां बच निकला। समयोचित प्रसंगों से लाभ उठाकर जवाहरसिंह ने जाटों की ताकत बढ़ायी। मराठों को उत्तर भारत से निकाल कर नर्मदा के दक्षिण में खदेड़ने की उनकी इच्छा थी एवम् प्रयत्न भी रहा। जयपुर के राजाओं के साथ जवाहरसिंह ने लड़ाइयां कीं। अपनी ताकत के आधार पर दिल्ली के राज्य शासन में दखल दी। नजीबखाँ पर आक्रमण करके उसे मारकर जवाहरसिंह ने अपने बाप की मृत्यु का बदला चुकाया। सन् १७६८ ई. में जवाहर सिंह की हत्या हुई।

(१४) तुकोजी होलकर : प. १७३, १७४, १९०, १९१, १९३, १९४, १९७, १९८। (जन्म सन् १७२५ मृत्यु १७९७ ई.)

मल्हारराव होलकर ने होलकर वंश के जानोजी के पुत्र तुकोजी को दत्तक लिया था। मल्हारराव की मृत्यु के पश्चात् अहिल्याबाई होलकर अपने राज्य का कारोबार देखती थी और तुकोजी सेनापति का कार्य संभालते थे। तुकोजी स्वतन्त्र रूप से शासन करना चाहते थे। अतः कुछ काल अहिल्याबाई और तुकोजी में मन मुटाव हुआ।

सन् १७६९ ई. से पांच साल महादजी शिन्दे के साथ तुकोजी दिल्ली के शासन

---

(१३) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. ४०२।
(१४) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. ४३२।

कार्य में रहे। नजीबखाँ की सहायता करने के कारण शिन्दे और होलकर में मन-मुटाव हो गया। मराठों की कैद में होने वाले जाबिताखाँ को सन् १७७१ ई. में तुकोजी ने मुक्त किया। सन् १७७४ ई. में तुकोजी दक्षिण आ गया। प्रारम्भ से ही पेशवों के गृहकलह में उन्होंने राघोबा का पक्ष लिया किन्तु बाद में उस पक्ष को छोड़कर नाना फड़नवीस के पक्ष से वे जा मिले। सन् १७७८ ई. में तुकोजी महादजी के साथ अंग्रेज सेना के विरुद्ध सेनाधिपति का पद सँभालते रहे। सन् १७८६ ई. में टिपू पर आक्रमण करके तुकोजी ने बड़ा पराक्रम दिखाया। सन् १७९० ई. में इस्माईल बेग का मुल्क तुकोजी ने लूटा अतः महादजी शिन्दे के साथ उसका वैमनस्य हुआ। शिन्दे के साथ मुकाबला करने के लिए फ्रेंच अधिकारी नियुक्त कर अच्छी फौज भी तुकोजी ने तैयार की। शिन्दे होलकरों की यह कसमकश बढ़ गयी अन्त में दोनों की सेनाओं में लाखेरी के पास सन् १७९२ ई. में लड़ाई हुई। इस लड़ाई में तुकोजी की हार हुई अतः चिढ़कर उन्होंने शिन्दों की राजधानी लूटी। सन् १७९३ ई. में उन्हें लकवा मार गया। पेशवा का निमंत्रण पाकर तुकोजी खर्डा की लड़ाई में सन् १७९४ ई. में बड़ी सेना के साथ उपस्थित रहे और वीरता से लड़े। पूना में १५-८-१७९७ ई. के दिन उनकी मृत्यु हुई।

(१५) दौलतराव शिंदे (सिंधिया) : प. १०६, १०७, १०८, १४३, १५० १५१, १५२, १५३, १५५। (सन् १७८० – १८२७ ई.)

दौलतराव, तुकोजी के पोता और आनन्द के पुत्र थे। महादजी शिंदे की मृत्यु के पश्चात् पेशवों ने उन्हें शिन्दे घराने की जागीर स. १७९४ ई. में दी। बाजीराव द्वितीय को पेशवा की गद्दी पर बिठाने के लिए सवा करोड़ रुपया देने का इकरार बाजीराव द्वितीय और दौलतराव में हुआ था। पूना में आने पर दौलतराव ने नाना फड़नवीस को सन् १७९७ ई. में कैद किया। बाजीराव की ओर से इकरार की रकम न मिलने पर दौलतराव ने पूना निवासियों पर अत्याचार करके उनसे पैसा वसूल किया। महादजी की पत्नी और दौलतराव में संघर्ष निर्माण होकर युद्ध हुआ। उसमें दौलतराव की हार हुई। यशवन्तराव होलकर के साथ उनकी न बनती अतः अन्त में नर्मदा के पास दोनों में लड़ाई हुई। उसमें दौलतराव परास्त हो गये। सन् १८०३ ई. में अंग्रेजों के साथ जो युद्ध हुआ उसमें दौलतराव की हार हुई और उन्हें "तैनाती फौज" ("सहायक प्रथा") की शर्तें स्वीकारनी पड़ी। सन् १८०३ ई.

---

(१५) मध्ययुगीन चरित्र कोश पृ. ४९४।

में ही अंग्रेज अधिकारियों ने दौलतराव से दिल्ली छीन ली। सूर वीर होने के साथ-साथ निहायत विलासी भी थे। अस्थिर चित्त और शासकीय दोषों से दौलतराव ने सिंधिया की जागीर तथा अंतिम काल में मराठाशाही का नुकसान कर दिया।

(१६) नारोशंकर दाणी (राजे बहादुर) : प. १६, ८६, ११४ इ०

उदाजी पवार की सेना में नारोशंकर एक छोटे अधिकारी थे। वे सूर, पराक्रमी और तलवार बहादुर थे। मल्हारराव की नौकरी एवम् सहायता करने पर उन्हें इन्दौर का सूबेदार बनाया गया। झांसी में रहकर नारोशंकर ने १४ साल सूबेदारी का काम किया। इसके बदले में उन्हें "जरीपटका, साहेबी नौबत, १५ लाख रुपयों का सरंजाम" दिया गया। मुगल शासन के पतन काल में उन्होंने बादशाह की सुरक्षा की। इसके उपलक्ष्य में बादशाह ने उन्हें "राजेबहादुर" की उपाधि देकर गौरवान्वित किया। इसके साथ ही उन्हें नासिक के निकट मालेगाँव की जागीर तथा अन्य गाँव भी मिल गये। शिन्दों ने उन्हें अपना दीवान बनाया किन्तु रघुनाथराव के साथ शाजिश के कारण उसे उस पद से हटना पड़ा। इससे उनका मन खिन्न हुआ। इसी उद्विग्न अवस्था में सन् १७७५ ई. में नारोशंकर की मृत्यु हुई।

(१७) सवाई प्रतापसिंह :

सन् १७७८ ई. में पृथ्वीसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनका तेरह वर्षीय भाई प्रतापसिंह जयपुर की राजगद्दी पर बैठा। उनके प्रारम्भिक काल में शाह आलम की सेना ने जयपुर को घेर लिया किन्तु अन्त में शाही सेना को विफल होकर लौटना पड़ा। इसके पश्चात् जयपुर की परिस्थिति दिनों दिन शोचनीय होती रही। नवयुवा प्रतापसिंह सर्वथा बुद्धिहीन, बहुत ही अविवेकी और उद्धत स्वभाव का था। ऐश्वर्य विलास में लीन रहने के कारण वह राज्य-शासन में दखल नहीं देता। सन् १७८६ ई. के प्रारम्भ में महादजी शिन्दे ने चौथ तथा टांके के पैसों की माँग की। प्रतापसिंह एक ओर वादे करता और दूसरी ओर महादजी के विरोध की तैयारी करता। अंत में दोनों में युद्ध हुआ और राजा प्रतापसिंह को महादजी से मित्रता की याचना करनी पड़ी। इस्माइल बेग के अधिपत्य में जयपुर, जोधपुर इत्यादि राजाओं ने महादजी का विरोध किया। जून १७९० ई. में पाटण का इतिहास-प्रसिद्ध युद्ध हुआ जिसमें

---

१६) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. ४६२।
(१७) पूर्व आधुनिक राजस्थान पृ. २००।

मराठों को विजय मिली। जयपुर राज्य में शरण लेने वाले अवध के पदच्युत नवाब वजीरअली को प्रतापसिंह ने अंग्रेज अधिकारी को सौंप दिया अतः प्रतापसिंह की सर्वत्र निंदा हुई। अगस्त १, १८०३ ई. को सवाई प्रताप सिंह की मृत्यु हुई।

(१८) राजा पृथ्वीसिंह : प. १२२, १२४, १२५, १२७, से १३०, १७५, १७७, से १८४, १८६, से १९३

महाराज माधोसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसके दो अल्पवयस्क पुत्र जयपुर की राजगद्दी पर बैठे और राजमाता चोण्डावतजी (चूण्डावतीजी) शासन की देखभाल करने लगीं। पृथ्वीसिंह सन् १७६८ ई. से १७७८ ई. तक राजगद्दी पर बैठे रहे। इनके राज्यकाल में मराठों ने कोई आक्रमण नहीं किया किन्तु राजमाता के दुर्बल शासन के कारण अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हुई। अप्रेल, १७७८ ई. में नवयुवा राजा पृथ्वीसिंह की मृत्यु हुई।

(१९) बाजीराव बल्लाल (पेशवा) : प. १२, १७, २४, २५, २६, २७, ३२, ३६, इ.
(जन्म अगस्त १७ सन् १७०० ई. मृत्यु सन् १७४० ई.)

बाजीराव, बालाजी विश्वनाथ पेशवा के जेष्ठ पुत्र थे। बचपन से ही उन्हें शासन एवम् युद्धकला का शिक्षण मिलता रहा। पिता, बालाजी विश्वनाथ (पेशवा) के साथ सन् १७१८–१९ ई. में वे सैयदों की सहायता करने के कार्य में दिल्ली गये थे। इसी समय मराठों का राज्य उत्तर में फैलाने की एक जबरदस्त इच्छा उनके मन में निर्माण हुई। बालाजी विश्वानाथ की मृत्यु सन् १७२० ई. में हुई। दरबार में पेशवा पद के लिए कशमकश चल रही थी। राजा शाहू ने बाजीराव का पराक्रम, कुशलता एवम् महत्वाकांक्षा देकर उन्हें पेशवा बनाया। पेशवा बनने पर बाजीराव के सामने कई समस्याएँ आ खड़ी हुईं। प्रारम्भ के दस–ग्यारह वर्ष उन्हें राज्य के भीतरी तथा बाहरी शत्रुओं को परास्त करने में बीताने पड़े।

सन् १७२१ ई. से १७३१ ई. तक के कालखंड में पवार, शिन्दे, होलकर आदि की सहायता से बाजीराव ने मालवा पर अनेक बार आक्रमण किया और उत्तर भारत में नर्मदा के पार मराठों के पराक्रम का झंडा गाड़ दिया। दक्षिण में निजाम मुल्मुल्क सूबेदार बना। वह कोल्हापुर के राजा सम्भाजी का पक्ष लेकर मराठों में

---

(१८) पूर्व आधुनिक राजस्थान पृ. १९३–१९४।
(१९) मध्य युगीन चरित्र कोश ५४९।

फूट डालना चाहता था। उसने मराठों को चौथ देना भी अस्वीकार कर दिया तब बाजीराव फौज लेकर निजाम के राज्य पर चढ़ बैठे। छोटी बड़ी लड़ाइयों के पश्चात् बाजीराव ने निजाम को घेर कर परास्त किया। हार कर निजामुल मुल्क को मराठों से संधि करनी पड़ी। सन् १७२८ में वह संधि "मुंगी शेवगांव" के पास हुई। औरंगजेब के समय के अनुभवी एवम् पराक्रमी सेना पति को पराभूत करने से बाजीराव के पराक्रम और युद्ध कौशल का बोलबाला सारे देश में हुआ।

सन् १७२९ ई. में महाराजा छत्रसाल की प्रार्थना पर बाजीराव बुन्देल खंड में गये। जैतपुर की लड़ाई में उन्होंने छत्रसाल के प्रबल मुहम्मदखां बंगश को करारी हार दी। इस लड़ाई से पेशवों को बुन्देलखंड के राज्य की ५ लाख की जागीर मिली। बाजीराव का नाम सारे भारत में रोशन हुआ। इसके पश्चात् बाजीराव के ५-६ साल दक्षिण में राज्य व्यवस्था एवम् युद्ध में बीत गये। सन् १७३६ ई. में उन्होंने फिर उत्तर भारत में आक्रमण प्रारम्भ किया। अटेर, भदावर लूटकर बाजीराव यमुना तक आगे बढ़े। सादतखां और मुहम्मदखाँ बंगश ने उन्हें रोकने के प्रयत्न किये किन्तु उन्हें असफलता मिली। बाजीराव आगे बढ़कर दिल्ली तक चले गये और अपनी धाक राजधानी के सरदारों पर जमाकर शीघ्र ही राजपुताने के रास्ते दक्षिण लौट आये। बाजीराव के भावी आक्रमणों को रोकने के लिए दिल्ली के शासकों और सरदारों ने "निजामुलमुल्क" को आमंत्रित किया। "निजामुलमुल्क" सेना सहित दिल्ली से रवाना हुआ। बाजीराव ने कुशल युद्ध नीति से उसे भोपाल के पास घेर कर हराया। "निजामुलमुल्क" ने हार स्वीकार कर संधि कर ली। इस लड़ाई से नर्मदा और चंबल के दोआब पर मराठों का अधिकार हो गया। जुलाई सन् १७३८ ई. में बाजीराव पूना लौटे। उत्तर भारत में बाजीराव अजेय रहे। उनके ही कारण उत्तर भारत के राजकाज में मराठों के पैर पक्के हुए।

नादिरशाह के आक्रमण की वार्ता सुनकर बादशाह की मदद करने के लिए बाजीराव उत्तर में निकले। बाजीराव के आगमन के पूर्व ही नादिरशाह भारत से लौट गया अतः बाजीराव सातारा लौट आये। मस्तानी के सम्बन्ध के कारण बाजीराव को अनेक मानसिक वेदनाएँ सहनी पड़ीं। सन् १७४० ई. में नर्मदा तट पर अपने पड़ाव में प्रिय सैनिकों के सान्निध्य में बाजीराव की मृत्यु हुई। जन्म से ही बाजीराव सेनापति थे और शासन के कार्य से भी सेनापति का कार्य उन्हें विशेष पसंद आता था। अपने साथ अनेक कर्तृत्वशाली पुरुष जमा करके बाजीराव ने

उनके कर्तृत्व को अवसर दिया। अत: आगे चलकर मराठों के शिन्दे, होलकर, पवार, गायकवाड़, हिंगणे, बुन्देले आदि परिवार के पराक्रमी पुरुषों की परम्पराएँ निर्मित हुई।

युद्ध कार्य में अत्यधिक पैसा खर्च होने से बाजीराव सदा कर्ज के तकाजों की फिक्र में रहता। पूना में उन्होंने एक ही साल में विशाल "शनिवार वाड़ा" बनवाया। बालाजी, रामचन्द्र, जनार्दन और रघुनाथराव ये उनके चार पुत्र तथा मस्तानी से प्राप्त पुत्र "समशेर बहादुर" था। युद्ध के अत्यधिक कष्ट एवम् मस्तानी के कारण निर्मित घटनाओं से प्राप्त मानसिक पीड़ाओं के कारण बाजीराव अल्पायु में स्वर्ग सिधारे। मराठों के इतिहास में पराक्रम और राज्य-संवर्धन में शिवाजी के पश्चात् बाजीराव का ही नाम लिया जाता है।

(२०) बालाजी जनार्दन भानु (नाना फड़नवीस) : प. १७५, १६६ इ.

मराठा-शाही के उत्तरार्ध में अपनी कुशाग्र बुद्धि से कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में वे प्रसिद्ध हुए। भानुवंश के लोग फड़नवीस (प्रबंधक) का कार्य किया करते थे। आयु के १४ वें वर्ष में उन्हें परम्परागत फड़नवीस (प्रबंधक) के अधिकार प्राप्त हुए। इसी साल मराठा-हैदर के युद्ध में नाना उपस्थित थे। तीर्थयात्रा करने की इच्छा से पानीपत के युद्ध के समय वे सेना के साथ उत्तर भारत में गये। युद्ध के अनन्तर जो भगदड़ मची उसमें उन्हें भी भागना पड़ा। "लंगोटी लगाकर वे बेर के पत्ते खाकर छुपकर "नाना" दक्षिण लौट आये।

नारायणराव की हत्या के बाद सखाराम बापू से मिलकर उन्होंने "बारभाई" (बारह भाई) योजना कार्यान्वित की। अल्पवयीन सवाई माधवराव के काल में पेशवाई शासन-व्यवस्था के सारे सूत्र नाना के हाथों में आ गये। अपनी कुशलता और बुद्धिमानी से उन्होंने भीतरी तथा बाहरी शत्रुओं को परास्त किया। रघुनाथराव का पक्ष लेकर अंग्रेजों ने आक्रमण करने का जो प्रयत्न किया उसमें सभी मराठा सरदारों को एकत्र करने का कार्य नाना ने किया और अंग्रेजों को करारी हार दी। नाना के दबाव के कारण अंग्रेजों ने रघुनाथराव को मराठों के हाथों सुपुर्द किया। आखिर तक अंग्रेज नाना की बुद्धिमानी एवं राजनीति की प्रशंसा करते थे और नाना से घबड़ाते रहते थे। सवाई माधवराव की मृत्यु के पश्चात् मराठों में फिर संघर्ष का निर्माण हुआ। पेशवा बाजीराव द्वितीय के अनुशासनहीन से मराठी राज्य का

नाश नजदीक आ गया। ज्वर की बीमारी से १३ मार्च १८०० ई. के दिन नाना का देहान्त हो गया। नाना के साथ मराठा राज्य की बुद्धिमानी भी चली गयी। नाना ने अपना आत्मचरित्र लिखा जो अधूरा ही रह गया है।

(२१) बालाजी बाजीराव (पेशवा) प. १, ४, ८, १०, ३८, ४८, ५५, ५८, ६०, ७८, ८०, ११६ इ.

बालाजी बाजीराव, नानासाहेब तथा बालाजीराव नाम से भी प्रसिद्ध है। उनका जन्म स. १७२१ ई. में हुआ। सन् १७३९ इ. में राजा शाहू ने मिरज पर धावा बोला तब बालाजीराव उनकी सहायता करते रहे। बालाजी बाजीराव की शिक्षा-दीक्षा उनके चाचा चिमाजी आपा ही करते थे। वे अपने पिता बाजीराव के साथ युद्ध में नहीं जाते थे। बाजीराव की मृत्यु के पश्चात् राजा शाहू ने बालाजी को जून १७४० ई. में पेशवा बनाया। इसके पश्चात् दिसम्बर १७४० ई. में चिमाजी आप्पा की मृत्यु हुई। मराठों के राज्य-शासन एवम् संवर्धन का सारा कार्य बालाजी के कंधों पर पड़ा। इसी काल से पानीपत के युद्ध पर्यन्त इन्होंने पेशवा के नाते राज्य शासन किया। सन् १७४६ ई. तक राजा शाहू के जीते जी बालाजीराव छत्रपति के आधीन रहा। किन्तु राजा शाहू की मृत्यु के पश्चात् पेशवा वंश के लोग मराठा राज्य के सर्वेसर्वा बने। बालाजीराव ने सन् १७४० से १७४८ ई. तक मालवा, प्रयाग, बंगाल, भेलसा, कर्नाटक आदि महत्वपूर्ण प्रान्तों में चढ़ाइयां करके अधिपत्य जमाया और मराठी राज्य की सीमाएं एवम् शक्ति बढ़ायी। सन् १७५० से १७६० ई. तक का काल पेशवा बालाजीराव के कर्तृत्व और मराठी साम्राज्य का विकास काल था। इस काल में मराठा सरदारों ने अथक परिश्रम एवम् भीम पराक्रम करके पंजाब से तंजोर तक तथा अटक से कटक तक के सारे मुल्क पर अपना प्रभुत्व प्रस्थापित किया। सन् १७५२ ई. में दिल्ली के बादशाह आलमगीर द्वितीय ने मराठों के साथ संधि कर ली और बादशाह और उसके साम्राज्य की रक्षा का भार पेशवा और मराठा सरदारों को सौंप दिया। सन् १७६७ ई. को "उदगीर" की लड़ाई में करारी हार देकर निजाम का दक्षिण का अधिकार मराठों ने मानो समाप्त ही कर दिया।

---

(२०) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. ४८४-४८६।
(२१) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. ५६१।

पानीपत–पराजय और संहार की भयंकर वार्ता से उनके मन पर जबरदस्त आघात हुआ। पुत्र शोक तथा बन्धु शोक के भयंकर दु:ख के कारण २३ जून १७६१ ई. के दिन बालाजी बाजीराव का देहान्त हो गया। कहा जाता है कि ३–४ दिन से अधिक वे कभी एक स्थान पर निवास नहीं करते थे। अपने बाप के समय के समर्थ सरदारों को अपने आधीन रखकर उनसे मराठा राज्य के लिए कार्य करा लेने की बेजोड़ कुशलता बालाजीराव में थी। बालाजीराव का शासन-काल मराठी राज्य का सुवर्ण–कीर्ति काल रहा है।

(२२) मल्हारराव होलकर : प. १५७, १५९, १६३, १६७, १७० इ.

गड़रिये के एक घराने में मल्हारराव का जन्म हुआ। बचपन में ही पिता मर गये अत: मल्हार का पालन मामा के घर पर हुआ। पेशवा बाजीराव के आधीन मल्हारराव एक सामान्य सैनिक थे। अपने पराक्रम से मल्हारराव सरदार बने। पवार, शिन्दे आदि के साथ मालवा प्रांत में मराठों की ओर से चौथ वसूल का कार्य मल्हारराव को सौंपा गया। सवाई जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार के लिए माधोसिंह और ईश्वरीसिंह में जो संघर्ष चला उसमें शिन्दे वंश के लोगों ने एक का और होलकर वंश के लोगों ने दूसरे का पक्ष लिया। अतः इन दो घरानों में मन मुटाव हो गया। इनका वैमनस्य तब से बढ़ता ही गया। बहादुरखाँ रोहिला और मुहम्मद खाँ बंगश पर आक्रमण करके मल्हारराव ने उनको हराकर भगा दिया। रोहिला लोगों पर विजय प्राप्त करने से दिल्ली दरबार में मल्हारराव का प्रभाव पड़ा। 'कुंमेरी' युद्ध में उनका युवा पुत्र खंडेराव मारा गया। तब से मल्हारराव जाटों के कट्टर दुश्मन बन गये। बादशाह अहमदशाह और वजीर ने जाटों की सहायता की अत: मल्हारराव ने बादशाह पर आक्रमण करके उन्हें कैद किया और आलम-गीर द्वितीय को राजगद्दी पर बिठाया। पानीपत के भयंकर रणसंग्राम से वे भाग निकल आये। जाटों का नाश करने के लिए मल्हारराव अलमपुर (दतिया) आ गये। इसी स्थान पर २० मई १७६६ ई. के दिन उनका देहान्त हो गया। अपने पराक्रम से उन्होंने स्वतन्त्र जागीर प्राप्त की और इंदौर के राज्य की स्थापना की।

(२३) महादजी शिन्दे (सिंधिया) प. ११७, ११९, १२१, १२९ से १४४, १४६ से १४९ (जन्म सन् १७२७ ई. मृत्यु १२ फरवरी १७९४ ई.)

महादजी, राणोजी के पुत्र थे। महादजी पेशवों की सेना में थे। इससे उन्हें

(२२) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. ६०७।

युद्धकला और शासन-व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त हुआ । दक्षिण तथा उत्तर भारत की अनेक लड़ाइयों में महादजी उपस्थित थे । पानीपत के युद्ध में जब भगदड़ हुई तब महादजी भाग निकले । दक्षिण की ओर जाते समय रास्ते में एक पठान ने उनके पैर पर आघात किया । इससे महादजी लँगड़े हो गये किन्तु वे बच निकले । ता० १८ नवम्बर १७६८ ई० के दिन महादजी को शिन्दे वंश की सरदारी के अधिकार दिये गये ।

उत्तर भारत की राजनीति में महादजी ने धीरे-धीरे अपना प्रभाव जमाया । भागे हुए बादशाह आलम द्वितीय को अंग्रेजों के हाथों से छुड़ाकर दिल्ली के तख्त पर बिठाने का महान कार्य मराठों की ओर से महादजी ने संपन्न किया । इसी समय से बराबर दिल्ली की केन्द्रीय बादशाही शासन – व्यवस्था में महादजी सहयोग देते रहे और कार्य करते रहे । धीरे-धीरे बादशाही कामकाज में महादजी प्रधान व्यक्ति बने । बादशाह के ऊपर आने वाले सारे संकटों से महादजी ने उनकी रक्षा की अतः इसके उपलक्ष्य में बादशाह ने उन्हें "वकील मुतलक" मीर बख्शी बनाया । राजपूत, सिक्ख और मुसलमान महादजी के अधिकार को देखकर जलते थे । महादजी का विरोध करने के उन्होंने अनेक प्रयत्न किये । राजस्थान की शासन-व्यवस्था में जब महादजी फसे थे तब गुलाम कादिर ने बादशाह को कैद करके अनेक यातनाएँ दीं तथा शाही परिवार की इज्जत लूट ली । बादशाह की प्रार्थना सुनकर महादजी ने गुलाम कादिर को साथियों सहित पकड़कर मार डाला और बाशाह को मुक्त किया । राजपूतों ने अन्त तक महादजी शिन्दे का विरोध किया । उन दोनों में अनेक लड़ाइयाँ हुई आखिर पाटण के पास राजपूत और मराठों की सेना में भयंकर युद्ध हुआ जिसमें राजपूत बुरी तरह हार गये ।

मथुरा शहर महादजी को बहुत प्रिय लगता था । सन् १७९० ई० में बादशाह शाह-आलम ने मथुरा वृन्दावन को सनदें महादजी को दीं । कहा जाता है कि महादजी के कथन पर बादशाह ने साम्राज्य में गोवध-बंदी का फर्माना भी जारी किया था । सन् १७९२ ई. में पेशवों के शासन में गड़बड़ी होने से महादजी दक्षिण में आ गये । ८ महीनों की लम्बी बीमारी के पश्चात् पूना के निकट "वानवड़ी" गाँव में उनका देहान्त हो गया । वहीं पर उनकी समाधि और छत्री है । महादजी सदैव राज्यहित का ध्यान रखते थे । क्षुद्र स्वार्थ अथवा सत्ता लोभ के कारण उन्होंने कभी भी मराठा-राज्य के विरुद्ध कोई अनुचित काम नहीं किया ।

(२३) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. ६१२ ।

(२४) माधवराव बालाजी (पेशवा) (पहला माधवराव) :

प. क्र. १२२, १२५, २१६ से १२८, १७६, १७१, १८६ से १८४ ह.

माधवराव का जन्म १६ फरवरी १७४५ ई० को हुआ । माधवराव बालजीराव के द्वितीय पुत्र थे । उनका बड़ा भाई विश्वासराव पानीपत के युद्ध में सन् १७६१ ई० में मारा गया । पानीपत के दुख, शोका वेग से बालीजी भी परलोक सिधारे । अतः आयु के १६ में वर्ष में माधवराव को पेशवा बनाया गया । पानीपत युद्ध के बाद निजाम ने मराठों पर आक्रमण करना जारी रखा । इसी समय रघुनाथराव और पेशवा माधवराव में कलह और संघर्ष निर्माण हुआ । इस स्थिति से लाभ उठाकर निजाम ने पेशवों की राजधानी पूना तथा आसपास के मुल्क पर आक्रमण करके उसे जला दिया । पेशवा माधवराव ने भी वही नीति अपनायी और हैदराबाद तक का मुल्क जला डाला । अन्त में "राक्षस भुवन" नामक स्थान पर दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ । निजाम का कर्तृत्वशाली दीवान विठल सुन्दर मारा गया । निजाम ने हार मानकर सन्धि कर ली ।

माधवराव ने चार बार कर्नाटक पर चढ़ाइयाँ की और तुंगभद्रा तक का मुल्क मराठों के अधिकार में कर लिया । पानीपत-युद्ध के संहार के पश्चात मराठों की सत्ता भारत में दुर्बल हो गयी थी । अतः उत्तर में मराठों का स्वामित्व प्रस्थापित करने का कार्य माधवराव ने किया । उन्होंने रामचन्द्र गणेश, विसाजी कृष्ण आदि सेनापति उत्तर भारत में महादजी शिन्दे की मदद को भेज दिये । सन् १७७१ ई० में मराठों ने दिल्ली पर अधिकार करके बादशाह शाहआलम द्वितीय को इलाहाबाद से लाकर राजगद्दी पर बिठाया । रोहिला लोगों को दबाकर दिल्ली के केन्द्रीय शासन में मराठों की सत्ता फिर स्थापन की । यह सारा कार्य माधवराव के शासन काल में हुआ अतः उनका राज्यकाल मराठा-पराक्रम एवम् कीर्ति की दृष्टि से महत्वपूर्ण काल माना जाता है । पराक्रमी कर्तृत्वशाली पेशवा माधवराव अपनी आयु के २७ वर्ष में राजयक्ष्मा से पूना के पास "थेऊर" नामक स्थान पर १७७२ ई० में चल बसे । माधवराव की असमय मृत्यु से मराठा-राज्य की बेहद हानि हुई ।

(२५) सवाई माधोसिंह :

प. क्र. १०६ से ११६, ११८ से १२१, १५७ से १६४, १६६ से १७४

महाराजा माधोसिंह-सवाई जयसिंह की मृत्यु के पश्चात उनका ज्येष्ठ पुत्र

---

(२४) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. ६२८ ।

ईश्वरीसिंह जयपुर राज्य की गद्दी पर बैठा। तब माधोसिंह ने जयपुर राज्य के उत्तराधिकार का दावा किया अतः ईश्वरीसिंह और माधोसिंह में गृह कलह प्रारम्भ हुआ। उदयपुर के महाराजा जगतसिंह, माधोसिंह की सहायता करते थे। मराठों की सहायता प्राप्त करने के लिए दोनों ओर से प्रयत्न होने लगे। अन्त में पेशवा बालाजीराव जयपुर राज्य में गये और उन्होंने दोनों में समझौता किया। ईश्वरीसिंह ने समझौते की शर्तें न मानी अतः माधोसिंह का पक्ष लेकर मराठों ने ई० सं. १७४८ में ईश्वरीसिंह पर चढ़ाई की। ईश्वरीसिंह के आत्मघात करने पर माधोसिंह २जनवरी १७५१ ई० को जयपुर की गद्दी पर बैठे। माधोसिंह के काल में राजपूतों और मराठों में मनोमालिन्य तथा अविश्वास का निर्माण हुआ। अन्त में इससे राजपूत-मराठा-संघर्ष का निर्माण हुआ। यह संघर्ष दिन ब दिन बढ़ता गया।

पानीपत की हार के अनन्तर सर्वत्र मराठों के विरुद्ध विद्रोह हुआ। इसी समय माधोसिंह ने मराठा-विरोधी संघ संगठित किया। इसकी मुठभेड़ मल्हारराव होलकर से हुई और माधोसिंह हार गये।

जाटों ने भी उत्तरी भारत में अपनी सत्ता बढ़ायी और वे राजस्थान पर भी आक्रमण करने लगे। माधोसिंह के लिए यह एक उलझन थी। अतः माधोसिंह ने मराठों के साथ मित्रता करने में अपनी कुशल समझी और मराठों से मिलकर सम्मिलित रूप में जाटों का विरोध किया।

५ मार्च १७६८ ई० को माधोसिंह की मृत्यु हुई।

(२६) रघुनाथ बाजीराव (दादासाहेब पेशवा)।

प. क्र. १३, १५, २२, ४२, ५६, ६३, ६४, ६६, ७० ह०

(जन्म सं. १७२६ ई० मृत्यु ११ दिसम्बर १७८३ ई०)

रघुनाथराव पेशवा बाजीराव प्रथम के पुत्र थे। बाजीराव की मृत्यु के पश्चात् उनका ज्येष्ठ पुत्र बालाजी पेशवा बना। बालाजी (बालाजीराव) के शासन काल में रघुनाथराव ने अनेक लड़ाइयों में बेजोड़ पराक्रम करके मराठों का झंडा अटक पार गाड़ दिया। सन् १७५४ ई० में उन्होंने सूरजमल जाट को हराया। तब सूरजमल की मदद के लिये वजीर और बादशाह अहमदशाह निकले। उनसे युद्ध करके रघुनाथराव ने उन्हें परास्त किया।

अब्दाली के आक्रमण को रोकने के लिए रघुनाथराव उत्तर की ओर निकले। उन्होंने दिल्ली जीत ली, नजीबखाँ को हराया और मथुरा, वृन्दावन, गया, कुरुक्षेत्र

(२५) पूर्व आधुनिक राजस्थान पृ. १६८ ह०।

आदि पर मराठों का प्रभुत्व स्थापन किया। पंजाव पर कब्जा करने वाले अब्दाली के शासकों को हकाल कर पंजाव पर अमल कर दिया। उन्होंने मराठों के कीर्ति-पराक्रम के झंडे पेशावर तक फहराये। पानीपत के युद्ध में रघुनाथराव उपस्थित नहीं था। पेशवा बालाजीराव की मृत्यु के अनन्तर उनका पुत्र माधवराव पेशवा बनने की इच्छा अपूर्ण रही। अतः इस समय से पेशवों के घराने में पेशवा पद के लिए कलह का निर्माण हुआ। माधवराव के काल में अनेक बार रघुनाथराव ने उनके विरुद्ध लड़ाई-झगड़े किये। माधवराव की मृत्यु के पश्चात् उनका छोटा भाई नारायणराव पेशवा बना। रघुनाथराव अपनी चाल चलता रहा। पेशवा नारायण राव ने उन्हें कैद किया। अस्थिर चित्त नारायणराव के विरुद्ध षडयंत्र रचा गया जिसमें रघुनाथराव और उनकी पत्नी आनन्दीबाई का हाथ था। पेशवा नारायणराव की हत्या गारदियों ने की तब कुछ दिन रघुनाथराव पेशवा बना। "बारभाई" नामक मंडल ने शीघ्र ही रघुनाथराव को पेशवा पद से हटाया। पेशवा बनने की अपनी अधूरी इच्छा पूर्ण करने के लिये रघुनाथराव ने आजीवन भले-बुरे प्रयत्न किये। मराठा-सरदारों में फूट डालने का और भड़काने के प्रयत्न भी किये। मराठों के शत्रु निजाम तथा अंग्रेजों से मिलकर अपनी इच्छा पूर्ण करने का प्रयत्न रघुनाथराव करता रहा। रघुनाथराव का पक्ष लेकर अंग्रेजों ने पूना पर आक्रमण करने की योजना बनाई और वे बम्बई से तले गांव तक आ गये। मराठी सेना ने अंग्रेजों को करारी हार दी। रघुनाथराव को मराठों के हवाले कर दिया गया। अंग्रेजों का आधार टूटने पर रघुनाथराव अपना शेष जीवन अहमदनगर जिले के कोपरगांव में बिताते रहे। आयु के ५४ वर्ष बीतने पर बीमार होकर ११ दिसम्बर १७८३ ई. के दिन उनकी मृत्यु हुई।

रघुनाथराव के जीवन-काल के तीन विभाग स्पष्ट लक्षित होते हैं। प्रथम भाग उनके कीर्ति-पराक्रम का। पेशवा बालाजीराव रघुनाथराव के गुण-दोष अच्छी तरह जानता था। अतः मराठों का राज्य विस्तार उत्तर में करने के कार्य में बाला-जीराव ने रघुनाथराव को लगाया। रघुनाथराव ने उस महत्वपूर्ण कार्य को सफल किया और पंजाब तक मराठों की धाक जमायी। द्वितीय भाग में पेशवा माधवराव के काल में काका-भतीजे में मनोमालिन्य एवम् पेशवा पद के लिए संघर्ष चल रहा था। इस काल में रघुनाथराव की सारी शक्ति भेदनीति और आपसी झगड़े में एवम् मराठों का शक्तिनाश करने में खर्च हुई। तृतीय भाग में रघुनाथराव ने मराठों के दुश्मनों से मिलकर मराठा-राज्य पर आघात करके मराठी सत्ता का एवम्

मराठा-राज्य का विनाश करने के प्रयत्न किये। मराठा इतिहास में रघुनाथराव पेशवा का चरित्र अद्भुत है ।

(२७) रामचन्द्र गणेश कानड़े पत्र क्र. ७४, १२३, १२४, १८०

रामचन्द्र गणेश पेशवाई के उत्तर काल में प्रसिद्ध सेनापति और मुतसद्दी थे। भारत के सभी प्रांतों में उन्होंने संचार किया था। पेशवा और जानोजी भोसले में जो युद्ध हुआ उसमें पेशवों की ओर से युद्ध की सारी जिम्मेदारी रामचन्द्र गणेश पर छोड़ी थी। तदनंतर उत्तर भारत के कार्य का अधिकार रामचन्द्र को सौंपा गया था। शिन्दे होलकर आदि सरदारों की सहायता से रामचन्द्र गणेश ने रोहिले, जाट और राजपूत लोगों का गर्व मर्दन किया। अंग्रेजों के हाथों से बादशाह शाहआलम द्वितीय को राज सिंहासन पर बिठाने के कार्य में उन्होंने भी सहायता की।

अन्य मराठा-सेनापति विसाजी कृष्ण बिनी वाले और रामचन्द्र गणेश में स्पर्धा सी लगी थी। उस समय पेशवा ने रामचन्द्र गणेश को दक्षिण में बुलाया। इस अपमान से आहत होकर रामचन्द्र ने सन्यास ग्रहण करने का संकल्प किया किन्तु पेशवा के समझा-बुझाने के पश्चात् फिर राजकाज में लग गये। "बारभाई" की योजना में उन्होंने अनेक साल सफलता से कार्य किया। अंग्रेजों के साथ खंडाला की लड़ाई में रामचन्द्र गणेश मारे गये (दि. १२. १२. १७८० ई.)। उनका पुत्र माधवराव रामचन्द्र भी पराक्रमी निकला।

(२८) विसाजी कृष्ण चिंचालकर : (बिनी वाले) क्र. ८. ७४, १२३, १२४, १८० १८६

विसाजी को बचपन से ही घोड़ों का शौक था। दौलतराव काटे नामक व्यक्ति के आधीन विसाजी ने प्रथम नौकरी प्रारम्भ की। सन् १७५७ ई. में कर्नाटक की लड़ाइयों में मराठों की ओर से सम्मिलित होकर उन्होंने पराक्रम किया। विसाजी के पराक्रम को देखकर ही उन्हें सेना में अधिकारपद दिया गया। विसाजी सेना के हरावल में "बिनी में" काम करते रहे। अतः वे बिनी वाले नाम से प्रसिद्ध हुए। अनेक लड़ाइयों में अपने शौर्य और पराक्रम के कारण विसाजी ने विजय पायी। सेना संचालन एवम् युद्ध कौशल के कारण पेशवा माधवराव ने उनकी प्रशंसा की। सन् १७६९ ई. में विसाजी कृष्ण को सेना सहित रामचन्द्र गणेश की मदद के लिये

(२६) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. ६७३ ।

(२७) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. ६७३ ।

भेजा गया। उस समय विसाजी ने शूरता, कुशलता, बुद्धिमानी से कई कार्य सफल किये। इस सफलता के उपलक्ष्य में खुश होकर पेशवा माधवराव ने उन्हें मुख्य सेनापति बनाया। बादशाह शाहआलम द्वितीय को इलाहाबाद से दिल्ली लाकर सिंहासन पर बिठाने में विसाजी ने महादजी की भरसक सहायता की। बादशाह ने विसाजी को "सिवका-कटयार" देकर उनका सम्मान किया। विसाजी कृष्ण और महादजी शिन्दे ने दिल्ली की केन्द्र-व्यवस्था में ऊधम मचाने वाले रोहिलों, पठानों को दबाकर मराठों का स्वामित्व प्रस्थापित किया। बादशाह ने मराठों को वजीर और बख्शीगिरी के अधिकार दे दिये। रोहिला लोगों को सजा देने के लिए विसाजी सेना सहित रुहेलखंड में घुसे और भयंकर आक्रमण और अत्याचार करके विसाजी ने रोहिलों को तराई में भगाया। पानीपत की भयंकर हार तथा संहार के मूल में नजीबखाँ रोहिला की कूटनीति थी अत: उनके परिवार के एवम् जाति के लोगों को लूटकर तथा हराकर उन्हें रुहेलखंड से निकाल दिया और पानीपत की हार और संहार का आंशिक बदला लिया।

(२९) विश्वासराव लक्ष्मण (दाणी) :

विश्वासराव, नारोशंकर का भतीजा था। पानीपत युद्ध के पश्चात् उत्तर भारत से मराठों के पैर उखड़ रहे थे तब विश्वासराव को मालवा और मध्य प्रदेश का शासन सौंपा गया। विश्वासराव ने पराक्रम और कुशलता से मराठों का प्रभुत्व कायम रखा। विश्वासराव के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं मिलती।

(३०) हृदयशाह (हिरदेसाह): प. क्र. १२

महाराजा छत्रसाल ने अपने राज्य को तीन हिस्सों में बाँटा। उसमें बड़े बेटे हृदयशाह को पन्ना, मऊ, गढ़ाकोटा, कलींजर के आसपास का इलाका मिला। उनकी आमदनी ब्यालीस लाख रुपये की थी। महाराज हृदयशाह छत्रसाल की राजधानी के नगर पन्ना के शासक थे। महाराज छत्रसाल की सेज के निकट इन्होंने एक समाधि बनायी और उसके खर्च के लिए एक गाँव लगा दिया। हृदयशाह गढ़ाकोटा को बहुत चाहते थे। गढ़ाकोटा के निकट का ग्राम "हृदय नगर" हृदयशाह का बसाया हुआ है। हृदयशाह ने रीवाँ के राजा अनिरुद्धसिंह के पुत्र अवधूतसिंह पर वि० सं० १७९८ में चढ़ाई की थी और वीरसिंहपुर को अपने राज्य में जोड़ लिया था। हृदयशाह का देहान्त विक्रम सं० १७९६ में हुआ।

---

(२८) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. ७४५। (२९) रिवायवल ऑफ दि मराठा पावर। (३०) मध्य युगीन चरित्र कोश पृ. १२ बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास पृ. २३२—२३३।